प्रकाशकः-रामचद्र राघो. प्रिंटर-रामचद्रराघो.

ठिकाना-लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस-लैटगपुरा कल्याण.

# प्रस्तावना।

भरतखंडमें वैद्यशास्त्रमें रोगके निदान, वैद्य, रोगी, औषध इत्यादिकोंका वर्णन आचार गुणागुण जिसमें वर्णन किये ऐसे सूत्रस्थान, चिकित्सा, शारीरक इत्यादिकोंका विस्तारसे अच्छी तरहका विचार जिसमें किया ऐसे बहुत ग्रन्थ एक एक विषयकरके प्रसिद्ध हैं तैसे निदानमें और रुग्विनिश्चय जिसको माधवनिदान कहते हैं वही प्रसिद्ध है। जैसे–

निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते॥

भाषा–सब निदानग्रन्थोंमें माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थानमें वाग्भट अच्छा है, शारीरस्थानमें सुश्रुत उत्तम और चिकित्सा नाम औषधविचारमें चरक बहुत अच्छा है।

इस ग्रन्थका कर्ता ग्रन्थनामसेही माधव विदित पडता है। पंडित माधवके सब शास्त्रोंमें ग्रन्थ हैं इसकी भाषा काशी आदि नगरमें भई है, परन्तु ऐसी कहांभी नहीं। इस टीकामें सब शब्द प्रसिद्ध बालकोंकेभी समझमें जलदी आ जांय ऐसे हैं और इसमें मधुकोश आतंकदर्पण इत्यादि टीकाके आशयकी पंक्तिकी भाषा बनाई है और शंकासमाधान लिखा है और बहुतसे निदान जो आजतक किसी टीकाकारोंने नहीं लिखे सो प्रसंगवशसे इसमें लिख दिये हैं। जैसे चरकके मतसे क्लीवका निदान इत्यादि और अंग्रेजी मतसे हकीमके मतसे जो निदान हैं वेभी लिखे हैं और परिशिष्टमें शुक्र, आर्तव, गर्भ, स्नायु इत्यादि निदानका अन्य ग्रन्थोंसे प्रमाण लेकर इसकी भाषा बनाई है।

इस भाषाके बनानेवाले प्रसिद्ध आयुर्वेदोद्धारक माथुरपंडित दत्तारामजी हैं। इन्होंने भाषा करके दो वार दिल्लीमें और मथुरामें छपाई थी अब इनसे कृपापूर्वक सब हक्क लेकर यहां उक्त पण्डितसेही शुद्ध कराकर और वढाकर हमने छापी है सो इस ग्रन्थको इस प्रतिसे और दिल्ली मथुरामें छपे पुस्तकसेभी कोई छापनेका अधिकार नहीं है। इति प्रार्थना।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण–मुंबई.

॥ श्रीः ॥

# अथ माधवनिदानस्थविषयाणामनुक्रमणिका ।

### इंग्रजीमतानुसारेण ज्वरनिदानम्।



### अतिसारनिदानम्।



### ग्रहणीनिदानम्।

| विषय. | पृष्ठांक. |
|---|---|

## वातरक्तनिदानम्।



## ऊरुस्तंभनिदानम्।

### आमवातनिदानम्।



### शूलनिदानम्।



### उदावर्तनिदानम्।



### गुल्मनिदानम्।



### हृद्रोगनिदानम्।



### मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।



### मूत्राघातनिदानम्।

| विषय. | पृष्ठांक. |
|---|---|

इति अनुक्रमणिका समाप्त ।


पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,

कल्याण—मुंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

# भाषाटीकासहितं

# माधवनिदानम् ।

परम कारुणिक, श्रीसदाशिवचरणचंचरिक, श्रीमाधवाचार्य निःशेष विघ्नविघातार्थ और ग्रन्थकी निर्विघ्नपरिसमाप्तिके निमित्त ग्रन्थके आदिमें मंगलाचरण करते हैं—

**प्रणम्य[1] जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ॥**
**स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥**
**नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात् ॥**
**सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥२॥**

नरवरवपुधारी गोकुलानदकारी व्रजयुवतिविहारी रासलीलाप्रचारी ॥
प्रणवहु व्रजनारी कंसको मान मारी सकलविघनटारी कीजिये सुधि हमारी ॥ १ ॥
कर्त्ता भर्त्ता तथा हर्ता भोगमोक्षैकदायिनम् ॥
वन्दे श्रीगिरिजाकान्त शकर लोकशंकरम् ॥ २ ॥

भाषा—जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग ( सुख ) अपवर्ग ( मोक्ष ) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणाम कर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञामें अब में संक्षेपसे रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना करता हूं। जिसमें उपद्रव, अरिष्ट, निदान और चिह्न इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है ॥

शिष्य—यह अति सूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्य है । उनके वाक्योंका निरादर कर मनुष्यकृत तुम्हारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी? इस कारण माधवाचार्यने " नानामुनीनां वचनैः ' इस पदको धरा, अर्थात् अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंका आशय ले मैंने यह ग्रन्थ निर्माण किया है।

---

१ मया अय रोगविनिश्चयो ग्रन्थः इदानीं समासतः निबध्यते । किं कृत्वा शिवं प्रणम्य, कथंभूतं शिवं ? जगदुत्पत्तिस्थितिसहारकारणं, पुनः कथभूत शिवं ? स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं, पुनः कथभूतं ? त्रैलोक्यशरणं, किंविशिष्टो ग्रन्थः ? सोपद्रवारिष्टनिदानलिंग, कैः ? नानामुनीनां वचनैः, कस्मात् ? सद्भिषजां नियोगादित्यन्वयः । २ उपद्रवो रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्यो विकारः । ३ नियतमरणख्यापकलिंगमरिष्टम् । ४ निदानं रोगोत्पादको हेतुः । ५ लिंगं रोगव्यापको हेतुः । तेन लिंग्यते ज्ञायते व्याधिः अनेनेति व्युत्पत्त्या पूर्वरूपरूपोपशयसम्प्राप्तयो विज्ञायंते ।

किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहीं है । शंका—पहलेही बहुत ग्रन्थ निर्माण करे उपस्थित हैं फिर तुम्हारे इस ग्रन्थको कौन पढेगा ? इस कारण माधवाचार्यने " इदा-नीम् " पद मूलमें धरा, इस पदका यह आशय है कि हमही अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसा अलौकिक ग्रंथ रचते हैं कि, पहिले किसी आचार्यने अद्यापि नहीं निर्माण करा । कोई वादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढा तो आपका ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होयगा । इस कारण माधवाचार्यने " सद्भिषजा नियोगात् " यह पद धरा । इस पदका आशय यह है कि, हमारे पढनेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माण करो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इस ग्रन्थकी रचना करी है । शंका—श्रीमहादेवजीके हर, मृड, रुद्र, शाम्भव इत्यादि नामोंको त्यागकर शिव इस नामको क्यों प्रणाम करा ? उत्तर—इस रोगविनिश्चयग्र-न्थके पठन पाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छा कर सर्व कामना देनेवाला कल्याण-वाचक शिव नाम विचार इसीको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने प्रणाम करा ॥

अन्य निदान ग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखाते हैं ।

**नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ॥**
**सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥**

भाषा—अनेक ग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्द बुद्धिवाले वैद्योंको सुख-पूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यही ग्रन्थ कारण होवेगा । क्योंकि रोगका जाननाही मुख्य है सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखाभी है ॥

रोग जाननेके पांच उपाय उनको कहते हैं ।

**निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ॥**
**संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥**

भाषा—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्त व्याधिके बोधक होते हैं । इस प्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहा है ॥

---

१ अयमेव आतंकम् अल्पमेधसां भिषजां सुखं विज्ञातुं भविष्यति । किंविशिष्टानां भिषजां नानातंत्रविहीनानामित्यन्वयः । २ " रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ रोगज्ञानार्थमेवादौ यत्नः कार्यो भिषग्वरैः । सति तस्मिन् क्रियारम्भः पुण्याय यशसे श्रियै ॥ " प्रसंगवश रोगज्ञानकी विधि कहते हैं । जैसे रोग चार प्रकारसे जाना जाता है । प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्दसे । तहां चित्रकुष्ठादि व्याधि प्रत्यक्ष देखनेसे प्रतीत होती है । ज्वरादि त्वगिन्द्रियसे जाने जाते हैं । ३ रोगाणां विज्ञानं पञ्चधा स्मृतम् इत्यन्वयः ।

इस श्लोकमें " उपशयस्तथा " यह जो पद धरा इसका यह आशय है कि, जैसे निदान, पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जाता है। उसी प्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसेभी रोग जाना जाता है। " संप्राप्तिश्चेति " इस पदमें च और इतिके धरनेसे यह प्रयोजन है कि रोग जाननेके इन पांचोंसे विशेष और उपाय नहीं है। अब कहते हैं कि रोगोंका निदान संनिकृष्ट ( समीप ) और विप्रकृष्ट ( दूर ) इन भेदोंसे दो प्रकारका है। संनिकृष्ट उसे कहते हैं कि, जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोंको प्रगट करे हैं और विप्रकृष्ट उसे कहते हैं जैसे हेमंतऋतुमें संचित हुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होता है। पूर्वरूप उसे कहते हैं जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्म। रूप उसे कहते हैं जैसे १८ के श्लोकमें लिखा है " स्वेदावरोध इति " अर्थात् पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक। उपशय उसे कहते हैं जैसे वातरोग तैल आदिके लगानेसे शान्त होय है। सम्प्राप्ति उसे कहते हैं जैसे १० के श्लोकमें लिखा है। " यथा दुष्टेन दोषेण " इत्यादि। शंका—क्योजी ! ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय हो सके है फिर माधवाचार्यने पांच प्रकार व्यर्थ क्या लिखे ? क्योंकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जानना है। उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजन है। जैसे निदानसे यह प्रयोजन है कि जिस वस्तुके खानेसे या लगानेसे रोग प्रगट हो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं वढे किंतु उलटा शांतही होता है और पूर्वरूपके जाननेसे यह प्रयोजन है जैसे सुश्रुतमें लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपान करानेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय। रूपके जाननेसे यह प्रयोजन है कि व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होता है। जैसे जिस रोगका अल्परूप होवे वह सुखसाध्य है और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्ण रूप असाध्य जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी औषधि करनी उचित है। उपशयके जाननेसे यह प्रयोजन है कि सुपरीक्षित व्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे सो चरकमें लिखा है कि जिस जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होंय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे। उसी प्रकार सुश्रुतमें लिखा है जैसे उवटना, तेल लगाना, स्वेदनविधि इत्यादिक कर्म करनेसे वातरोग

---

१ अर्थात् नाडी, नेत्र, जिह्वा, मल, मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोंको ज्ञान यथार्थ नहीं हो। २ वातिकज्वरे पूर्वरूपे घृतपानमिति तथाच साध्यासाध्यत्वमपि ज्ञायते। ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं। यथा—"निमित्तं पूर्वरूपाणि रूपाणां मध्यमे वले" इति। ४ गूढलिंगं व्याधिमुपशयाऽनुपशयाभ्यां बुद्धयेत इति। ५ " अभ्यंगस्नेहस्वेदाद्यैर्वातदोषो न शाम्यति। विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमत्रास्ति शोणितम्॥ " इति।

शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और संप्राप्तिके जाननेसे यह प्रयोजन है कि संप्राप्तिके विना जाने पूर्वरूपादिकोंकरके जानी भईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी है परंतु अंशांश विकल्प बल काल आदिको जबतक नहीं जाने तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं हो सके । इसीसे अत एव वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करे ॥

अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहे हैं ।

**निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ॥**
**निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥**

भाषा-निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहते हैं । इनके कहनेका कारण यह है कि, व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छः शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे उसको निदानवाचकही जाने ॥

व्याधिके प्राग्रूपका लक्षण ।

**उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ॥**
**लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥**

भाषा-जिस जंभाई, आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् पूर्वरूप कहते हैं । फिर वह व्याधि दोष ( वात, पित्त, कफ ) से बहुधा अप्रगट होवे । यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भव है क्योंकि, कारण तो वातादिक दोष हैं । जब दोषही नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सके है ? इस पदका यह अर्थ है कि दोष वात, पित्त, कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगटरूप होना अर्थात् थोडा थोडा होना, अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिके अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसे तैसेही होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वरूप दो प्रकारका है । एक सामान्य. दूसरा विशिष्ट सामान्य । प्राग्रूप ( पूर्वरूप ) उसे कहते हैं जैसे दोष ( वात. पित्त. कफ ) से दूषित धातु उसके विगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हों जैसे "श्रमो रतिर्विवर्णत्वमिति" अर्थात् ज्वरमें श्रम हो, मनका न लगना. देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष हो उन्होंके चिह्न तिसके एक अंशभी

---

१ येन उत्पित्सुः आमयः लक्ष्यते ज्ञायते तत्प्राग्रूपम् । किंभूतः आमयः ? दोषविशेषेणानधिष्ठितः अत एव ज्वरादिव्याधीनाम् अल्पत्वात् अव्यक्तं लिंग तत् यथायथम् आत्मीयमात्मीयमूह्यम् इत्यन्वयः ।

प्रतीति हो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहते हैं । जैसे " जृंभात्यर्थं समीरणात् " अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसेही है । इसमें होनहार रोग कौन ? ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन ? वात, वातका एक अंश कौन ? जंभाई, ऐसे औरभी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमे जंभाई आदि रूप देखकर कदाचित पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है इस बातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं । दृष्टान्त–जैसे तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूप ( धूआं ) मात्र प्रगट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसेही शान्ति कर सकते हैं परन्तु जब अग्नि एकसाथ जोरसे प्रज्वलित हो गई तब शांति नही हो सके । ऐसेही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे चिकित्सा करनेसे शान्ति कर सक्ते है, परन्तु जब रूप हो गया तब उसका उपाय नही हो सके है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रसे जल गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा खट्टे, चरपरे पदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

**तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ॥**
**संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥**

भाषा–जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट हो जाय तब उसका रूप ऐसे कहते है और संस्थान, व्यंजन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति यह छः शब्द रूपके पर्याय-वाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण ।

**हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ॥**
**औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥**
**विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ८ ॥**

भाषा–अब उपशयके लक्षणको कहते हैं । हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न ( पथ्य ) विहार ( आचरण ) इनका सेवन सुखकारक

१ व्याधेः सुखावहम् उपयोगम् उपशयं विद्यात् स हि सात्म्यम् इति स्मृतः । केषां ? औषधान्नविहाराणां, किंभूतानां ? हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् इत्यन्वयः । उपयोगः सुखावहस्तमुपशयं विद्यात् जानीयात् । उपयुज्यत इति उपयोगः सेवनं सुखमावहति सम्यगनुबन्धेन सुखमुत्पादयतीति सुखावहः केषामुपयोगः औषधान्नविहारा-

जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं और व्याधिसात्म्य यह पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है । सुखकार-कके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका वढानेवाला है इससे शीतल जल सुखकर्ता न भया अत एव शीतल-जलको उपशय न समझना चाहिये । परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

आगे अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं । हेतुविपरीत औषध—जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि यहां हेतु कौन है कि वात ( सर्दी ). उस वातका शीतल धर्म है तो अब शीत, कफ, यह कब शान्त होय कि जब सर्दी और कफके विपरीत औषध मिले, ऐसी औषध कौन कि शुंठी, यह सर्दीको और कफ दोनोंको शान्त करे है तो शीत कफज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई । ऐसेही हेतुविपरीत अन्न । जैसे श्रम और सर्दीसे प्रगट ज्वरमें मांसका रस और चावल इसमें हेतु कौन कि श्रम और सर्दी, यह कब शान्त होय कि श्रम और सर्दी हरणकर्त्ता पथ्य मिले. ऐसी पथ्य कौन कि मांसरस और चावलोंका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत हैं अर्थात् नाशक हैं ऐसीही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन, जैसे दिनके सोनेमे प्रगट कफकर रातमें जागना, यहा हेतु कौन भया कि दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौन कि कफ, यह कफ कब शान्त होय कि जिस हेतुसे प्रगट भया उस हेतुसे विपरीत आचरण करा जाय तो, दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि रातमें जागना तो यह हेतुविपरीत आचरण भया । इसी प्रकार

---

णाम् । औषध चान्न च विहारश्चौषधान्नविहारास्तेषाम् । औषध हरीतक्यादि, अन्न रक्त-शाल्यादि, विहारो देहमनोनिर्वर्तितचेष्टाविशेषः, व्यायामो जागरणाध्ययनादिरूपः । किंभूतानां औषधान्नविहाराणा हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणां हेतुश्च व्याधिश्च हेतुव्याधी तयोर्व्यस्तसमस्तयोः विपर्यस्ता व्याधिनिदानयोर्विपरीताः तथा विपर्यस्ताना अर्थो विपर्यस्तार्थः तयोर्व्यस्तसमस्तयोरेव विपरीतमर्थं करोतीति विपर्यस्तार्थकारिणः । हेतुव्याधिविपर्यस्ताश्च विपर्यस्तार्थकारिणश्च हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणः तेषां केषा विपर्यस्तानाम् अर्थ कुर्वतीति प्रकृतत्वात् हेतुव्याधिविपर्यस्तानाम् । तदायमर्थः । निदानरोगयोर्व्यस्तसमस्तयोर्विपरीता अपि कारणरूपा इव भासमानाः व्याधिरूपा इव भासमानाः हेतुव्याधिविपरीतानाम् अर्थं व्याध्युपशमलक्षणं कुर्वन्तीति । यथा हेतुविपरीतैः औषधान्नविहारैः व्याध्युपशमः क्रियते प्रतिपक्षत्वात् । एवं विपर्यस्तार्थाविपर्यस्तार्थकारि-भिरपीत्यर्थः । तथा च हेतुविपरीताना व्याधिविपरीतानां हेतुव्याधिविपरीताना हेतुविपरी-तार्थकारिणा व्याधिविपरीतार्थकारिणां हेतुव्याधिविपरीतार्थकारिणा औषधान्नविहाराणां यः सुखावह उपयोगः स उपशय इति पिंडार्थः । अथैषा क्रमेणोदाहरणानि भाषायां वेदितव्यानि ।

और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके आगे लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेवेंगे ॥

| नाम. | औषध | अन्न | विहार. |
|---|---|---|---|
| हेतुविपरीत | शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ | श्रम और वादीसे प्रगट रोगपर मांसका रस और भात | दिनके सोनेसे प्रगट कफरोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना |
| व्याधिविपरीत | अतिसारमें दस्त बंद करनेवाली औषधि पाठा आदि. | दस्तोंमें दस्तके बंदकारक पथ्य मसूर. | उदावर्त्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मंत्र औषध धारण देव गुरुकी सेवा करनी |
| हेतुव्याधिविपरीत. | वातकी सूजनमें दशमूलका काढा वात और सूजन दोनोंको दूर करनेवाला है | कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक, कफनाशक और संग्रहणीनाशक है | स्निग्ध जो दिनके सोनेसे उत्पन्न तंद्रा तिसमें रूक्ष तंद्रासे विपरीत और स्निग्धनाशक रात्रिमें जागना |
| हेतुविपर्यस्तार्थकारी. | जैसे पित्त प्रधान व्रणसूजनमें पित्तकारक उष्णपिंडीका बांधना. | पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना | जैसे वातसे पैदा उन्मादमें त्रासका देना |
| व्याधिविपर्यस्तार्थकारी. | जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि | अतिसाररोगमें दस्तकारक दुग्ध देना | छर्दिरोगमें हाथका अंगूठ गलेमें कर वा कमलनाल आदिसे उलटीका लाना |
| हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी | जैसे अग्नि जलेपर गरम अगर आदि लेप अथवा विषपर विष | जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदात्ययरोगमें मदकारक फिर मद्य पीना | दंड कसरतसे प्रगट वातमें जलका तैरनारूप व्यायामका करना |

अनुपशयके लक्षण।

**विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥**

भाषा–जो उपशयके लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधीका असात्म्य अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण।

**यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ॥**
**निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥**

भाषा-दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनका दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने स्थानको छोडकर देहमे ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं ।-उस विचरनेसे जो रोग प्रगट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यके देहमें वात, पित्त, कफ ये सम्पूर्ण दोष बढकर जैसे रोगको प्रगट करें तैसेही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण जैसे कुपित दोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इतस्ततो गमन करनेसे तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकनेसे और पक्काशयमें रहनेवाली अग्निको बाहिर निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तप्त होनेसे यह ज्वर है ऐसा जो निश्चय किया जाता है उसीको संप्राप्ति कहते हैं । ऐसेही अतिसारादि रोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥

सम्प्राप्तिके भेद ।

## संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ॥

भाषा-अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है । जैसे १ संख्या, २ विकल्प, ३ प्राधान्य, ४ बल, ५ काल इति ॥

संख्यारूप संप्राप्तिके लक्षण ।

## सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

भाषा-जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खासी अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥

विकल्परूप सम्प्राप्तिके लक्षण ।

## दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ॥

भाषा-मिले हुए दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं । जैसे धूंएके निकलनेसे यह पर्वत अग्निवान् है ऐसेही यह रोगीके देहमें वातका अंश विशेष है काहेसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं । उदाहरण जैसे रूखी शीतल हलकी और फैलनवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रौक्षादि गुणयुक्त कषैला रस वातको सर्वांश करके बढानेवाला है । जैसेही कटु रस सर्व भावकरके पित्तका बढानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्व करके हींग पित्तको बढानेवाली है. तैसेही मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्व भावकरके कफ बढानेवाला है इत्यादि । इसमें ' दोषाणां ' जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् २ ग्रहणके वास्ते है और ' समवेतानां ' यह पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है ॥

प्राधान्यरूप संप्राप्तिके लक्षण।

**स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्॥ १२॥**

भाषा–व्याधिके स्वतंत्र और परतंत्र करके प्राधान्यता कही है। जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है॥

बलरूप संप्राप्तिके लक्षण।

**हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम्॥**

भाषा–हेतु आदि शब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोडे लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना। जैसे रोगके प्रति जो निदान कहा है वह निदान संपूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि एकदेश ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त अवयवोंकरके व्याधिका प्रकाशित है या एक देशसे इत्यादि॥

कालरूप संप्राप्तिके लक्षण।

**नक्तं दिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्॥ १३॥**

भाषा–नक्त (रात्रि) दिन (दिवस), ऋतु (वसन्तादि), भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेके वढनेके हेतुका समय जाने। उदाहरण दिखाते हैं जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त तो रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अन्तभाग वातका है। ऐसेही दिनकेभी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका। ऐसेही ऋतु जैसे वसंत-ऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है। ऐसेही भोजनका जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्क हो गया तब वातका काल। इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी २ कालमें जान लेना कठिन मालूम नहीं होता॥

निदानपंचकका उपसंहार।

**इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते॥ १४॥**

भाषा–इति कहिये यह संक्षेप प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहते हैं॥

---

१ व्याधेः स्वातन्त्र्येण च पुनः पारतंत्र्येण प्राधान्यम् आदिशेत् अप्राधान्यं चेति शेषः इत्यन्वयः। २ अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्त्तते। हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपरूपाणां कात्स्न्र्येन साकल्येन अवयवैर्बलाबलयोर्विशेषणं विशेषावबोधः। ३ केचन ऋत्वंशाः कतिपयाहोरात्राणि कथयन्ति। यदुक्तं वाग्भट्टे। ऋत्वोरित्यादिसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः”

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

भाषा–अब पूर्व चतुर्थ श्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट तिसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं। सर्वेषामिति। कुपित भये जो मल ( वात, पित्त, कफ ) ये संपूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका जो अपथ्यसेवन करना सो है ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ॥
तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ॥
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ १८ ॥

भाषा–कोई प्रश्न करे कि जो पूर्व कह आये हैं यही निदान है अथवा इसके अतिरिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोगभी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वही रोगसेभी होता है इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं। यद्यथेति। जैसे ज्वर संतापसे रक्तपित्त प्रकट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे जैसा उदररोग और गुल्म ( गोला ) रोग और पीनसरोगसे खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है और यह क्षयरोग ( राजयक्ष्मा ) जो सम्पूर्ण रोगमें राजा है उसको प्रगट करे है ॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

भाषा–वे रोग प्रथम स्वतंत्र थे और जब बल मिल गया तौ वेही हेत्वर्थकारी अर्थात रोगके उत्पन्न करनेवाले होते है जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यंते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

भाषा—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं । जैसे कोई एक दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है ।-जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होने पाता और खासी उत्पन्न होती है । और कोई रोग दूसरे रोगको प्रकट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है । जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंको घोर क्लेशदायक मिले हुए रोग लिखाते हैं विशेषकर चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥

**तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ॥**
**ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥**

भाषा—अब कहे भये निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं । तस्मादिति । इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उनको ज्वरादिरोगोका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नसे जानना चाहिये ॥

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकाया सर्वरोगनिदानादिपचककथन समाप्तम् ॥ १ ॥

---

# अथ ज्वरनिदानम् ।

---

अब सर्व देहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे, बली, देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, जन्म मरणका कारण होनेसे, स्थावर जंगम प्राणियोमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमे चरक सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहा है ॥

तदुक्तं चरके ।

**देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली ॥**
**ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥**

भाषा—देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरको सब रोगोंमे प्रधानता है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

**दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ॥**
**ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः ॥ २ ॥**

भाषा—दक्षप्रजापतिकृत तिरस्कारसे क्रोधित श्रीरुद्र भगवान्के श्वाससे उत्पन्न

जो ज्वर सो आठ प्रकारका है। वात, पित्त, कफ इनसे ३, द्वंद्वज ३, सन्निपात १ और आगंतुज १ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठ प्रकारका है॥

इस श्लोकमे 'निःश्वाससम्भवः' यह जो पद धरा है सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहा है किंतु ज्वरकी श्वाससे उत्पत्ति नहीं है क्योंकि जैसे सुश्रुतमें लिखा है यथा "रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः।" इति। अर्थात् क्रोधित रुद्रने ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्श कर आग्नेयबाण निर्माण किया तथा च चरके "स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः। बाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम्॥" इत्यादिक वाक्योंसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी। प्रयोजन यह है कि सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे। सो वाग्भटने कहा है यथा—"ऊष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः। तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम्॥" इति। अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहीं होवे इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करे और पित्तज्वरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्य है। अन्य आचार्य कहते हैं कि श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है इसलिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होता है जैसे विदेहका वाक्य है। "ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति।" और ज्वरका स्वरूपभी हरिवंशमें लिखा है। यथा "ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः। भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥" इति। अर्थात् ज्वरके तीन चरण, तीन मस्तक, छः भुजा, नव नेत्र, भस्मयुक्त देह, रौद्र, कालकाभी काल यमराजके समान है॥

ज्वरसंप्राप्ति।

**मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः॥**
**बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥ ३॥**

भाषा—मिथ्या आहार[1] (देश काल प्रकृति आदिसे विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) मिथ्याविहार[2] (देहके पुरुषार्थसे विशेष कामना करना) इन कारणोंसे दुष्ट हुए जो दोष (वात, पित्त, कफ) सो नाभिस्तनके बीच आमाशयमें[3] प्राप्त हो रसको बिगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहसे बाहर निकाल करके प्रगट करनेवाले होते हैं॥

यह संप्राप्ति शारीरिकरोगोंकी है आगंतुजकी नहीं है क्योंकि आगंतुज रोगोंका तो

---

१ "अकाले चातिमात्रं च असात्म्यं यच्च भोजनम्। विषमाशनं च यद्भुक्तं मिथ्याहारः स उच्यते॥" इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाई है। २ "अशक्तः कुरुते कर्म शक्तिमान्न करोति च। मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विवर्जयेत्॥" ३ "नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः।"

व्यथापूर्वक वातादि दोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है । जैसे सुश्रुतमें लिखा है श्रम और चोटके लगनेसे देहधारियोंके देहमें कुपित हुआ वात सब देहको परिपूर्ण कर ज्वरको पैदा करता है । और चरकमेंभी लिखा है कि चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको बिगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करता है । शंका- क्यों जी ? आगंतुकभी शरीररोगही है क्योंकि आगंतुकज्वरमेंभी गरमी रहती है । क्योंकि " उष्मा पित्तादृते नास्ति " इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे । उत्तर-ये जो तुमने कहा सो ठीक है परन्तु इस आगंतुकरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है इस आगंतुकरोगोंको शारीरत्व नहीं है । इस श्लोकमें ' कोष्ठाग्निम् ' यह जो पद धरा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वग्नि बाहर आ जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं हो सके और दोष पचे विना ज्वर शांत नहीं होवेगा । इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये । ' बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम् ' कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥

ज्वरके लक्षण ।

**स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ॥**
**युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४ ॥**

भाषा-जिस रोगमें पसीना न आवे, देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समय हों उसको ज्वर ऐसे कहते हैं । शंका-क्योंजी ! पित्तज्वरमें तो पसीने आते हैं तो इस श्लोकमें विरुद्धता आती है । इसपर जय्यटादिक उत्तर लिखते हैं कि स्वेदावरोध कहिये " स्विद्यते अनेनेति स्वेदः " इस व्युत्पत्तिकरके स्वेद कहिये अग्नि तिसका अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पडता ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

**श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ॥**
**इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥**
**जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥**
**अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्सति ज्वरे ॥ ६ ॥**

भाषा-कारण विनाही श्रम, कर्म करनेमें उत्साह न हो अथवा खेलनेमें अरुचि, देहमें मलीनता, मुखमें विरसता, नेत्र अश्रुपातयुक्त, सर्दी, गर्मी, पवन इनकी वारं-

वार इच्छा होना और वारंवार द्वेष हो इसमें जो आदि शब्द है उससे जल और अग्निका ग्रहण है अर्थात् इनकी वार २ इच्छा और द्वेष यह चरकका मत है । तदुक्तं चरके-" ज्वलनातपवाय्वंबुभक्तद्वेषाभिलाषिता । " इति । ' अन्ये तु शैत्योष्मसाधर्म्याज्जलानलौ गृह्णंति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यंते ' और अन्य आचारी सर्दी गरमीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और वे आदिशब्दसे शयन आदि मानते हैं । जंभाई, अंगोंका टूटना, देह भारी, रोमांचोंका खडा होना, अन्नमें अरुचि अंधेरेका आना, आनन्दकी निवृत्ति, सरदीका लगना । शंका-क्यांजी ! पूर्व कह आये कि सरदी गरमीकी वार २ इच्छा और वार वार द्वेष फिर पुनः शीत पद क्यों धरा ? उत्तर-इस पदके धरनेसे सरदीकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् सरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होते हैं ॥

ये माधवाचार्यने सामान्य पूर्वरूपके लक्षण सुश्रुतोक्त लिखे हैं विशिष्ट पूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थांतरसे लिखते हैं-

सामान्यतो विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ॥
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ ७ ॥

भाष।-विशेषकरके वातज्वरमें जंभाई वहुत आती है, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमे अन्नमे अरुचि होती है यह श्लोक क्षेपक है । परन्तु वहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखा है ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठमुखशोषणम् ॥
निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ॥
शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

भाष।-कंप होना, ज्वरका विषमवेग, कण्ठ होठ मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, देहका रूखापना, चकारसे नेत्र विष्ठा मूत्र इनका काला होना, और आचारी " रौक्षमेव च " इस जगह " श्यावांगमलमूत्रता " ऐसा पाठ कहते हैं और मस्तक, हृदय, गात्र इनमें पीडा । कोई शंका करे कि गात्रपदके धरनेसेही मस्तक हृदय आदिका वोध हो गया फिर मस्तक और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर-ये दोनों पदके धरनेसे इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें वहुत पीडा होय, मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल. अफरा. जम्माई ये लक्ष्मण वातज्वरके होते हैं ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः ॥
कंठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १० ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ॥
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

भाषा-ज्वरका तीक्ष्णवेग हो, अतिसार ( यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना नकी अतिसार रोग हो ), थोडी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमे पहुँचनेसे वमनका होना, कंठ मुख नाक इनका पकना और पसीनोंका आना, बडबडाना, मुखमें कडुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्ठा मूत्र नेत्र देहकी त्वचा इनका पीला होना, तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं। शंका-क्योंजी! भ्रमको वातविकारमें लिखा है इससे यह तो वातका धर्म है फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों धरा ? उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु रोग एकही दोषमेंही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसे होय है सो लिखा है " न रोगोऽप्येकदोषजः " इति और " पैत्तिके भ्रम एव च " इस श्लोकमें चकार जो पडा है इससे इस श्लोकमें जो नहीं कहे कौनकी तीव्र गरमी, लाल चकत्ते, शीतकी इच्छा, दाह, अरुचि इत्यादि जानने ॥

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ॥
शुक्लमूत्रपुरीषत्वत्वक्स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ॥
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ १३ ॥

भाषा-स्तैमित्य ( गीले कपडेसे देहको आच्छादित कर ढकनेसे जैसा हो ऐसा मालुम हो ), ज्वरका मंद वेग, आलस्य, मुख मीठा, मल मूत्र सफेद, देहका जकडना, तृप्तसरीखा, अग्निमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, ओकारी आवे। अन्य आचार्य कहते हैं कि कफका थूकना, रोमांचका होना, अतिनिद्रा, रसके वहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना, मुखमे नोनकासा स्वाद हो, देहका थोडा गरम होना, रहका होना, लारका गिरना, मुखपाल तथा मुखनाकमें कफका पडना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेत हो ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं। " स्तंभस्तृप्तिरथापि च " इस पदमें जो चकार है उससे देहमें पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंत्रिकरोग, हृदय लिहसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ॥
कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १४ ॥

भाषा–प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा. कंठ, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमे पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ १५ ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम् ॥
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

भाषा–स्तैमित्य नाम गीले कपडेसे देहको ढकनेसे जैसा हो ऐसा मालूम हो. संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे पानी गिरे, खांसी, पसीनेका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यमवेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा मोह कासोऽरुचिस्तृषा ॥
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

भाषा–मुख कफसे लिप्त हो तथा पित्तके जोरसे मुखसे कडुआट तंद्रा, मूर्च्छा. खांसी, अरुचि, प्यास, वारंवार दाह हो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं, स्तंभ ( देहका जकडना ), पसीना, कफ, पित्तका गिरना ये सुश्रुतोक्त लक्षण औरभी जानने चाहिये ॥

सन्निपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा ॥ सस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कंठः शूकैरिवावृतः ॥ तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १९ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ॥ ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ २० ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्श-

**नमल्पशः ॥ २१ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् ॥ कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ २२ ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥ चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥**

भाषा–अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड संधि मस्तक इनमें शूल. अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र हो जावें ( अथवा टेढे नेत्र हों यह जैयटका मत है ), कानोंमे शब्द और पीडा हो. कंठमें कांटे पड जाय, तंद्रा. बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हों, जीभ परिदग्धवत् ( काली ) और खर्दरी गोजीभके समान तथा शिथिल ( लठर ) हो, पित्त और रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा वहुत लगे, निद्राका नाश हो. हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र मल इनका वहुत कालमें थोडा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले लाल कोढं और चकत्तोंका होना, शब्द वहुत मंद निकले, कान नाक मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात पित्त कफ इनका देहमें पाक हो " उदरस्य च " इस पदमें जो चकार है इससे वाग्भटने जो लिखे हैं कौन ? शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्य रात्रिमे जागना अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना वहुत आवे और नहीं आवे, कभी गान करे, कभी नाचे, हँसे, रोवे और चेष्टा पलट जाय इत्यादि जानने । ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने ॥

शंका–क्योंजी ! वातादिक दोषोके परस्पर विरुद्ध गुण हैं । फिर उनको एकत्र मिलकर एकही कार्यका करना नही घट सके है. क्योंकि परस्पर विरुद्ध गुण होनेसे जैसे अग्नि और जलके विरुद्ध गुण होनेसे एकही कार्य नहीं हो सके । ऐसेही वात पित्त कफके विरुद्ध गुण हैं । फिर ये मिलकर कैसे सन्निपातरूपी विकारको प्रगट करते हैं ? उत्तर–इसका समाधान दृढबले[२] आचार्यने इस प्रकार कहा है कि गुण विरुद्धभी वात पित्त कफ दोष हैं तथापि एक संग उत्पन्न होनेसे तथा परस्पर समान गुण होनेसे एक दूसरे दोषको शात नही कर सकते हैं । जैसे सर्पका विष सर्पको वाधक नहीं । गदाधर आचार्यने इसमें और हेतु कहे हैं । जैसे दैवकी इच्छासे और दोषोंके स्वभावसे तथा विरुद्ध गुण होनेसे सन्निपातमें एक दोष दूसरे दोषका

---

१ कोढके लक्षण भालुकीने कहे है यथा–" वरटीदृशसकाशः कंडूमान् लोहितोऽस्रकफपित्तवान् । क्षणिकोत्पत्तिविनाशः कोढ इत्यभिधीयते सद्भिः ॥" इति । २ " विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् । दोषाः सहजसाम्यत्वाद्विष घोरमहीनिव ॥ ३ " दैवाद् दोषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके । विरुद्धैश्च गुणैस्तैश्च लोपघातः परस्परम् " ॥

नाशक नहीं है । शंका–क्योजी ! वातपित्तकफका अलग कालमें संचय होता है और अलग अलग कोप होता है । इनका एकही कालमें प्रगट होना असंभव है तो कहिये तीनों दोष मिलकर कैसे सन्निपात ज्वरको प्रगट करते हैं ? उत्तर–ये त्रिदोष प्रगट कारक कारण औषध अन्नविहारके बलकरके एकही कालमें इन तीनों दोषोंका प्रकोप होता है यह सिद्धांत है ॥

## सन्निपातोंके भेद ।

सुश्रुत वाग्भटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है परंतु और आचार्योंके मतसे उल्वणादि भेदकरके ५२ प्रकारका है । यथा–

**भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक् ॥ वातपित्तोल्वणे विद्याल्लिङ्गं मंदकफे ज्वरे ॥ १ ॥ शैत्यं कासोऽरुचिस्तंद्रा पिपासादाहरुग्व्यथाः ॥ वातश्लेष्मोल्वणे व्याधौ लिङ्गपित्तानुगे विदुः ॥ २ ॥ छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना ॥ मंदवाते व्यवस्यन्ति लिङ्गं पित्तकफोल्वणे ॥ ३ ॥ सन्ध्यास्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ॥ वातोल्वणे स्याद्व्यनुगे तृष्णा कण्ठास्यशुष्कता ॥ ४ ॥ रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदतृष्णाबलक्षयः ॥ मूर्छा चेति त्रिदोषे स्याल्लिङ्गं पित्ते गरीयसि ॥ ५ ॥ आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः ॥ कफोल्वणं सन्निपातं तंद्राकासेन चादिशेत् ॥ ६ ॥ प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यं तंद्रारुच्यग्निमार्दवम् ॥ हीनवाते पित्तमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके मतम् ॥ ७ ॥ हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः ॥ हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मतम् ॥ ८ ॥ शिरोरुग्वेपथुः श्वासप्रलापच्छर्द्यरोचकाः ॥ हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ ९ ॥ शीतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् ॥ हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके विदुः ॥ १० ॥ वर्चोभेदोऽग्निदौर्बल्यं तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः ॥ कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके विदुः ॥ ११ ॥ श्वासः कासप्रतिश्यायौ मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक् ॥ कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ १२ ॥**

ये उल्वणादि भेद चरकके मतसे कहे हैं परन्तु माधवकी आचार्यने अपने ग्रंथमें उल्वणादि लक्षण औरही प्रकारसे कहे हैं। यथा–

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ तस्य ज्वरोऽङ्गमर्दस्तृट्तालुशोषप्रमीलकाः ॥ १३ ॥ आध्मानतन्द्रावरुचिश्वासकासभ्रमश्रमाः ॥ पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ १४ ॥ अन्तर्दाहो बहिः शीतस्तस्य तन्द्रा विवर्द्धते ॥ तुद्यते दक्षिणं पार्श्वमुरःशीर्षगलग्रहाः ॥ १५ ॥ निष्ठीवेत्कफपित्तं च तृष्णा कण्ठश्च दूयते ॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च बाध्यन्ते सप्रमीलकाः ॥ १६ ॥ विधुफल्गू च तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥ श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ १७ ॥ तस्य शीतज्वरो निद्रा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः ॥ शिरोगौरवमालस्यं मन्यास्तम्भप्रमीलकाः ॥ १८ ॥ उदरं तुद्यते चास्य कटी बस्तिश्च दूयते ॥ सन्निपातः स विज्ञेयो मकरीति सुदारुणः ॥ १९ ॥ वातोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ तस्य तृष्णा ज्वरग्लानिपार्श्वरुग्दृष्टिसंशयाः ॥ २० ॥ पिण्डिकोद्वेष्टनं दाह ऊरुसादो बलक्षयः ॥ सरक्तं चास्य विण्मूत्रं शूलं निद्राविपर्ययः ॥ २१ ॥ निर्भिद्यते गुदं चास्य बस्तिश्च परिकूज्यति ॥ आयम्यते भिद्यते च हिक्कते विलपत्यपि ॥ २२ ॥ मूर्च्छति स्फार्यते रौति नाम्ना विस्फुरकः स्मृतः ॥ पित्तोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ २३ ॥ तस्य दाहज्वरो घोरो बहिरन्तश्च वर्द्धते ॥ शीतं च सेवमानस्य कुप्यतः कफमारुतौ ॥ २४ ॥ ततश्चैनं प्रधावन्ते हिक्काश्वासप्रमीलकाः ॥ विषूचिका पर्वभेदः प्रलापो गौरवं क्लमः ॥ २५ ॥ नाभिपार्श्वरुजा तस्य स्विन्नस्याशु विवर्द्धते ॥ स्विद्यमानस्य रक्तं च स्रोतोभ्यः संप्रपद्यते ॥ २६ ॥ शूलेन पीड्यमानस्य तृष्णा दाहश्च वर्द्धते ॥ असाध्यसन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥ २७ ॥ न हि जीवत्यहोरात्रमेतेना-

विष्टविग्रहः ॥ कफोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ २८ ॥ तस्य शीतज्वरस्वप्नगौरवालस्यतन्द्रिकाः ॥ छर्दिर्मूर्च्छातृषादाहतृष्णारोचकहृद्ग्रहाः ॥ ष्ठीवनं मुखमाधुर्यं श्रोत्रवाग्दृष्टिनिग्रहः ॥ २९ ॥

मतान्तरभेद ।

कुम्भीपाकः पौर्णनावः प्रलापी ह्यंतर्दाहो दंडपातोऽतकश्च ॥
एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ १ ॥
अजघोषभूतहासौ यंत्रापीडश्च संन्यासः ॥
संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदश च ॥ २ ॥

भाषा-१ कुम्भीपाक, २ पौर्णनाव, ३ प्रलापी, ४ अन्तर्दाह, ५ दण्डपात, ६ अन्तक, ७ एणीदाह, ८ हारिद्रसंज्ञक, ९ अजघोष, १० भूतहास, ११ यन्त्रापीड, १२ संन्यास, १३ संशोषी ये तेरह प्रकारके सन्निपात हैं। इन तेरहके क्रमसे लक्षण लिखे हैं ॥

कुम्भीपाक ।

घोणाविवरगलद्बहुशोणासितलोहितं सार्ति ॥
विलुठन्मस्तकमभितः कुंभीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ १ ॥

पौर्णनाव ।

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितांतमुच्छ्वसति ॥
तं पौर्णनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ २ ॥

प्रलापी ।

स्वेदभ्रमांगमर्दाः कंपो दवथुर्वमी व्यथा कण्ठे ॥
गात्रं च गुर्वतीदं प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगम् ॥ ३ ॥

अन्तर्दाह ।

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिश्च यस्यातिसंततः श्वासः ॥
अंगमिव दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहार्दितः कथितः ॥ ४ ॥

दण्डपात ।

नक्तं दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ॥
उत्थाय दण्डपाते भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५ ॥

अन्तक ।

संपूर्य्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ॥
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यांतकार्त्तस्य ॥ ६ ॥

एणीदाह ।

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजगपतंगहरिणगणः ॥
वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्त्तस्य ॥ ७ ॥

हारिद्र ।

यस्यातिपीतमंगं नयने सुतरां मलं तथोऽप्यधिकम् ॥
दाहोऽतिशीतता बहिरस्य च हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ८ ॥

अजघोष ।

छगलकशरीरगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरंध्रः ॥
अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥ ९ ॥

भूतहास ।

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयान् यदिंद्रियग्रामः ॥
हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ १० ॥

यन्त्रापीड ।

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यंत्रेणेवावपीड्यते गात्रम् ॥
रक्तं पीतं च वमेद्यंत्रापीडः स विज्ञेयः ॥ ११ ॥

संन्यास ।

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति ॥
संन्याससन्निपाते प्रलपति मुग्धाक्षिमण्डलो भवति ॥ १२ ॥

संशोषी ।

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोऽवलोत्सर्गात् ॥
संशोषिणि सितपिटकामण्डलयुक्तो ज्वरो भवति ॥ १३ ॥

इति कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानां लक्षणानि ।

सन्निपातके विस्फारकादि १६ भेदोंको कहते हैं ।

१ विस्फारक, २ शीघ्रकारी, ३ कम्पन, ४ बभ्रु, ५ विरुद्धाख्य, ६ शर्कराख्य, ७ मल्लू, ८ कूटपालक, ९ संमोहक, १० पाकल, ११ याम्य, १२ संग्राम, १३ क्रकच, १४ कर्कोटक, १५ दारिक, १६ व्यालाकृति इन १६ सन्निपातोंके लक्षण ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखे । अब प्रसंगवश सम्पूर्ण सन्निपातोंकी उत्पत्ति और सम्प्राप्ति ग्रन्थांतरोंसे लिखते हैं ॥

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारनीहारशीतैः ॥
शोकव्यायामचिंताग्रहगणवनितात्यंतसंगप्रसङ्गैः
प्रायः कुप्यंति पुंसां मधुसमयशरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ १ ॥

भाषा—खट्टा, चिकना, गरम, तीखा, कडुआ, मीठा, मद्य, सूर्यकी घामसे आदि ले तापका सेवन, कषैला, काम, क्रोध, रूक्ष, भारी, मांस आदि पदार्थका सेवन, नीहार, शीत, शोक, दण्ड, कसरत आदि श्रम, चिंता, भूतपिशाचकी बाधा, अत्यंत स्त्रीसंग इन कारणसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्रपद इन महीनोंमें मनुष्योंके प्रायः सन्निपातोंका कोप होता है ॥

आमो ह्याहारदोषात्प्रथममुपचितो हंति वह्निं शरीरे
श्लेष्मत्वं याति भुक्तं सकलमपि ततोऽसौ कफो वायुदुष्टः ॥
स्रोतांस्यापूर्य्य रुध्यादनिलमथ मरुत्कोपयेत्पित्तमंतः
संमूर्छ्याऽन्योऽन्यमेते प्रबलमिति नृणां कुर्वते सन्निपातम् ॥ २ ॥

भाषा—आहारके दोषसे प्रथम संगृहीत जो आम सो देहकी अग्निको शान्त करे और मनुष्य जो कुछ खाय सो सब कफ हो जाय और फिर इस कफको वायु दूषित करे तब ये पवनके वहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्त हो उनको रोक दे तब पवन पित्तको कुपित करे ऐसे तीनों दोष अन्योन्य कुपित हो मनुष्योंके प्रबल सन्निपात रोग प्रगट करे हैं ॥

अब संधिकादि तेरह सन्निपात और उनके लक्षण पृथक् पृथक् लिखते हैं ।

संधिकश्चांतकश्चैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः ॥ शीताङ्गस्तंद्रिकः प्रोक्तः कंठकुब्जश्च कर्णकः ॥ ३ ॥ विख्यातो भुग्ननेत्रश्च रक्तष्ठी-वी प्रलापकः ॥ जिह्वकश्चेत्यभिन्यासः सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ४ ॥

भाषा–१ संधिक, २ अंतक, ३ रुग्दाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग, ६ तंद्रिक, ७ कण्ठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ भुग्ननेत्र, १० रक्तष्ठीवी, ११ प्रलापक, १२ जिह्वक, १३ अभिन्यास ये तेरह सन्निपात कहे हैं ॥

अथ तेरह सन्निपातोंकी मर्यादा ।

**संधिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः ॥ रुग्दाहे विंशतिर्ज्ञेया वह्न्यष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकं तु शीतांगे तान्द्रिके पंचविंशतिः ॥ विज्ञेया वासराश्चैव कंठकुब्जे त्रयोदश ॥ ६ ॥ कर्णके च त्रयो मासा भुग्ननेत्रे दिनाष्टकम् ॥ रक्तष्ठीवी दशाहानि चतुर्दश प्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वके षोडशाहानि कलाभिन्यासलक्षणे ॥ परमायुरिदं प्रोक्तं म्रियते तत्क्षणादपि ॥ ८ ॥**

भाषा–संधिककी ७, अन्तककी १०, रुग्दाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४, शीतांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककी तीन महीने ( ९० दिन) भुग्ननेत्रकी ८, रक्तष्ठीवीकी १०, प्रलापककी १४, जिह्वककी १६, अभिन्यासकी १६ दिनकी ये सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहे हैं । परंतु रोगी शीघ्रभी मर जाता है ॥

उक्त सन्निपातोंमें साध्यासाध्यविचार ।

**सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैव कर्णकः कंठकुब्जकः ॥**
**जिह्वकश्चित्तविभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ ९ ॥**

भाषा–संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक ३, कंठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६ ये छः साध्य हैं । बाकी बचे सात सो मारक हैं ॥

असाध्यकृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

**दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ॥**
**सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १० ॥**

भाषा–जिसमें दोष[१] ( वात, पित्त, कफ ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलते हों और अग्नि शांत हो गई हो वह सन्निपातज्वर असाध्य है और इससे विपरीत अर्थात् दोष बढे न हों, अल्प लक्षण हों, अग्नि थोडी दीप्त हो वह सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

---

१ जय्यटने दोषशब्दका मल अर्थ करा है अर्थात् पुरीषादिक बढे सते इत्यादि । इस श्लोकका तात्पर्यार्थ यह है कि असाध्य और कृच्छ्रसाध्य भयेपर सुखसाध्य नही होता है इसीसे भालुकी आचार्यने लिखा है ।

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता ॥
यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

भाषा–जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करे है वह मौतके साथ संग्राम करता है। जो इस सन्निपातको जीते अर्थात् शात करे वह सर्व रोगके गणोंका जीतनेवाला है ॥

तथा च।

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥ १२ ॥

भाषा–जो वैद्य सन्निपातरूपी सागरमें डूबे मनुष्यको निकालता है उसने कौनसा धर्म न करा अर्थात् सब धर्म कर चुका और वह कौन पूजाके योग्य नहीं है अर्थात् वह सब पूजाओंके योग्य है ॥

संधिक।

पूर्वरूपकृतशूलसम्भवं शोषवातबहुवेदनान्वितम् ॥
श्लेष्मतापबलहानिजागरं सन्निपातमिति सन्धिकं वदेत् ॥ १ ॥

भाषा–जिसके पूर्वरूपमें शूल, वातसे बहुत पीडा, कफका गिरना, सन्ताप, बलहानि, रात्रिमें जागरण ये लक्षण होंय तिसको सन्धिक सन्निपात कहते हैं ॥

अन्तक।

दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकंपम् ॥ हिक्कां करोति कसनं च समाजुहोति जानीहि तं विबुधवर्जितमंतकाख्यम् ॥ २ ॥

भाषा–दाह करे, संतापको बढावे, मोहको देवे, शिर कंपावे, हिचकी करे और खांसीको बढावे ऐसा पंडितोंकरके त्याज्य अंतक सन्निपात जानना ॥

रुग्दाह।

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांद्यश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्यथितकण्ठमन्याहनुः ॥ निरंतरतृषाकरः श्वसनकासहिक्काकुलः स कष्टतरसाधनो भवति हन्त रुग्दाहकः ॥ ३ ॥

भाषा–अनर्थभाषण, सन्ताप, अतिमोह, मंदता, अनायास श्रम और पीडा, कंठ मन्यानाडी और ठोडी इनमें व्यथा, निरंतर प्यास लगे, श्वास खांसी और हिचकी इन लक्षणोंकरके युक्त ऐसा यह रुग्दाहनामक सन्निपात कष्टसाध्य है ॥

चित्तभ्रम ।

**यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा भ्रममदपरितापो मोहवैकल्यभावः ॥ विकलनयनहासो गीतनृत्यप्रलापी ह्यभिदधाति असाध्यं केऽपि चित्तभ्रमाख्यम् ॥ ४ ॥**

भाषा–जिसके कोई प्रकार करके पीडा होय तथा भ्रम ( धतूरा खाये सरीखी अवस्था हो ), सन्ताप, मोह, विकलता, नेत्रोंमें वेकली, हँसना, गाना, नाचना, वकना ये लक्षण होंय उसको कोई असाध्य चित्तभ्रम सन्निपात ऐसा कहते हैं ॥

शीतांग ।

**हिमसदृशशरीरो वेपथुःश्वासहिक्का शिथिलितसकलांगः खिन्ननादोग्रतापः ॥ क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्त-स्त्वरितमरणहेतुः शीतगात्रप्रभावात् ॥ ५ ॥**

भाषा–शरीर वर्फके समान शीतल होय, कम्प, श्वास, हिचकी, सर्व अङ्ग शिथिल हों, मन्द शब्द, देहके भीतर उग्र सन्ताप, अनायास श्रम, मनका संताप, खांसी, छर्दि, अतीसार इन लक्षणोंसे युक्त सन्निपातको शीताङ्ग कहते हैं । यह प्राणोंका शीघ्र नाशकर्त्ता है ॥

तंद्रिक ।

**प्रभूता तन्द्रार्त्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छ्यामा जिह्वा पृथुलकठिना कण्टकवृता ॥ अतीसारः श्वासः क्लमथुपरितापः श्रुतिरुजो भृशं कण्ठे जाड्यं शयनमनिशं तंद्रिकगदे ॥ ६ ॥**

भाषा–तंद्रा वहुत होय, शूल ज्वर कफ तृपासे रोगी वहुत पीडित हो, जीभ काले रंगकी मोटी कठोर और कांटेयुक्त हो और अतिसार, श्वास, ग्लानि, संताप, कर्णशूल, कंठमें जडता और रातदिन निद्रा ये लक्षण तंद्रिक सन्निपातमें होते हैं । यह असाध्य है ॥

कंठकुब्ज ।

**शिरोर्त्तिकण्ठग्रहदाहमोहकंपज्वरारक्तसमीरणार्त्तिः ॥ हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छा स्यात्कण्ठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः ॥७॥**

भाषा–शिरमें पीडा, कंठमें पीडा, दाह, वेहोशी, कंप, ज्वर, वातरक्तसम्बंधी पीडा, हनुग्रह, संताप, वकना और मूर्च्छा इन लक्षणोंसे युक्त सन्निपातको कण्ठकुब्ज कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥

कर्णक ।

**प्रलापः श्रुतिह्रासकण्ठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ॥**
**ज्वरं तापकर्णांतयोर्गल्लपीडा बुधा कर्णकं कष्टसाध्यं वदंति ॥ ८ ॥**

भाषा–अनर्थभाषण करे, बहरा हो जावे, कंठमें दर्द होय, अंगोंमें पीडा, श्वास, कास, पसीना, लारका गिरना, ज्वर, संताप, कर्ण और गाल इनमें पीडा जिसमें ये लक्षण हो उसको पण्डित कष्टसाध्य कर्णक सन्निपात कहते हैं ॥

भुग्ननेत्र ।

**ज्वरबलापचयः स्मृतिशून्यता श्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ॥**
**प्रलपनभ्रमकंपनशोफवांस्त्यजति जीवितमाशु स भुग्नदृक् ॥ ९ ॥**

भाषा–ज्वर, बलका नाश, स्मृतिनाश. श्वास, टेढी दृष्टि, बेहोशी, अनर्थभाषण, भ्रम, कंप और सूजन ये लक्षण भुग्ननेत्र सन्निपातके हैं । यह रोगी जल्दी मरता है॥

रक्तष्ठीवी ।

**रक्तष्ठीवी ज्वरवमितृषामोहशूलातिसारा हिक्काध्मानभ्रमणद-वथुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः ॥ श्यामा रक्ताधिकतररसना मण्ड-लोत्थानरूपा रक्तष्ठीवी निगदित इह प्राणहंता प्रसिद्धः ॥ १० ॥**

भाषा–रक्तकी उलटी करे, ज्वर. वमन, तृषा, मूर्च्छा, शूल, अतिसार. हिचकी, अफरा. भौंरका आना, संताप, श्वास. संज्ञानाश, काली और लाल जीभ. देहमें रुधिरके विकारसे चकत्ता जिसमें ये लक्षण हो उसको रक्तष्ठीवी सन्निपात कहते हैं, यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

प्रलापक ।

**कम्पप्रलापपरितापनशीर्षपीडा प्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्य-चिन्ता ॥ प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रं प्रयाति पितृ-पालपदं प्रलापी ॥ ११ ॥**

भाषा–कम्प, बडबडाना, संताप, शिरमें पीडा इनका विशेष जोर हो, पवित्र-वायमें आसक्त, दूसरेकी चिंता करे, बुद्धिका नाश हो, विकल और बहुत बकवाद करे ऐसा यह प्रलापक सन्निपातवाला रोगी यमराजके पुरको जाता है ॥

जिह्वक ।

**श्वसनकासपरितापविह्वलः कठिनकंटकपरीतजिह्वकः ॥**
**बधिरमूकबलहानिलक्षणो भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ १२ ॥**

भाषा—श्वास, खांसी, संताप, विह्वल, कठोर और कांटोंसे व्याप्त ऐसी जीभ, बहरा, गूंगा और बलकी हानि इन लक्षणोंसे संयुक्त ऐसा यह जिह्वक सन्निपात कष्टसाध्य है ॥

अभिन्यास ।

**दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रा वैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी ॥ बल-प्रणाशः श्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः ॥ १३ ॥**

भाषा—त्रिदोषोंके कोपके समान मुखपर चिकनापना, निद्रा, बेकली, चेष्टाहीन हो, कष्टसे बोले, बलनाश, श्वासादिकोंका रुकना ये लक्षण अभिन्यास सन्निपातमें होते हैं । यह महासाध्य मृत्युके तुल्य है ॥

सन्निपातोपद्रव ।

**सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः ॥**
**शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १४ ॥**
**ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः ॥**
**क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः १५**

भाषा—सन्निपातज्वर शात होनेके पीछे कानकी जडमें दारुण सूजन पैदा होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचे है । प्रायः यह मारही डाले है । यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तौ असाध्य है, ज्वरके मध्यमें होय तौ कष्टसाध्य है और ज्वरके अंतमें होय तौ सुखसाध्य है ऐसा मुनीश्वरोंने कहा है ॥

**सद्यस्त्रिपंचसप्ताहाद्दशाहाद्द्वादशादपि ॥**
**एकविंशद्दिनैः शुद्धः सन्निपाती सुजीवति ॥ १६ ॥**

भाषा—सन्निपात हुएपर तत्काल, तीन, पांच, सात, दश और बारह दिनसे इक्कीस दिवसतक सन्निपातवाला रोगी शुद्ध होकर जीवे है ॥

त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा ।

**सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा ॥**
**एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ १७ ॥**
**पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् ॥**
**हंति विमुंचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ १८ ॥**

---

१ “सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा । पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा ॥” इति ।

भाषा-जबसे त्रिदोष प्रगट हो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोषज्वरोंकी मर्यादा है। इस अवधिमें ज्वर जाता रहे अथवा मृत्यु होय। सात नौ और ग्यारह दिनमें मर्यादा वाताधिक, पित्ताधिक और कफाधिक सन्निपातोंकी क्रमसे जाननी। पित्त, कफ और वात इनकी वृद्धि क्रमकरके दश दिनकी, बारह दिनकी और सात दिनकी है। इसमें त्रिदोषज्वर धातुपाक होनेसे मार डाले और मलपाक होनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाय।

धातुपाकलक्षण।

**निद्राबलौजोरुचिवीर्यनाशो हृद्वेदना गौरवताल्पचेष्टा ॥**
**विष्टंभता यस्य किलारतिः स्यात्स धातुपाकी मुनिभिः प्रदिष्टः १९**

भाषा-निद्रा बल तेज रुचि वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीडा, देह भारी, हीनचेष्टा, अफरा, मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहा है। धातुपाक कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं॥

मलपाकलक्षण।

**दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ॥**
**इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ २० ॥**

भाषा-दोषोंका स्वभाव पलट जाय, हलका होना, देह हलकी हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये मलपाकके लक्षण जानने। धातुपाक और मलपाक होना केवल ईश्वरपर है। इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है॥

आगंतुकज्वर।

**अभिघाताभिचाराभ्यामभिषंगाभिशापतः ॥**
**आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २१ ॥**

भाषा-तलवार, छुरा, मुक्का, लकडी इत्यादि शस्त्र आदिके लगनेसे प्रगट ज्वरको अभिघातज कहते हैं। विपरीतमंत्रके जपनेसे, लोहके सुवासे, मारणार्थ सर्पपादिक होम अथवा कृत्याका प्रयोग करनेसे उत्पन्न ज्वरको अभिचारज कहते हैं। काल, शोक, भय, क्रोध, भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न ज्वरको अभिषंगज कहते हैं। ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध इनके शाप देनेसे प्रगट ज्वरको अभिशापज कहते हैं। ये चार प्रकारसे आगंतुक ज्वर उत्पन्न होय हैं इस ज्वरके आरंभसे पूर्व कोई दोषका प्रकाश नहीं हो पीछे जैसे दोष कुपित हों वे तिनको उन्हीं उन्हीं दोषोंके लक्षणकरके

जाने । जैसे " कासशोकभयाद्वायुः " अर्थात् काम शोक भयसे वात कुपित होता है ॥

विषजन्य आगंतुकज्वर ।

**श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च ॥**
**भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ २२ ॥**

भाषा-अब आगंतुकज्वरोंके हेतुभेदकरके लक्षण कहते हैं । स्थावरजंगम विष भक्षण करनेसे जो ज्वर होय उससे मुख श्यामवर्ण और दाह तथा दस्तोंका होना, अन्नमें अरुचि, प्यास, सुई चुमनेकीसी पीडा और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

औषधगंधजनित ज्वर ।

**औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः ॥**

भाषा-तीक्ष्ण औषधके सूंघनेसे जो ज्वर होय उसमें मूर्च्छा, शिरमें पीडा, वमन, छींक ये लक्षण होते हैं ॥

कामज्वरके लक्षण ।

**कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनम् ॥**
**हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥ २३ ॥**

भाषा-सुन्दर स्त्रीके देखनेसे मनुष्यके मनमें घोर कामकी बाधा उत्पन्न हो उससे प्रगट ज्वरके ये लक्षण हैं । चित्तकी अस्थिरता, तंद्रा, आलकस, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीर सूख जावे ॥

भय शोक और कोपज्वर ।

**भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २४ ॥**

भाष-भयसे और शोकसे उत्पन्न ज्वरमें अनर्थ बके कोपसे प्रगट ज्वरमे कंप होय ॥

अभिचार और अभिघातज्वरके लक्षण ।

**अभिचाराभिघाताभ्यां मोहस्तृष्णा स जायते ॥**

भाषा-अभिचार और अभिघातसे प्रगट ज्वरमें मोह और तृष्णा होवे ॥

भूताभिषंगज्वरके लक्षण ।

**भूताभिषंगादुद्वेगो हास्यरोदनकंपनम् ॥ २५ ॥**

भाषा-भूतबाधासे उत्पन्न ज्वरमें चित्तमे उद्वेग, हँसे, रोवे और कम्प ये लक्षण होते हैं ॥

**कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ॥**
**भूताभिषंगात्कुप्यंति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ २६ ॥**

भाषा–काम शोक और भय इनसे वात कुपित होता है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है और भूताभिषंगसे तीनों दोष कुपित होते हैं। इसमें औरभी लक्षण होते हैं अर्थात् उन्मादनिदानमें जिस जिस देवग्रहोंके लक्षण "हास्यरोदनकंपादि" कहे हैं वे लक्षण होते हैं॥

विषमज्वरकी संप्राप्ति।

**दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥**
**धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ २७ ॥**

भाषा–जिस मनुष्यके ज्वर, औषधादिक सेवन करनेसे शांत होनेके पश्चात और आरंभसे इक्कीस दिन वीतनेपर तथा जीर्ण अवस्था होनेपर अपथ्य करनेसे वातपित्तादि दोष पुनः थोडे प्रकुपित हों रसरक्तादि धातुओंमेंसे किसी धातुमें प्राप्त हों और उनको दूषित कर विषमज्वर कहिये तृतीय चतुर्थादिक ज्वर उत्पन्न करे। वाशब्दकरके प्रथमसेही विषमज्वर होय है यह सूचना करी। यथा "आरम्भाद्विषमो यस्तु" इति अल्पशब्दसे यह दिखाया कि वह दोष वलहीन होनेसे कालांतरमें वलवान् होकर ज्वर करे और जो दोष वलवान् है वह नित्यज्वर करे है। विषमज्वरके लक्षण भालुकीने कहे हैं सो ऐसे, अनियतकालमें शीत उष्णकरके विषमवेग ज्वर होय उस ज्वरको विषमज्वर ऐसे कहते हैं। दूसरे लक्षण ऐसे कि "मुक्तानुबंधित्वं विषमत्वं" अर्थात् जो ज्वर छोड दे और फिर आ जावे उसको विषमज्वर ऐसे कहते हैं॥

धातुगत ज्वरके नाम।

**संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ सततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ २८ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि अस्थिमज्जागतः पुनः ॥ कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥ २९ ॥**

भाषा–संतत, सतत, अन्येद्यु (द्व्याहिक), तृतीयक (त्र्याहिक) जिसको तिजारी कहते हैं और चातुर्थिक जिसको चौथिया कहते हैं ऐसे पांच प्रकारके विषमज्वर हैं। संतत शब्दकरके सतत और संतत ये दोनों जानने अर्थात रसस्थ दोष संततज्वर करे हैं और रक्तस्थ दोष सतत ज्वर करे हैं। इससे संतत और सतत ये दोनों शब्द केवल संज्ञावाचक हैं। सातत्यवाचक नहीं हैं ऐसा जाने। वेही दोष मांसगत अन्येद्युष्क अर्थात् द्व्याहिक (एकतरा) को करे हैं और मेद-

गत दोष तृतीयक ( तिजारी ) ज्वर करे हैं और वेही दोष अस्थिमज्जामें प्राप्त भये दुःसह मृत्युकारक अनेक रोगोंसे व्याप्त ऐसा चातुर्थिक ज्वर प्रगट करे हैं ॥

संततज्वरके लक्षण ।

**सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥**
**संतत्या यो विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ३० ॥**

भाषा-सात दिनपर्यंत किंवा दश दिनपर्यंत किंवा बारह दिनपर्यंत एकसा जो ज्वर रहे और उतरे नहीं तिसको संततज्वर कहते हैं । सात, दश, बारह ये जो कहे सो अनुक्रम करके वात, पित्त, कफ इनके उल्बणसे कहे हैं । यह संततज्वर त्रिदोषज है कारण इसका बारह पदार्थोंके साथ होना है । ऐसे वातादिदोष धातुके प्रमाण मूत्र और मल इनको एकही समयमें ग्रसकर संततज्वर उत्पन्न करे हैं । बारह पदार्थ ये हैं । वातादि दोष ३, सप्तधातु ७, मूत्र १ और मल १ मिलकर बारह हुए ॥

संततकादिकोंके लक्षण ।

**अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्त्तते ॥ अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालं प्रवर्त्तते ॥ ३१ ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः ॥ केचिद्भूताभिषंगोत्थं वदंति विषमज्वरम् ॥ ३२ ॥**

भाषा-काल छः हैं । १ पूर्वाह्न, २ मध्याह्न, ३ अपराह्न, ४ प्रदोष, ५ अर्द्धरात्रि, ६ प्रत्यूष । पूर्वाह्न और प्रदोष ये कफके काल हैं, मध्याह्न और अर्द्धरात्रि ये पित्तके काल हैं, अपराह्न और प्रत्यूष ये वातके काल हैं । संततकज्वर दिनरातमें दो समय आता है । ईशानदेव कहते हैं कि दिनके दो वेला अथवा रात्रिके दो वेला अथवा दिनके एक वेला और रात्रिके एक वेला एकके दो वेला अमुक वेलामें आवेगा । जैसे ज्वरके आनेका समय नहीं कहा है । अन्येद्युष्कज्वर अहोरात्रिमें एक वेलामें आता है । तृतीयकज्वर जिस दिन आता है उससे तीसरे दिन फिर आता है और चातुर्थिक चौथे दिन आता है और कोई आचार्य इस विषमज्वरको भूताभिषंगोत्थ कहते हैं । यह मत सुश्रुताचार्यहीका मान्य है अर्थात् उसने विषमज्वरपर बलि होमादिक भूतोचित और कषायपानादिक दोषोचित ऐसी चिकित्सा कही है और विषमज्वर ये प्रायशः आगंतुकके सम्बन्धी हैं यह चरकने कहा है ॥

उत्कृष्टदोष भेदकरके तृतीयकचतुर्थकोंके दूसरे लक्षण ।

**कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताच्छिरोग्रा-**

**हौ त्रिविधः स्याचृतीयकः ॥ ३३ ॥ चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः ॥ जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसंभवः॥३४॥**

भाषा—तृतीयक ज्वर कफपित्तके जोरसे त्रिकस्थान ( तीन हड्डी ) में पीडा करे है, वातकफके जोरसे पीठमें पीडा करे, वातपित्तके जोरसे मस्तकमें पीडा करे है, ऐसे तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका है। त्रिकग्राही जो कहा इसका तात्पर्य यह है कि त्रिक वातका स्थान है, उसके स्थानमें कफ पित्त दूसरेके स्थानमें पहुँचनेसे निर्बल हो जाते हैं इससे तीसरे दिन ज्वर करते हैं। यदि कफ पित्त स्वस्थानपर स्थित हों तो संततज्वरको करते हैं यह जय्यटका मत है। ऐसेही मस्तक कफका स्थान है और पीठ पित्तका स्थान है इनमें दूसरे दोषोंके पहुँचनेसे दुर्बल होकरके तृतीयक ज्वर करते हैं। यदि त्रिक वातका स्थान है तो फिर आप पित्तकफका उस स्थानमें गमन कैसे कहते हो ? यह स्थानका नियम प्रकृति स्थिति दोषोंका कहा है कुपित दोषोंका नहीं कहा है। क्योंकि कुपित दोषोंका सर्वत्र गमन होता है, यह सुश्रुतका मत है। ऐसेही दोषोंको अन्यस्थानगतत्व होनेसे तथा दोषोंको निर्बलत्व होनेसे चातुर्थिक ज्वरमेंभी जानना। चातुर्थिकज्वर दो प्रकारकी शक्ति दिखाता है सो ऐसे। कफाधिक जिसमें होवे वह प्रथम जंघाओंमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व देहमे व्याप्त होय और वाताधिक्य जिसमें होवे वह पहिले मस्तकमें व्याप्त होकर पीछे सर्व देहमें व्याप्त होता है। ये पांच प्रकारके विषमज्वर प्रायशः सन्निपातसे प्रगट होते हैं यह चरकका मत है। हारीत ऋषि कहते हैं कि चातुर्थिक ज्वरमें पित्त प्रधान है। इन विषमज्वरोंका उत्पत्तिक्रम वृद्धसुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है कफके पांच स्थान हैं उनमें जिस जिस स्थानमे दोष प्राप्त होते हैं वहां उसी उसी विषमज्वरको प्रगट करते हैं। उन पांच स्थानोंके नाम आमाशय १, हृदय २, कंठ ३, शिर ४ और संधि ५। तहां आमाशयमें दोष पहुँचनेसे संततकज्वर दो समय आता है। हृदयस्थित दोष आमाशयमें आनेसे एकतरा एक समय आता है। कंठमें स्थित दोष एक दिनमें हृदयमें आता है दूसरे दिन आमाशयमें प्राप्त हो ज्वर प्रगट करे उसे तृतीयक ( तिजारी ) कहते हैं। शिरमें स्थित जो दोष सो क्रमसे कंठ, हृदय और आमाशयमें तीन दिनमें प्राप्त हो चतुर्थ दिवस ( चातुर्थिक ) ज्वर प्रगट करता है और उन दोषोंका उलटकर पुनः स्वस्थानमें पहुँचना उसी दिन होता है क्योंकि दोष वेगवान् होते हैं। और दोष संधिस्थित होते हैं तब प्रलेपक ज्वर प्रगट करते हैं। ये विषमज्वरके समान ज्वर हैं कारण इसका यह है कि संधि आमाशयमें स्थित है

---

१ त्रिक कहिये कमर और जघाके मध्यकी तीन हड्डी। २ सुश्रुते—" कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्। यत्र सङ्गः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥ "

और सुश्रुतने कहा है कि प्रलेपक यह विषमज्वर है धातुशोष रोगियोंको क्लेशका देनेवाला है ॥

विषमज्वरके भेद।

**विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थिकविपर्ययः ॥**
**स मध्ये ज्वरयत्यह्नि आद्यंते च विमुंचति ॥ ३५ ॥**

भाषा—चातुर्थिक ज्वरका उलटा यह दूसरा विषमज्वर है यह प्रथम और अंतका दिन छोडकर बीचके दो दिन आता है। जैसे यह चातुर्थिकका विपर्यय है तैसेही तृतीयक आदिकाभी विपर्यय होता है उनको कहते हैं जैसे बीचके एक दिन ज्वर आवे और आदि अन्तके दिन नही आवे यह तृतीयकका विपरीत और जो एक काल छोडकर सब दिन रात्री ज्वर रहे वह अन्येद्युष्क ( इकतरे ) का विपरीत जानना। इनके विषयमें ग्रन्थकारोंके भिन्न भिन्न मत हैं। विस्तारके भयसे इस जगह नहीं लिखे हैं ॥

वातबलासकज्वर।

**नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति ॥**
**स्तब्धांगः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ३६ ॥**

भाषा—वातबलासक नामक ज्वर जिस मनुष्यके हो वह उस ज्वरकरके शोथ-युक्त अर्थात् सूजन हो और मन्दज्वर सदैव बना रहे। देह रूखी हो, अंग जकड जावे, कफ विशेष होय यह ज्वर वात और कफसे होता है इसको वातबलासक ज्वर कहते हैं ॥

प्रलेपकज्वर।

**प्रलिंपन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ॥**
**मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ३७ ॥**

भाषा—जिस ज्वरमे पसीनेसे तथा सूर्यकी घामसे अथवा देहके गौरवसे मानो देहको लिप्त कर दियासा मालूम हो इसी हेतुसे मन्द ज्वर हो शीत लगे। यह ज्वर कफपित्तसे प्रगट होता है और राजयक्ष्मारोगमें यह होता है। कोई इसको त्रिदो-षजनित कहते हैं इसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं ॥

---

१ "प्रलेपकस्त्वविषमः प्रायः क्लेशाय शोषिणाम् ।" अन्ये रात्रिज्वरादयोऽपि विष-मज्वरा बोद्धव्याः । यथोक्तं "समौ वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः । रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु ॥ " २ वातबलासलक्षणं ग्रन्थान्तरे-" बलासो वायुना युक्तः शीतादि षडहे ज्वरम् । जनयेन्नयनस्रावं हृत्पीडां मधुरास्यताम् ॥ "

विषमज्वर विशेषभेद ।

**विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ॥**
**तेनार्धं शीतलं देहमर्धमुष्णं प्रजायते ॥ ३८ ॥**

भाषा–अन्नका रस दुष्ट होनेसे और देहमें कफ पित्त दुष्ट होकर स्थित होनेसे अर्धनारीश्वररूप अथवा नरसिंहरूप अर्धांग ज्वर प्रगट करे है अर्थात् अर्धदेह कफसे शीतल और अर्धदेह पित्तसे गरम होता है ॥

**काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ॥**
**तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ३९ ॥**

भाषा–जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त दुष्ट होय और कफ हाथ पैरमें दुष्ट होकर स्थित होवे तिसकरके सब देह उष्ण रहे और हाथ पग शीतल रहें ॥

इन्होंका विपरीत द्वितीय ज्वर ।

**काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चांते व्यवस्थितम् ॥**
**शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ४० ॥**

भाषा–जिस समय कोठेमें कफ दुष्ट हो और पित्त हाथ पैरोंमे होकर रहे तब शरीर शीतल हो और हाथ पैर उष्ण होंय ॥

शीतपूर्वज्वरके लक्षण ।

**त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् ॥**
**तयोः प्रशांतयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ४१ ॥**

भाषा–कफ और वात ये दुष्ट होकर त्वचामें प्राप्त हों अर्थात् रसधातुका आश्रय कर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करते हैं और जब इनका वेग शांत होता है तब पिछाडी पित्त दाह करे है

दाहपूर्वज्वरके लक्षण ।

**करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ॥**
**तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमंततः ॥ ४२ ॥**
**द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ॥**
**दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥ ४३ ॥**

भाषा–उसी प्रकार पहिले पित्त रसगत होकर अत्यंत दाह करे है पीछे उसका वेग शांत भयेपर वात कफ ये शीत करते हैं । दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये

दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोंके संबंधसे होते हैं ऐसा ऋषियोंने कहा है। उनमें दाहपूर्वक ज्वर दुःखमद और कृच्छ्रसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है ॥

सप्तधातुगत ज्वरोंके लक्षण रसगत ज्वरके लक्षण।

**गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ॥**
**रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ४४ ॥**

भाषा–रसधातुमें स्थित ज्वर होय तौ देह भारी, दोषोंको हृदयमें स्थित होनेसे उपस्थित वमनसी मालूम हो, ग्लानि, ओकारी, अन्नमें अरुचि और दैन्य कहिये मनमें खेद ये चिह्न होते हैं ॥

रक्तगत ज्वरके लक्षण।

**रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ ॥**
**प्रलापः पिटिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ४५ ॥**

भाषा–रुधिरका गिरना, दाह, मोक्ष, वमन, भ्रम, अनर्थ बोले, देहमें फुंसी, प्यास ये लक्षण रक्तगत ज्वरके होनेसे होते हैं ॥

मांसगत ज्वरके लक्षण।

**पिंडिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ॥**
**उष्मांतर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ४६ ॥**

भाषा–जानुके नीचे मांसका पिंड हो तथा दंड आदिके लगनेकीसी पीडा, प्यास, मलमूत्रका निकलना, गरमी, अंतर्दाह, हाथ पैरोंका इधर उधर पटकना और ग्लानि ये लक्षण जब मांसमें ज्वर पहुँच जाय है तब होते हैं ॥

मेदोगत ज्वरके लक्षण।

**भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ॥**
**दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥ ४७ ॥**

भाषा–अत्यंत पसीनेका आना, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, देहमें दुर्गंध, अन्नमें अरुचि, ग्लानि और वेदना न सही जाय ये लक्षण मेदगत ज्वरमें होते हैं ॥

अस्थिगत ज्वरके लक्षण।

**भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ॥**
**विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ४८ ॥**

भाषा–हडफूटनी तथा हाडोंका गूंजना, श्वास, दस्तका होना, वमन, हाथ, पैरोंका चलना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं ॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण ।

**तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ॥**
**अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ४९ ॥**

भाषा–अंधेरा आना, हिचकी, खांसी, शीत लगे, वमन, अंतर्दाह, महाश्वास अर्थात् जो श्वासके निदानमें कहेंगे और मर्म[२] में पीडा यह मर्मशब्द इस जगह हृदयवाचक है अर्थात् हृदयमें पीडा हो ये मज्जागत ज्वरके लक्षण हैं ॥

शुक्रगत ज्वरके लक्षण ।

**मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥**
**शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य च विशेषतः ॥ ५० ॥**

भाषा–रसादि धातुगत ज्वर शुक्रस्थानमें पहुँचनेसे रोगीका मरण होय, इस ज्वरमें लिंगका जकड जाना और शुक्रका विशेष होना और सुश्रुतादिक आचार्य कहते हैं कि रक्तादि पदार्थका थोडा थोडा स्राव हो ॥

प्राकृत और वैकृत ज्वरके लक्षण ।

**वर्षाशरद्वसंतेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ॥**
**वैकृतोऽन्यः सुदुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ५१ ॥**

भाषा–वर्षाऋतु, शरदृतु और वसंतऋतु इनके मध्यमें वातादिकके क्रमसे जो ज्वर होय वह प्राकृत ज्वर कहाता है । जैसे वर्षाकालमें वातज्वर, शरत्कालमें पित्तज्वर और वसंतकालमें कफज्वर । इससे विपरीत जो ज्वर होय उसको वैकृतज्वर कहते हैं । जैसे वर्षाकालमें पैत्तिक, शरदृतुमें श्लैष्मिक और वसंतऋतुमें वातिक ये वैकृत ज्वर दुःसाध्य हैं अर्थात् प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है, वातजन्य प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य है और रोगोंमें प्राकृतत्व दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव करके सुखसाध्यत्व कहा है[१] ॥

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहते हैं ।

**वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ॥**
**कुर्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः[२] कफः ॥ ५२ ॥**

---

१ यदुक्तम्–' प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसंतशरदुद्भवः । २ अनुबलं यथा–स्वतन्त्रस्य कस्यचिद्राज्ञो गजरथतुरगपुरुषादिबलवतो वैरिभिः सह युध्यमानस्य; पश्चादन्यबलं तच्छत्रोरनुबलोपबृंहणार्थमागच्छति एव स्वतंत्रस्य पित्तस्य ज्वरं कुर्वतो बलोपबृंहणं शरदि कफः करोति । तयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रकृत्या स्वभावेन तत्कृतयोर्ज्वरयोरनशनाल्लघनाद्भयं न भवतीति । वर्षा शरद् और हेमंत ये विसर्गकाल हैं इसमें चन्द्रमाका बल रहे है । इसमें प्राणोंका बल बढे है और शिशिर ग्रीष्म ये आदान काल हैं इसमें सूर्यका बल अधिक होता है इसीसे प्राणोंका बल क्षीण होता है ।

**तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ॥**
**कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५३ ॥**

भाषा-ग्रीष्मऋतुमें संचित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित हो पित्तकफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करे है । उसी प्रकार वर्षाकालमें संचित हुआ पित्त शरदृतुमें दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करे है, उसको कफका अनुबंध होता है उस ज्वरमें कफ-पित्तके स्वभाव करके और विसर्ग काल करके लंघन करनेसे भय नहीं होय । तैसेही हेमंतकालमें संचित भया कफ वसंतकालमें ज्वर उत्पन्न करे है तिसके पिछाडी वातपित्त सहायक होते हैं ॥

**काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ॥**
**निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ५४ ॥**

भाषा-वातादिकोंका आप अपने कालमें उत्पत्ति और वृद्धि होवे है । जैसे काल यह दोषविशेष जाननेका लक्षण है । उसी प्रकार उपशय और अनुपशयभी रोग जाननेके कारण है सो इस प्रकार जानना । निदानत्व करके जो आहार विहार कहे हैं उनके सेवन करनेको अनुपशय कहिये दुःख उत्पत्ति होती है और दोषोके विप-रीत जो आहार विहार उन्होंसे उपशायिता कहिये सुखकी उत्पत्ति होय है ॥

संप्राप्तिज्वर दो लक्षणोंसे कहा है उसका लक्षण ।

**अंतर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥ संध्यस्थिशूल-मस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ५५ ॥ अंतर्वेगस्य लिंगानि ज्वर-स्यैतानि लक्षयेत् ॥ संतापोऽभ्यधिको बाह्यतृष्णादीनां च मार्दवम् ॥ बहिर्वेगस्य लिंगानि सुखसाध्यत्वमुच्यते ॥ ५६ ॥**

भाषा-पिछाडी जो ज्वर कहे हैं उन्होंमें सम्प्राप्तिके भेदसे कोई एक ज्वर अंत-र्वेग होय है और कोई बहिर्वेग होय है, तिन दोनोंके लक्षण कहते हैं । अंतर्दाह, अतितृषा, बडबडाना, श्वास, भ्रम, संधि और हाड इनमें पीडा, पसीना न आवे, वायु और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेग ज्वरके लक्षण जानने । शरीरके बाहर संताप अधिक होवे, तृष्णादिक लक्षण थोडे होवें ये बहिर्वेगज्वरके लक्षण हैं । यह ज्वर सुखसाध्य है । इस ज्वरके सुखसाध्य कहनेसे अंतर्वेगज्वर कृच्छ्रसाध्य और असाध्य है ॥

चिकित्सा करनेके निमित्त आम पच्यमान और निराम ज्वरके लक्षण कहते हैं ।

**लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ तंद्रालस्याविपाका-**

स्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ ५७ ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान्ज्वरः ॥ आमज्वरस्य लिंगानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ५८ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥ शोधनं शमनीयं च करोति विषमज्वरम् ॥ ५९ ॥

भाषा–लारका गिरना, खाली ओकारीका आना, हृदयमें जडत्व, अरुचि, तन्द्रा, आलसक, अन्नका परिपाक न होना, मुखका स्वाद जाता रहे, देह भारी, भूखका नाश, वारंवार मूतना, देहका जकडना, देहमें बलवान् ज्वर हो ये अपक्व ज्वरके लक्षण जानने । इस ज्वरमें औषधि वैद्य न देय । अपक्व ज्वरमे औषधि देनेसे ज्वरकी वृद्धि होय है । और शोधन तथा शमन औषध देनेसे विषमज्वरको करे है ॥

ज्वरके दश उपद्रव ।

श्वासो मूर्च्छा रुचिस्तृष्णा छर्द्यतीसारविड्ग्रहाः ॥
हिक्का श्वासोऽगदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ६० ॥

भाषा–श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, प्यास, वमन, अतिसार, मलका रुकना, हिचकी, खांसी, देहमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रव हैं ॥

पच्यमानज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥

भाषा–ज्वरका वेग, अधिक प्यास, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति, उपस्थित वमनसी मालूम होय ये पच्यमानज्वरके लक्षण हैं ॥

पक्वज्वर किंवा निरामज्वरके लक्षण ।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ॥
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६२ ॥

भाषा–भूखका लगना, देहका कृश होना, अंगोंका हलकापना, मन्दज्वरका आना, अधोवायुकी प्रवृत्ति होना, मनमें उत्साहका होना ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥

जीर्णज्वरके लक्षण ।

त्रिसप्ताहे व्यतीतेषु ज्वरो यस्तनुतां गतः ॥
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ ६३ ॥

भाषा–२१ दिन व्यतीत होनेपर जो ज्वर बारीक होकर देहमें रहे जिससे प्लीहा अर्थात् तापतिल्ली रोग और मंदाग्नि होवे उसको जीर्णज्वर कहते हैं ॥

साध्यज्वरके लक्षण।

**बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥**

भाषा-बलवान् पुरुषके थोडे दोषयुक्त और श्वास आदि उपद्रव करके रहित जो ज्वर हो वह साध्य जानना ॥

असाध्यज्वरके लक्षण।

**हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥**
**ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिंद्रियनाशनः ॥ ६४ ॥**

भाषा-जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसे उत्पन्न भया हो और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह ज्वर प्राणोंका हरण करनेवाला जानना और जो ज्वर प्रगट होतेही चिकित्सा करते २ इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट कर दे अर्थात् अंधा बाहिरा इत्यादि हो वहभी ज्वर असाध्य जानना ॥

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण।

**ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गंभीरो दैर्घ्यरात्रिकः ॥**
**असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमंतकृज्ज्वरः ॥ ६५ ॥**

भाषा-जो पुरुष ज्वरसे क्षीण पड गया हो अथवा सूजन जिसके देहमें आ गई हो वे ज्वर असाध्य हैं और जिसके ज्वर धातुके भीतर हो अथवा अंतर्वेगज्वर अथवा जिसमें वातादि दोषोंका निश्चय न हो सके और बहुत दिनतक रहनेवाला ज्वर असाध्य होय है और ज्वर बलवान् हो तथा जिसमे रोगी अपने हाथसे केशों ( बालों ) की सीमंत आदि रचना करे वह ज्वर असाध्य है ॥

गंभीरज्वरके लक्षण।

**गंभीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यंतर्दाहेन तृष्णया ॥**
**आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ॥ ६६ ॥**

भाषा-अंतर्दाह प्यास दोष अर्थात् विरुद्ध दोषके बढनेसे मलके रुकनेसे तथा श्वास खांसीसे उत्पन्न होनेसे गंभीर ज्वर जानना ॥

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण।

**आरंभाद्विषमो यस्य यस्य वा दैर्घ्यरात्रिकः ॥**
**क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गंभीरो हंति मानवम् ॥ ६७ ॥**
**विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ॥**
**शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ६८ ॥**

भाषा–जो ज्वर प्रगट होतेही विषम पड जाय और जो ज्वर बहुत दिनसे आया करे और क्षीण तथा अतिरूक्ष देहवाले पुरुषके जो गम्भीर ज्वर होय वह मृत्युकारक होता है और जो बेहोश होकर मोहको प्राप्त हो तथा गिरकर जिससे उठा न जाय पडाही रहे अथवा बाहरी शीत लगे और देहके भीतर दाह हो ऐसे ज्वरवाला पुरुष मर जावे ॥

और असाध्य लक्षण ।

**यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हंति मानवम् ॥ ६९ ॥ हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रांतलोचनम् ॥ संततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ७० ॥ हतप्रभेन्द्रियं क्षामम‌रोचकनिपीडितम् ॥ गंभीरतीक्ष्णवेगार्त्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ७१ ॥**

भाषा–जिसके देहमें रोमांच खडे रहे, लाल नेत्र हों, हृदयमें गांठ होनेसे जैसी पीडा हो तैसी हो। और संघात इस पदका यह अर्थ करते हैं कि नाना प्रकारका शूल हो, मुखके द्वारा श्वास ले, वह ज्वर रोगी मनुष्यको मार डाले । हिचकी श्वास प्यास इनकरके व्याप्त हो, मोहयुक्त हो, चलायमान नेत्र हो, निरंतर श्वास लेय ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मार डालता है। इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होनेसे और शरीरकी कांति निस्तेज होनेसे अथवा नाक कान नेत्र ये नष्ट हो जावें देह कृश हो जावे अरुचिसे अत्यंत पीडित हो। “अरोचकनिपीडितं” इस जगह जय्यटने दो पाठ लिखे हैं एक तो “ दुरात्मानमुपद्रुतं ” इसका अर्थ यह है कि दुष्ट अंतःकरण होवे और उपद्रवयुक्त होवे । दूसरा पाठान्तर यह है कि “ दुरात्मभिरुपद्रुतं ” अर्थात् राक्षसादिकरके युक्त हो तथा अतिघोर अंतर्वेग करके परिपीडित हो ऐसे ज्वरवान् पुरुषको वैद्य छोड देवे। इसी जगह कोई टीकाकारोंने जो असाध्य लक्षण लिखे हैं सो आतंकदर्पण तथा मधुकोश टीकासे लिखे हैं। वे सब वाग्भट और हारीतके कालज्ञान देखनेसे निश्चय हो जायगे सो देख लेवें। इस जगह हम ग्रंथ वढनेके भयसे नही लिखते ॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप ।

**दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपो विड्भेदसंज्ञिता ॥ कूजनं चातिवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ७२ ॥**

भाषा–दाह, पसीना, भ्रम, प्यास, कंप, मलका पतला होना, संज्ञाका नाश होना, गूंजे, देहमें अत्यंत दुर्गंध आवे ये लक्षण जब ज्वर छोडता है तब होते हैं ॥

शंका-क्योंजी ! दोष ( वात, पित्त, कफ ) नाशके विना रोगकी निवृत्ति होय नहीं और जब दोष क्षीण हो गये तो उक्त दाहादिलक्षण कैसे करते हैं ? उत्तर-इसका कारण यह है कि कोई एक वस्तुका ऐसा स्वभाव है कि क्षीण होनेके समयमें अपनी शक्तिको दिखाती है जैसे दीपकमें तेल नहीं रहे और बुझानेको होय है तब एकसंग पहिली अपेक्षा अत्यंत बलने लगे है और थोडी देर बलकर शात हो जाता है । ऐसेही जब दोष शांत होनेको होते हैं तब अपनी शक्ति दाहादिकोंको दिखाते हैं अथवा दूसरा उत्तर-यह है कि जैसे वंदर वृक्षकी डालीको हिलायकर दूसरे स्थानपर चला जाता है परंतु वह वृक्षकी डाली बहुत देरपर्यंत हिला करती है इसी प्रकार ज्वर गयेपरभी उसके असरसे दाहादिक रहते हैं ॥

त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तवेगे च धातुजे ॥
लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनम् ॥ ७३ ॥

भाषा-ये दाहसे आदि ले लक्षण त्रिदोष ज्वरके शांत होनेके समय होते हैं और सब ज्वरोंमें नहीं होते और ज्वरके केवल पसीनाही आता है यह माळुकी आचार्यका मत है ॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कंडूः पाको मुखस्य च ॥
क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ७४ ॥

भाषा-पसीना आवे, देह हलका हो, मस्तकमें खुजली चले, मुखका पाक अर्थात् होठोंमें पपडी पारे जाय, छीक आवे, भोजन करनेकी इच्छा होय ये लक्षण ज्वरमुक्तके हैं ॥

प्रसंगवशाज्ज्वरमुक्तलक्षणं ग्रन्थांतरे ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ॥ स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कंडूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ १ ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभावार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां ज्वरनिदान समाप्तम् ।

# इंग्रेजी मतानुसार ज्वरनिदान।

ज्वरको इंग्रेजीमें ( Fever ) फीवर कहते हैं उसकी उत्पत्ति।

## १ सरदी।

सरदी पडनेसे मनुष्यका सब देह रोमांचवद्ध हो जावे तब पसीनेका निकलना रुक जाय इस हेतुसे देहका जो अवगुण सो देहके बाहर नहीं निकले इसीसे देह हलका नहीं होय और वही देहका अवगुण ज्वररोगको प्रगट करता है इस ज्वरको सामान्य ज्वर कहते हैं। अथवा देह अतिगरमीसे पीडित होय उस समय किसी कारणसे शीतल करे तो सरदी होती है अथवा किसी अतिपरिश्रम करनेसे मनुष्यके देहसे पसीने निकलें उस समय हवामें बैठे अथवा हवामें शयन करनेसे सरदी होती है अथवा रातमें मैदानमें सोनेसे अथवा रातमें शीतलपवनके लगनेसे पसीना नहीं निकले इस हेतुसे सरदी होय अथवा गीला कपडा ओढकर बैठनेसे वा सोनेसे सरदी होय है इन कारणोंसे सरदी होय। वह सरदी अनेक प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करे है॥

## २ मन्दवायु।

जिस समय पृथ्वीमें वर्षाका अथवा और प्रकार जल सूखे उसमें घास पत्ता सड जावे तब इनसे मन्द वायु अथवा बाष्प उत्पन्न होय तिसके द्वारा अनेक प्रकारके ज्वर प्रगट होय। विशेषकरके आमज्वरकी अधिक उत्पत्ति होय इसीसे जलाशयस्थान तालाव आदि और झील खाल इन स्थानोंमें मन्दवायु अधिक होय है इससे नाना प्रकारके ज्वर प्रगट होय। यह हवा सोतेके जलसे उत्पन्न नहीं होय है किंतु जिस जगह थोडा जल होय जैसे तलैया आदि। उसमें घाम लगनेसे जल पक्क होकर गन्धवायुको अधिक उत्पन्न करे है। यह वायु दिनमें सूर्यकी किरणसे बहुत हलकी होकर ऊपरको उठे इसीसे यह बडा नुकसान करनेवाली होती है और संध्या तथा रात्रिमें यह वायु शीतल होनेसे नीचे उतर सर्व साधारण मनुष्योंको नुकसान करनेवाली होती है और हवाओंसे यह हवा अधिक भारी होती है। घरके किंवाड लगानेसे यह हवा घरके भीतर कम जाती है इसीसे घरके किंवाड देकर मसैरी जिसको पूर्वके लोग बहुधा रखते हैं। यह कपडेकी बनी हुई होती है इसमें सोना चाहिये॥

## ३ गरिष्ठभोजन।

जो मनुष्य भारी द्रव्य भोजन करे तब उसके वह पचे नहीं और पेटमें पीडा करे उस पीडाके होनेसे ज्वर उत्पन्न होय। विशेषकरके यह ज्वर बालकोंके होय है॥

४ अनेक प्रकारके ज्वरोंके लक्षण ।

नाडी और श्वास जलदी चले, मस्तकमें पीडा होय, त्वचा शुष्क और गरम होय, प्रलाप होय अथवा न होय, पेशाब लाल उतरे, जीभ मलीन होय, शरीरमें सदा ज्वर रहा करे, कभी कम हो जाय कभी ज्यादा होय जाय ॥

५ कुंकुमज्वरके लक्षण ।

श्वास लेते समय मंद मंद पीडा होय, खासी होय, कफ कुछ नीला रंगका गिरे, ज्वर अल्प होय, वक्षस्थलमें पीडा होय, खांसते समय श्वास जलदी चले, नाडी कुछ कुछ थोडी और शीघ्र चले, त्वचा सदैव थोडी गरम रहे, जिस समय रोगकी वृद्धि होय श्वासके चलनेसे पीडा होय उससे अधिक पीडा होय, उस रोगके आरम्भमें कफ नहीं निकले किंतु दो तीन दिनके बाद कफ श्वेत निकल पडे, उस रोगीका हलदीके समान पीला वर्ण होय, कभी कभी जलके सदृश वर्ण होय, इस रोगकी विशेषता होनेसे कफ पतला हो जाय । यह रोग अत्यंत बढकर पचनेको होय तब कफका शाकके समान रंग हो अथवा काले रंगका और दुर्गंधयुक्त होय, बहुत सरदी पडनेसे इसकी उत्पत्ति होती है ॥

६ यकृत् वा कलेजाज्वरके लक्षण ।

दहने पासूमें पीडा होय, जीभ शरीरमें थोडा ज्वर होय तथा आहारमें अरुचि होय, जीभ मलीन, नेत्र पीले होंय, मल मट्टीके रंगका अथवा सफेद तथा काला होय और कठिन, पेशाब लाल होय ॥

इति इंग्रेजीमतानुसार ज्वरनिदान ।

# अथ अतिसारनिदानम् ।
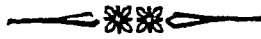
पित्तज्वरमें अतिसार होता है तथा ज्वरको और अतिसारको अन्योन्य उपद्रव होनेसे ज्वरके अनन्तर अतिसाररोगको कहते हैं ।

अतिसारादिकोंका कारण ।

गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ॥ शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ॥ नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

भाषा–प्रमाणसे अधिक भोजन करे अथवा स्वभावसे जड पदार्थ जैसे उडद आदिके खानेसे अतिचिकनी, अतितीखी, अतिगरम, अत्यंत पतली और अत्यंत स्थूल अर्थात् जिसके अवयव कठिन हो जैसे लड्डू, घेवर, गूंझा इत्यादि अत्यंत शीतल स्पर्शसे तथा वीर्यसे विरुद्ध जैसे क्षीर मत्स्य इत्यादिक अध्यशन कहिये पूर्वदिनका भोजन परिपाक नहीं होय और उसपर भोजन करना विना पका अन्न नित्य भोजनके समयको त्याग कर और समय थोडा वा बहुत भोजन करनेसे, स्नेह स्वेद आदि पंचकर्मके अत्यंत योगके करनेसे, वा थोडे योग करनेसे, स्थावरादिक दूषीविषके खानेसे, भयसे, शोच करनेसे, अतिदुष्ट जलके पीनेसे तथा अति मद्यके पीनेसे, सात्म्य और ऋतुके पलटनेसे, जलमें अतिक्रीडा करनेसे, मल मूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, कृमिरोगके उपद्रवसे अथवा कृमिजनित वातादिकके कोपसे अतिसार रोग होता है । इन लक्षणोंसे यह निदान वातादि दोषोंका यथासम्भव जानना । आगे अतिसारके लक्षण कहे हैं ॥

आतिसाररोगकी संप्राप्ति ।

**संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाधःप्रणुन्नः ॥**
**सायँतातीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदंति ॥**
**एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥४॥**

भाषा–पूर्वोक्त कहे कुपथ्यसे अत्यंत दुष्ट भये शरीरमें रस, जल, मूत्र, स्वेद, कफ, पित्त, रुधिर इत्यादि जलरूप धातु सो अग्निको मन्द कर और वही जल मलमिश्रित हो पवनका प्रेरित गुदाके मार्गसे वारंवार नीचेको बहुत उतरे तिसको अतिसार कहते हैं । यह भयंकर अतिसाररोग ६ प्रकारका है । १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्निपातका, ५ शोकका और ६ आमातिसार ऐसे छः प्रकारका अतिसार है । द्वंद्वज अतिसार व्याधिस्वभावकरके नहीं होते । सुश्रुतने आमातिसार नहीं कहा । भय और शोकसे दो कहकर संख्या पूरी करी है और आमातिसारको सन्निपातातिसारके अन्तर्गत कहा है । यहां माधवाचार्यने भयातिसारकी वातज अतिसारमें गणना करी है ॥

आतिसारके पूर्वरूप ।

**हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ॥**
**विट्संग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ५ ॥**

भाषा–हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कूख इनमें पीडा हो, शरीरमें फूटनी हो,

---

१ तदुक्तं चरके–" भुक्ते पूर्वान्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम् । "

गुदाका पवन रुक जाय, मलका अवरोध हो, अफरा हो और अन्न पचे नहीं ये लक्षण अतिसाररोगके पूर्व होते हैं ॥

वातातिसारके लक्षण।

**अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ॥**
**शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥**

भाषा–कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा, थोडा थोडा, वारंवार, आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना ॥

पित्तातिसारके लक्षण।

**पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ॥**

भाषा–पित्तसे पीला, काला, धूसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा पक जाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ॥

कफातिसारके लक्षण।

**शुक्लं सांद्रं सकफं श्लेष्मयुक्तं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ७ ॥**

भाषा–कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खडे होंय ये लक्षण कफातिसारके जानने ॥

सन्निपातके अतिसारके लक्षण।

**वाराहस्नेहमांसांबुसदृशं सर्वरूपिणम् ॥**
**कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥**

भाषा–सूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो ऐसा यह त्रिदोषजनित अतिसार कष्टसाध्य जानना ॥

शोकातिसारके लक्षण।

**तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जंतोः ॥ ९ ॥ कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणंती प्रकाशम् ॥ निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा निर्गंधं वा गंधवद्वातिसारः ॥ १० ॥**

भाषा–जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश हो जावे वह उसी उसी वस्तुका शोच करे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे धातुक्षय होय, ऐसे प्राणीके बाष्प

( नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो ) और उष्मा कहिये शोकजन्य देहतेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मन्द कर रुधिरको कुपित करें तब यह रुधिर चिरमिटीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गंधयुक्त अथवा गंधरहित दस्त उतरे उसको शोकातिसार कहते हैं । इसी प्रकार भयातिसारभी जान लेना ॥

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यत्वलक्षण ।

**शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एषः प्रदिष्टः ॥**

भाषा–शोकसे उत्पन्न भया जो अतिसार सो चिकित्सा करनेमें बहुत कठिन है । कारण शोकशांति भये विना केवल औषधोंसे शांति नहीं होवे इससे वैद्योंने यह कष्टसाध्य कहा है ॥

आमातिसारके लक्षण ।

**अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयंतः कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च ॥**
**नानावर्णं नैकशः सारयंति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥**

भाषा–अन्नके न पचनेसे दोष ( वात, पित्त, कफ ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्त हो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे वाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका होय तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं । शंका–प्रथम कह आये कि अतिसार रोग छः प्रकारका होता है पुनः ' षष्ठमेनं वदंति " यह पद क्यों धरा ? उत्तर–यह पद नियमके अर्थ माधवाचार्यने धरा है अर्थात् भय स्नेह अजीर्ण विषूचिका बवासीर आदि निमित्तकरके और अतिसार नहीं है क्योंकि भयादि अतिसारोंका वात पित्त कफ अतिसारोंके अंतर्गतत्व है ॥

आमके लक्षण ।

**संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ॥**
**पुरीषं भृशदुर्गंधि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥**

भाषा–पूर्व कहे जो वातादिक अतिसारोंके मिले हुए लक्षणसंयुक्त जो मल सो जलमें गिरनेसे डूब जाय है क्योंकि आम जड है और उसमें वहुत दुर्गंध आवे तथा अत्यंत गाढी हो उसको आमसंज्ञा है ॥

पक्वलक्षण ।

**एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ॥**
**लाघवं च विशेषण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥**

भाषा–और ऊपरके श्लोकसे विपरीत लक्षण होंय अर्थात् शरीर हलका होय तथा मल जलमें डूबे नहीं और दुर्गंधिरहित हो बबूलारहित होय उस रोगीका मल पक्व भया जाने ॥

असाध्य लक्षण ।

**पक्वं जांबवसंकाशं यकृत्पिंडनिभं तनु ॥ घृततैलवसामज्जावेसवारपयोदधि ॥ १४ ॥ मांसधोवनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् ॥ मेचकं कर्बुरं स्निग्धं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥ १५ ॥ कुणपं मातुलिंगाभं दुर्गंधं कुथितं बहु ॥ तृष्णादाहारुचिश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥ संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् ॥ प्रलापयुक्तं च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥**

भाषा–पके जामनके रंगसदृश काला और चिकना, मेचक तथा काला और लोहित रंग. पतला घृत तेल चरबी मज्जा वेसवार दूध दही और मांसके धोनेसे जैसे जल निकले है ऐसा रंग होय, काजलके रंगसमान अथवा नीलमिश्रित अरुण रंग अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके रंगसमान अथवा खंजन पक्षीके वर्णसदृश तथा अनेक रंगका चिकना, मोरकी चंद्रिकाके सदृश रंग, दृढ, मुरदाकीसी दुर्गंधयुक्त, मस्तककी मज्जाकी समान गंधयुक्त बुरी दुर्गंधके समान, प्यास दाह अरुचि श्वास हिचकी पसवाडोंके हाडोंमें पीडा मनको मोह और इंद्रियको मोह अरति ये लक्षण होंय तथा गुदाके आंठेनका पकना, अनर्थ भाषण करे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य छोड देवे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

**असंवृते गुदं क्षीणं दुराध्मानमुपद्रुतम् ॥**
**गुदे पक्वे गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥**

भाषा–जिसकी गुदाका दस्तके पिछाडी संकोचन होवे, क्षीण पुरुष, अत्यंत अफरायुक्त अथवा "दुरात्मानं" ऐसाभी पाठान्तर है अर्थात् जिसकी इंद्रिय वश न होवे तथा अतिसारके शोधादिक उपद्रवकरके युक्त और गुदाके स्थानमें पाककर्ता अर्थात् पकानेवाला पित्त विद्यमान होते और जिसकी देहमें गरमीसी नहीं दीखे अर्थात् देह शीतल हो अथवा जिसकी अग्नि नष्ट हो जावे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥

---

१ मेचक काला लाल पीला मिला जैसा रंग होय ऐसा मेचकरंग होय है । २ वेसवार नाम मांसमेंसे हड्डी निकाल और कूटकर दही दूध काली मिरच डालकर जो पदार्थ बनाते है तत्सदृश रंग होय ।

अतिसारके उपद्रव ।

**शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासकासमरोचकम् ॥**
**छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥**

भाषा-सूजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी. अरुचि, वमन, मूर्च्छा, हिचकी ऐसे लक्षण जिस रोगीमें होंय उसको वैद्य छोड देवे ॥

असाध्य लक्षण ।

**श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥**
**विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ २० ॥**

भाषा-श्वास, शूल, प्यास इनसे पीडित, क्षीण ज्वरसे पीडित और वृद्ध मनुष्यके ये लक्षण होंय तो यह अतिसाररोग मनुष्यका विनाश करे ॥

रक्तातिसारलक्षण ।

**पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ॥**
**तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्बणः ॥ २१ ॥**

भाषा-पित्तातिसारवाला पुरुष अथवा पित्तातिसार होनेवाला पुरुष जब अत्यंत पित्त करनेवाली वस्तु भोजन करे तब भयंकर रक्तातिसार प्रगट होता है । इसके लाल, काले, पीले आदि रंग वातादि दोषोंके दूषित होनेसे होते हैं । यहभी पित्तातिसारका भेद है ॥

प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति ।

**वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ॥**
**प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ २२ ॥**

भाषा-अपथ्य सेवन करनेवाले पुरुषके कुपित हुइ जो वात सो संचित हुए कफको मलसंयुक्त करके वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और मरोडाके साथ थोडा २ मल निकले इसको प्रवाहिका कहते हैं । प्रवाहिका और अतिसार इन दोनोंका एक साधर्म्य है इसीसे अतिसाररोगमें प्रवाहिका कही है. परंतु अतिसारमें अनेक प्रकारके द्रवधातु निकले हैं और प्रवाहिकामें केवल कफ निकले है इतना भेद है । इसमें " निचितं बलासं " यह जो पद कहा अर्थात् कफसे मिलकर सो यह केवल कफका तो उपलक्षण है अर्थात् कफके कहनेसे पित्त और रुधिरभी जानना । भोजने इस रोगका नाम विवसी कहा है । पराशरऋषिने इसको अंतर्ग्रंथी कहा है । हारीत ऋषिने निश्चारक कहा है । कोई आचार्य निर्वाहिका कहते हैं ॥

प्रवाहिकाके वातादि भेदकरके लक्षण ।

**प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ॥**
**सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥**
**तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्वतां च ॥ २३ ॥**

भाषा–वातकी प्रवाहिकामें शूल होता है, पित्तकी दाहयुक्त, कफकी कफयुक्त और रक्तसे रक्तयुक्त होती है । यह चिकने और रूखे पदार्थ भोजन करनेसे होती है अर्थात् चिकने पदार्थसे कफकी, रूखे पदार्थसे वातकी । तुशब्दकरके तीक्ष्ण और खट्टे पदार्थसे क्रमसे पित्तकी और रुधिरकी होती है ऐसा जानना । इस प्रवाहिकाके लक्षण क्रम, आम और पक्वावस्था ये अतिसारनिदानके सदृश जानने ॥

अतिसार चला गया हो उसके लक्षण ।

**यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ॥**
**दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥२४ ॥**

भाषा–जिस मनुष्यको मूत्र करते समय दस्त न होय और अपानवायु जिसकी शुद्ध निकले और अग्नि देदीप्यमान होवे, कोठा हलका होवे उस मनुष्यको अतिसार गया जानिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां अतिसाररोगनिदान समाप्तम् ।

---

## अथ ग्रहणीनिदानम् ।
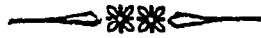
ग्रहणीकी सम्प्राप्ति ।

**अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ॥**
**भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥**

भाषा–पहले मनुष्यके अतिसाररोग होकर जाता रहा होय फिर उस मनुष्यके कुपथ्य करनेसे मन्द हुई जो अग्नि सो पुरुषके उदरमें रहनेवाली जा पित्तधरा नामक छठी कला जिसको ग्रहणी कहते हैं उसको बिगाडे । अपिशब्दकरके अतिसार न गया होय तौभी अपने कारणकरके पूर्वोक्त ग्रहणीको बिगाडकर संग्रहणी रोगको प्रगट करे यह सूचना करी । कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि अतिसार न गया होय तौभी बीचमेंही ग्रहणीरोग होता है " मन्दाग्नेः " इस पदकरके यह सूचना करी

कि जिस पुरुषकी अग्नि तीक्ष्ण है वह कुपथ्यभी करे तथापि कुछ अवगुण नहीं होय अन्नको ग्रहण करे है इससे इसको ग्रहणी कहे है । इससे ग्रहणीके बिगाडनेसे अन्नका परिपाक अच्छे प्रकार नहीं होय अर्थात् वारंवार आममिश्रित मल गुदाके मार्गसे गिरता है ॥

ग्रहणीरोगके सम्प्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण ।

**एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्छितैः ॥ सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुंचति ॥ २ ॥ पक्कं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ॥ ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥**

भाषा—पूर्वरूप कुपित हुए पृथक् २ दोष ( वात, पित्त, कफ ) और सर्व दोष मिलकर ग्रहणीको दुष्ट करें, सो ग्रहणी दुष्ट होकर कच्चे अथवा पक्के अन्नको गुदाके मार्ग होकर निकाले और पीडा होय तथा उस मलमें दुर्गंधि आवे, वादीसे पतला मल और पित्तसे गाढा दस्त वारंवार होवे और कभी कफसे पानीसरीखा अधोवायुयुक्त निकले इसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य संग्रहणीरोग कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ॥**
**विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ४ ॥**

भाषा—प्यास, आलस्य, बलनाश, अन्नका दाह ( पाकके समय अग्निसी जले ) और अन्नका पाक देरमें होय, देह भारी होय यह ग्रहणीरोगका पूर्वरूप है ॥

वातज ग्रहणीका निदान ।

**कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः ॥**
**प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥**
**मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ॥ ५ ॥**

भाषा—कडुआ, तीखा, कषैला, अतिरूखा और संयोगविरुद्ध ऐसे भोजनसे तथा थोडे भोजनसे, उपवाससे, बहुत चलनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अत्यंत मैथुनसे कुपित भया जो वात सो अग्निको दूषित कर रोगोंको प्रगट करे है ॥

वातज संग्रहणीका रूप ।

**तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खरांगता ॥ ६ ॥ कंठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥७॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्त्तिका ॥**

गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः स्पंदनं तथा ॥ ८ ॥ जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशंकी च मानवः ॥ ९ ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥ पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १० ॥

भाषा–उस वातग्रहणीवालेका अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता ( यह वायुको त्वचाके चिकनापन सोखनेसे होता है, ), कंठ मुखका सूखना, भूख प्यास लगे, मन्द दीखे, कानोंमें शब्द हो, पंसवाडे जांघ पेडू और कंधामें पीडा होवे, विषूचिका हो अर्थात् दोनों द्वारोंसे कचे अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदय दूखे देह दुवला हो जाय, जीभका स्वाद जाता रहे, गुदामें कतरनीकीसी पीडा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें ग्लानि, अन्न पचने उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शंका, वातके योगसे खांसी, श्वाससे पीडित, वहुत देरमें बडे कष्टसे कभी पतला, कभी गाढा, थोडा शब्द और झाग मिला वारंवार दस्त होय ॥

पित्तसंग्रहणीके लक्षण।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् ॥ आप्लावयेद्धंत्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥ सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् ॥ सधूमोद्गारहृत्कंठदाहारुचितृडर्दितः ॥ १२ ॥

भाषा–जो पुरुष कटु, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी, दाहकारक ( वंश, करीलकी कोंपल ) आदि, खट्टी, खारी ( ओंगा आदिका खार ), आदिशब्दसे नोनका गरम पदार्थ इन कारणसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझाय दे। जैसे तत्ता जल अग्निको शांत कर दे और कचाही नीले पीले रंगको पतले मलको निकाले तथा धूमयुक्त डकार आवे, हृदय और कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण है ॥

कफसंग्रहणीकी उत्पत्ति।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् ॥ भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धंत्यग्निं कुपितः कफः ॥ १३ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः ॥ आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः ॥ १४ ॥ हृदये मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुः ॥ दुष्टो मधुर

उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः प्रवर्त्तनम् ॥ अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥१६॥

भाषा–भारी अत्यंत चिकना शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अति भोजनसे तथा भोजन करके सोनेसे इन कारणोंसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करे तब इसके खाया अन्न कष्टसे पचे, हृदयमें पीडा होय, वमन, अरुचि, मुखको कफसे लिपासा तथा मुखका मीठा रहना, खांसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरा सदृश होय, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम, कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले बल विना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे ये कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥

त्रिदोषकी संग्रहणीके लक्षण ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ॥
त्रिदोषं लक्षयेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १७ ॥

भाषा–वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कह आये हैं वे सब जिसमें मिलते हों उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये । " तेषां वक्ष्यामि भेषजम् " यह पद केवल पादपूरणार्थ लिखा है ॥

डाक्टरीमतके अनुसार परीक्षा ।

आमसे मिला मल उतरे, दस्त होते समय गुदा शब्द करे ऐसे एक महीना अथवा अधिक दिवस पर्यंत पीडा होय ॥

कारण ।

भारी द्रव्यके खानेसे अथवा देहके दुर्बल होनेसे मनुष्यके संग्रहणी रोग होय है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां ग्रहणीरोगनिदानं समाप्तम् ।

---

# अथार्शोरोगनिदानम् ।

अतिसार, ग्रहणी और अर्श इनका परस्पर सम्बन्ध है इससे ग्रहणीरोगके पीछे अर्शरोग कहते हैं ।

संख्यारूप सम्प्राप्ति ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

भाषा–पृथक् पृथक् दोषसे ३, समस्त दोष मिलकर १, रुधिरसे १ और सहज १ एस छः प्रकारका अर्श ( बवासीर ) रोग है । यह रोग गुदाकी तीन वलीके भीतर होय है । गुदामें प्रवाहिणी, सर्जनी, ग्राहिणी यह तीन वलियां ( आंटे ) हैं ॥

सम्प्राप्तिपूर्वक अर्शका रूप ।

**दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ॥ मांसांकुरानपानादौ कुर्वंत्यर्शांसि तान्जगुः ॥ २ ॥**

भाषा–वातादि दोष त्वचा, मांस और मेदा इनको और उस ठिकानेके रुधिरको दूषित कर अपान ( गुदा ) में अनेक प्रकारकी आकृतिके मांसके अंकुर उत्पन्न करें अर्थात् मस्से प्रगट करें उनको बवासीर कहते हैं। आदिशब्दसे नाक, नेत्र, नाभिमेंभी जानना यह मत सुश्रुतका है। कायाचिकित्सक तो गुदामें जो होय है उसीको बवासीर कहते हैं। जो नासिका आदिमें होय उसको अधिमांस कहते हैं क्योंकि नासिका आदिमें जो बवासीर होता है उसमें पूर्वरूपके लक्षण नहीं मिलते हैं ॥

वातकी बवासीरके कारण ।

**कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ॥ प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च ॥ शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥४॥**

भाषा–कषैला, कडुवा, तीखा, रूखा, शीतल और अति लघु ऐसे पदार्थके खानेसे तथा अति थोडा खानेसे, भोजनकालके उल्लंघन करनेसे, तीव्र मद्यके पान करनेसे, अत्यंत मैथुन ( स्त्रीसंग ) करनेसे, उपवास, शीतदेश और शीतकाल ( हेमंतादि ऋतु ), दंड कसरतसे, शोकसे, हवा, घाममें डोलनेसे ये वातकी बवासीर होनेके कारण हैं ॥

पित्तके बवासीरके कारण ।

**कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपश्रमाः ॥ देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम् ॥ पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥६॥**

भाषा–कडुवा, खट्टा, लवणका, गरम ऐसे पदार्थसे, दंड कसरतसे, अग्निके समीप

---

१ मनुष्यकी गुदामे तीन आंटे है। एक ऊपर, एक नीचे, एक बीचमें। ऊपरके आंटेका नाम प्रवाहिनी है सो मल पवन आदिको बाहर काढे। बीचका आंटा मलपवनको बाहर पटक दे इसका नाम सर्जनी है। तीसरा नीचेका मलपवन निकले पीछे ज्योंका त्यों गुदाको कर दे तिसका नाम ग्राहिणी है।

तथा घाममें रहनेसे, श्रम, गरम देश ( मारवाड आदिदेश ) और उष्णकाल अर्थात् ग्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, परद्रव्य देखकर जलना, दाहकारक तीखी गरम वस्तुका पीना, अन्नका और गरम औषधिका सेवन ये सब पित्ताधिक बवासीरके कारण हैं ॥

कफकी बवासीरका कारण ।

**मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ॥ अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥ प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिंतनम् ॥ श्लेष्मोल्बणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥८॥**

भाषा—मीठा, चिकना, शीतल, खारी, खट्टा, भारी ऐसे भोजनसे, व्यायामके न करनेसे, दिनमें सोनेसे, सेज गद्दी इनके सेवन करनेसे, पूर्वकी हवा खानेसे, शीतल देश, शीतकाल, चिंतारहित होनेसे ये कफकी बवासीर होनेके हेतु हैं ॥

द्वंद्वज बवासीरके कारण ।

**हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वंद्वोल्बणानि च ॥**

भाषा—दो दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलें तो द्वंद्वज बवासीर भई है ऐसा जाने॥

त्रिदोषकी बवासीरके कारण ।

**सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां लक्षणं सहजैः समम् ॥ ९ ॥**

भाषा—पृथक् वातादि बवासीरके जो कारण कहे हैं वे सर्व त्रिदोषकी बवासीरके कारण हैं । जो सहज अर्शके अर्थात् सहज बवासीरके लक्षण सोभी इसके लक्षण जानने ॥

वातकी बवासीरके लक्षण ।

**गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥ म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषा खराः ॥ १० ॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटितानना: ॥ बिंबिकर्कंधुखर्जूरकार्पासीफलसंनिभाः ॥ ११ ॥ केचित्कदंबपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथा ॥ १२ ॥ क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥ तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुप-**

**वेश्यते ॥ १४ ॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ॥ गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥ १५ ॥**

भाषा-वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे ( स्रावरहित ), चिमचिम पीडायुक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न होंय, बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश होंय, कोई कदंबके फूलसमान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेडू इनमें अधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय, उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान थोडा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल झाग चिकटा इन लक्षणसंयुक्त हौले हौले दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, मुख ये काले होय, गोला, तापतिल्ली, उदररोग, अष्ठीला ( वातकी गाठ ) ये रोगोंके उपद्रव इस वातकी बवासीरमें होते हैं ॥

पित्तकी बवासीरके लक्षण।

**पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीता सितप्रभाः ॥ तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ १६ ॥ शुकजिह्वयकृत्खंडजलौकावक्रसन्निभाः ॥ दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ॥ १७ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥ यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥**

भाषा-मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुपेदाई लिये होवे, उन मस्सोंमेंसे महीन धारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी वास आवे, महीन और कोमल तथा शिथिल और उनका आकार तोतेकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो, देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये होवें और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जवके समान बीचमें मोटे हों और जिसके त्वचा, नख, नेत्रादिक हरे पीले हरतालके समान और हलदीके समान होवें ये लक्षण पित्ताधिक बवसीरके हैं ॥

कफकी बवासीरके लक्षण।

**श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ॥ उत्सन्नोपचिताः**

---

१ "सामान्यतो बवासीरा रीही खूनी द्विधा भवेत्। खूनी अपि च वातस्य विना लेपं न संभवेत् ॥" इति यवनशास्त्रे।

स्निग्धाः स्तब्धा वृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कंड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ॥ करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥ वंक्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः ॥ सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥ क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ न स्रवंति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २३ ॥

भाषा–कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं जैसे कि गुदाके मस्से महामूल ( दूर धातुके प्रति जानेवाले ), कठिन, मन्द पीडाके करनेवाले, सपेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय, गायके थनके सदृश होय, पेडूमें अफरा करनेवाले, गुदा मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी, ओकारी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोग करनेवाले, वसा ( चर्वी ) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसेभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना होय ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं ।

सन्निपात और सहज बवासीरके लक्षण ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥

भाषा–जो पूर्व वातादि तीनों दोषोंकी बवासीरके लक्षण कहे वे सब लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं ॥

रक्तार्शके लक्षण ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥ वटप्ररोहसदृशा गुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ २५ ॥ स्रवंति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥ २६ ॥ हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न गच्छति ॥ २७ ॥

भाषा-गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके समान होवे अथवा वटके अंकुरसे हों और पित्तकी ववासीरके लक्षण जिसमें मिलत हों, मूंगेके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दवें तव उन मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके वहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेंडकके समान पीला रंग हो जाय । रुधिरके निकलनेसे ( जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे पीडित होय ), हीनवर्ण, वल, उत्साह पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं ये लक्षण रुधिरकी ववासीरके जानने चाहिये ॥

अथ इसी रक्तार्शनिदानके वातादिभेदकरके लक्षण ।

**तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ॥**
**कटयूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥**
**तत्रानुबंधो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ २८ ॥**

भाषा-ववासीरमेंसे रुधिर थोडा, अरुणवर्ण और झागसंयुक्त निकले और कमर जांघ और गुदा इनमें दर्द होवे । यदि दुर्बलता विशेष हो जावे और उसमें कोई रूप हेतु पहुँचा होवे तौ इस रक्तार्शके वातको सम्बंध है ऐसा जानना ॥

कफसंबंधके लक्षण ।

**शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् ॥ यद्यर्शसां घनं चासृक्तंतुमत्पांडु पिच्छलम् ॥ २९ ॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ॥ श्लेष्मानुबंधो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ३०**

भाषा-जिसमेंसे शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल ऐसा दस्त होवे और जिसका रुधिर गाढा, तंतुयुक्त, पीला तथा वबूलेयुक्त निकले और गुदा ववलेयुक्त गीली होवे और भारी चिकनी ऐसे कोई कारण होवे तौ उस रक्तार्शको कफका सम्बन्ध जानना । शंका-क्योजी ! पित्तके अनुवन्धकी ववासीर क्यों नहीं कही ? उत्तर-रक्तके और पित्तके प्रायःकरके समान लक्षण होनेसे नहीं कहे । क्योंकि पहले २४ के श्लोकमें कह आये हैं कि " पित्ताकृतिसमन्विताः " इति ॥

ववासीरका पूर्वरूप ।

**विष्टंभोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ॥ कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ३१ ॥ ग्रहणीदोषपांड्वर्तेराशंका चोदरस्य च ॥ पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ३२ ॥**

भाषा-अन्नका परिपाक अच्छी तरह होय नहीं, अन्न कूखमें रहे, देहमें दुर्बलता हो, कूखमें अफरा हो, अग्नि मंद हो जावे, डकार बहुत आवें, जंघामें पीडा, थोडा दस्त उतरे, संग्रहणी और पांडुरोगकी भ्रांति होना, क्योंकि इनके लक्षण मिलते हैं और उदररोगकी शंका होना यह लक्षण होवें तब जानना कि इस पुरुषके बवासीर रोग होवेगा ॥

शंका-केवल गुदामें दोषोंके कोपसे बवासीर रोग होय है फिर सब देहमें कृशत्व और काला हो जाना कैसे होता है ?

उत्तर ।

**पंचात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयं ॥ सर्वे एव प्रकुप्यंति गुदजानां समुद्भवे ॥ ३३ तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च ॥ सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ३४ ॥**

भाषा-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पांच प्रकारकी वायुके हृदय, गुदा, नाभि, कंठ और सर्व देह ये क्रमसे स्थान हैं तथा आलोचक, रंजक, साधक, पाचक, भ्राजक इन भेदोंसे पित्त पांच प्रकारका है । इनके स्थान आलोचक नेत्रोंमें, रंजक यकृत् और प्लीहामें साधक हृदयमें, पाचक पक्काशय और आमाशयमें, भ्राजक त्वचामें रहता है ऐसेही कफभी अवलंपक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेषक इन पाच भेदके क्रमकरके हृदय- आमाशय, जीभ, मस्तक और सन्धि इन पांच स्थानोंमें रहता है । इस प्रकार सर्व दोष अपने अपने पांच पांच स्वरूपसे कुपित होते हैं, इससे यह रोग ( बवासीर ) बहुत दुःखकारक और अनेक प्रकारकी व्याधि ( उदर और अग्निमांद्य इत्यादि उपद्रव ) कर्ता सर्व देहको क्लेशदायक और विशेषकरके कृच्छ्रसाध्य तथा असाध्य जानना ॥

सुखसाध्यके लक्षण ।

**बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ॥**
**अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ३५ ॥**

भाषा-बाहरके आटेमें भई हो, एक दोषोल्वण होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत न भया हो ऐसी बवासीर सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

**द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥**
**कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३६ ॥**

---

१ गुदाके तीन आटोंमें बवासीरके मस्से प्रगट होनेसे पांच प्रकारकी वायु, पांच प्रकारका पित्त, पांच प्रकारका कफ ये सब दोष कुपित होते हैं ।

भाषा-दो दोषोंसे प्रगट भई हो और दूसरी वलि ( आंटे ) में होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत हो गया हो ऐसी बवासीरके मस्से कृच्छ्रसाध्य होय हैं और जो बाहरकी वलिमें द्विदोषोल्बण होय और एक दोषोल्बण दूसरी वलि ( दूसरे आंटे ) में होवे तो यहभी कृच्छ्रसाध्य जानना ॥

असाध्यके लक्षण ।

**सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरावलिम् ॥**
**जायंतेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ ३७ ॥**

भाषा-सहज कहिये जन्म होनेके समयसे जो होय अथवा तीन दोषोंसे प्रगट भई हो और जो तीसरा अंतका आंटा है उसमें भई हो सो बवासीर असाध्य जानना ॥

याप्यलक्षण ।

**शेषत्वादायुषस्तानि चतुःपादसमन्विते ॥**
**याप्यंते दीप्तकायाग्नौ प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३८ ॥**

यदि असाध्य बवासीर होय और उस रोगीकी आयुष्य बाकी होय और चतुःपाद सम्पत्ति ( वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये जैसे चाहिये ऐसे ) होवें तो और रोगीकी जठराग्नि प्रदीप्त होवे तो रोगी याप्य जानना और इससे विपरीत होवे तो रोगीको वैद्य छोड देवे ॥

रोगी, वैद्य, औषध, सेवक इनके लक्षण ।

**वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ॥**
**एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ३९ ॥**

भाषा-वैद्य, रोगी, औषध और सेवक ये कर्मसाधनहेतु चिकित्साके पाद हैं ॥

तत्रादौ वैद्यलक्षण ।

**तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती ॥ लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्कृतभेषजः ॥ ४० ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्व्यवसायी प्रियंवदः ॥ सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईदृक्प्रशस्यते ॥ ४१ ॥**

भाषा-गुरुसे भले प्रकार शास्त्रको पढा हो और दूसरे वृद्ध वैद्यकी चिकित्सा अर्थात् इलाज जिसने देखा होय और आप चिकित्सा करनेमें चतुर होय तथा सिद्धहस्त अर्थात् जिस रोगीका इलाज करे सो शीघ्र अच्छा हो जावे, पवित्र रहे, शूर हो, श्रेष्ठ औषधि, चन्द्रोदय आदि रसादि सामग्री जिसके समीप रहा करे, तत्काल जिसकी बुद्धि स्फुरणवाली होय, बुद्धिमान् संसारके व्यवहारको जाननेवाला

होय, प्रियवचन बोलनेवाला, सत्य और धर्मका आचरण करनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होता है ॥

निषिद्धवैद्यके लक्षण।

**कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ॥**
**पंच वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा अपि ॥ ४२ ॥**

भाषा-मैले वस्त्रवाला, बुरा बोलनेवाला, अभिमानी, व्यवहारमें न समझे और जो विना बुलाये आवे ये पांच वैद्य श्रीधन्वंतरिके समानभी हों तौभी पूजने योग्य नहीं हैं ॥

रोगीके लक्षण।

**आयुष्मान्सत्ववान्साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ॥**
**उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४३ ॥**

भाषा-आयुवाला, बलयुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, ज्ञानी, वैद्यका आज्ञाकारी और आस्तिक ऐसा रोगी होना चाहिये ॥

उत्तम औषधके लक्षण।

**प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ॥**
**अल्पमात्रं बहुगुणं गंधवर्णरसान्वितम् ॥ ४४ ॥**

भाषा-उत्तम स्थानमें प्रगट भई होय और शुभ दिनमें उसको उखाडी होय, थोडी मात्रा देनेसे बहुत गुण करे, दुर्गंधरहित, उत्तम स्वरूप और रसयुक्त होय सो औषध उत्तम है ॥

दुष्ट औषधके लक्षण।

**वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ॥**
**जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ ४५ ॥**

भाषा-इतने स्थानकी औषध कार्यकर्ता नहीं होती हैं। बांवी, खोटी धरतीकी, जलके समीपकी, श्मशानकी, ऊसरकी, जहां रेह चूना निकलता होय वहांकी और रास्तेकी, कीडोंकी खाई, अग्निसे जरी भई, जाडेकी मारी ऐसी औषध कार्य करने वाली नहीं होती है ॥

दूतके लक्षण।

**स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ॥**
**वैद्यवाक्यकृदश्रांतः पादः परिचरः स्मृतः ॥ ४६ ॥**

भाषा-नवीन अवस्थाका, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर होय, वैद्यके

वचनका करनेवाला होवे, आलस्यरहित ऐसा परिचारक अर्थात् दूत होय। इन पूर्वोक्तको चतुष्पाद सम्पत्ति कहते हैं सो यह आयुःशेषके विना नहीं मिलते॥

उपद्रवसे असाध्यत्व कहते हैं॥

हस्ते पादे गुदे नाभ्यां मुखे वृषणयोस्तथा॥
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च तस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥ ४७॥

भाषा-जिसके हाथ पैर गुदा नाभि मुख और अंडकोश इनमें सूजन हो, हृदय और पसवाडे दूखें वह रोगी असाध्य जानना॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरंगस्य रुग्ज्वरः॥
तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥ ४८॥

भाषा-हृदय और पसवाडोंमें दर्द होय, इन्द्रिय और मन इनमें मोह होय, वमन, अंगोंमे पीडा होय, ज्वर, प्यास, गुदाका पकना अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोडा ये लक्षण होनेसे ववासीरवाला रोगी असाध्य जानना॥

तृष्णारोचकशूलार्त्तमतिप्रसृतशोणितम्॥
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयंति हि॥ ४९॥

भाषा-प्यास अरुचि शूल इनसे पीडित व जिसके अत्यन्त रुधिर वहे और सूजन अतिसार ये होंय उस रोगीको बवासीर नाश कर देती है॥

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यंते यथास्वं नाभिजान्यपि॥
गंडूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥ ५०॥

भाषा-मेढ्र कहिये लिंग, आदि शब्द करके नाक कान इत्यादि स्थानोंमें दोषभेद करके ववासीर होती है सो आगे कहेंगे। उसी प्रकार नाभिस्थानमेंभी अर्शरोग होता है वह केंचुएके मुखके समान गाढा और नरम होता है॥

चर्मकीलकी संप्राप्ति।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो वहिः॥
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः॥ ५१॥

भाषा-व्यान वायु कफको लेकर त्वचामें कीलके सदृश स्थिर और खरदरी ऐसी बवासीरको करे उसको चर्मकील कहते हैं। "त्वचो वहिः" इसके कहनेसे गुदा होठका त्याग कहा है॥

वातादि भेदकरके उसके लक्षण।

**वातेन तोदपारुष्ये पित्तादतिसरक्तता ॥**
**श्लेष्मणा स्निग्धता चास्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ८२ ॥**

भाषा-वातसे सुईके चुभानेसे जैसी पीडा होय ऐसी पीडा हो पित्तसे कठोरता, कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान, देहके वर्णके समान वर्ण होवे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अर्शोरोगनिदानं समाप्तम्।

# अथाग्निमांद्यनिदानम्।

अर्शरोगसे मन्दाग्नि होती है इसीसे मन्दाग्निरोगको कहते हैं।

**मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ॥**
**कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥**

भाषा-मनुष्यके कफकी प्रकृतिसे मंदाग्नि, पित्तकीसे तीक्ष्णाग्नि, वातकी प्रकृतिसे विषमाग्नि तथा वात, पित्त, कफ इनके समान होनेसे समाग्नि होती है। ऐसे अग्नि चार प्रकारकी है। इसमें मन्दाग्निका दुर्जय होनेसे प्रथम कही और जाठर शब्द कहनेसे धातुकी अग्निका त्याग जानना ॥

अजीर्णरोग।

**विषमो वातजान्रोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ॥**
**करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान्कफसंभवान् ॥ २ ॥**

भाषा-विषमाग्नि वातजन्य ८० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे और सामान्य ज्वरातिसारादिकको प्रगट करै। तीक्ष्णाग्नि पित्तके ४० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे। उसी प्रकार मन्दाग्नि कफजन्य २० रोगोंमेंसे किसी रोगको पैदा करे और आलस्यादिकको उत्पन्न करे ॥

समाग्न्यादिकोंके लक्षण।

**समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ॥ स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ ३ ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते ॥ मात्रातिमात्राप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते ॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४ ॥**

भाषा–समाग्निवाले पुरुषके यथोचित आहार भले प्रकार पचन होता है और मन्दाग्निवाले पुरुषके थोडाभी आहार यथार्थ नहीं पचता और विषमाग्निवाले मनुष्यका कभी अच्छी तरहसे अन्न पचे और कभी नहीं पचे और बहुत भोजन कराभी जिसके सुखपूर्वक पच जावे उसको तीक्ष्ण अग्नि कहते हैं । इन चारों प्रकारकी अग्निमे समाग्नि उत्तम है । तीक्ष्णाग्निके कहनेसे भस्मकका ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्णाग्निको भस्मक कहते हैं उसके लक्षण चरकमें कहे हैं ॥

यथा ।

**नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ॥ ५ ॥ सोष्मणा पाचकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति ॥ तदा लब्धबलो देहं रूक्षयेत्सानिलोऽनलः ॥ ६ ॥ अभिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः ॥ पक्त्वान्नं स ततो धातूञ्छोणितादीन्पचत्यपि ॥ ७ ॥ ततो दौर्बल्यमातंकं मृत्युं चोपानयेत्परम् ॥ भुक्तेऽन्ने लभते शांतिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति ॥ तृट्कासदाहमोहाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्निसंभवाः ॥ ८ ॥**

भाषा–क्षीण कफवाले पुरुषका कफ कुपित हो वायुसे मिलकर ऊष्माके साथ पाचकस्थानमें जाकर अग्निको बल देवे तब जठराग्नि वातकी सहायता पाकर प्रबल होकर देहको रूखा कर देवे और उसके जोरसे वारंवार अन्नको पचावे । अन्नको पचाय पीछे रुधिर आदि धातुओंको पचावे । रुधिर आदिके पचनेसे देहमे दुर्बलताका रोग और मृत्युको मनुष्य प्राप्त होवे । जब अन्नको खावे तब तो शांति हो जाय और जब अन्न पच जाय तब मूर्च्छित होय । प्यास, खांसी, दाह, मोह अर्थात् कुछ सुध न रहे ये रोग अत्यन्त अग्निसे होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अग्निमांद्यनिदानं समाप्तम् ।

# अथाजीर्णनिदानम् ।

अग्निमांद्य और अजीर्ण इनका परस्पर कारण है इसीसे अग्निमांद्यके पीछे अजीर्णनिदानको कहते हैं ।

**आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ॥ अजीर्णं केचि-**

**दिच्छंति चतुर्थं रसशेषतः ॥ १ ॥ अजीर्णं पंचमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ॥ वदंति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ २ ॥**

भाषा-मनुष्यके कफसे आम, पित्तसे विदग्ध, वातसे विष्टब्ध ऐसे तीन प्रकारका अजीर्णरोग होता है और जो भोजन करा सो पक्क होय नहीं, रस शेष रहे सो रसशेषसे चतुर्थ अजीर्ण होय है और रात्रि दिनमें जो आहार पचे और जिसमें अफरा हडफूटन कुछ न होय ये पांचवां अजीर्ण किसीके मतसे है और जो नित्यही स्वाभाविक अजीर्ण रहे ( विकृतिजन्य न होय ) उसको छठा अजीर्ण कहते हैं इस अजीर्णके पचानेके अर्थ सुश्रुतमें वामपार्श्वशयनादिक उपाय कहे हैं सो करने चाहिये ॥

**भुक्त्वा शतपदं गच्छेद्वामपार्श्वेन संविशेत् ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगंधांश्च मनसः प्रियान् ॥ भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥३॥**

भाषा-भोजन करे पीछे सौ पैंड डोलना, बाईं करवट शयन करना, अपने मनको प्रिय शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सुगन्ध इनको सेवन करना इस प्रकार करनेसे अन्न भले प्रकार पचता है ॥

अजीर्णके कारण ।

**अत्यंबुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥**
**कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥४॥**
**ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन ॥**
**प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥**

भाषा-बहुत जल पीनेसे, भोजनके समयको छोड पीछे भोजन करनेसे, मल मूत्र आदिके वेगोंको रोकनेसे, दिनमें सोनेसे, रातमें जागनेसे, इन कारणोंसे भोजनके समय यदि लघु और शीतल पदार्थ खाय तो अन्न अच्छी रीतिसे नहीं पचे ये देहके कारण कहे । अब अजीर्णके कारण जो मनसे सम्बन्ध रखते हैं उनको कहते हैं । ईर्ष्या कहिये परद्रव्यको न देख सकना, डरना, क्रोध करना इन कारणोंसे तथा लोभ शोक दीनता इन कारणोंसे और मत्सरता करना इन कारणोंसे मनुष्यका भोजन करा भया अन्न भले प्रकार पचता नहीं है ॥

आमादिक अजीर्णोंके लक्षण ।

**तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गंडाक्षिकूटगः ॥**
**उद्गारश्च यथा भुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ॥ ६ ॥**

भाषा-इन चारों अजीर्णोंमें प्रथम आमाजीर्णके लक्षण कहते हैं । पेट और अंग भारी होय, वमनका आना ऐसा प्रतीत हो, कपोल और नेत्रोंमें सूजन होवे और इसी अजीर्णके प्रभावसे जैसा भोजन करा होय मीठा आदि उसी प्रकारकी डकार आवे ॥

विदग्धाजीर्णके लक्षण ।

**विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ॥**
**उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च यायते ॥ ७ ॥**

भाषा-विदग्ध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं और पित्तके अनेक रोग प्रगट हों तथा धूंएके साथ खट्टी डकार आवे, वेद पसीना आवे और दाह होय ॥

विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण ।

**विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ॥**
**मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तंभो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ ८ ॥**

भाषा-विष्टब्ध अजीर्णके ये लक्षण हैं । शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा, मल और अधोवायुका रुक जाना, देह जकड जाय, मोह और देहमें पीडा हो ॥

रसशेष अजीर्णके लक्षण ।

**रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥**

भाषा-रसशेष अजीर्णके ये लक्षण हैं । अन्नमें अरुचि, हृदयमें शुद्धि न होय और देह भारी होय ॥

अजीर्णके उपद्रव ।

**मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ॥**
**उपद्रवा भवंत्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ ९ ॥**

भाषा-मूर्च्छा, बडवड, ओकारी अर्थात् वमन, लारका गिरना, ग्लानि, भ्रम ये अजीर्णके उपद्रव हैं और बहुत बडा अजीर्ण मनुष्यको मारभी डालता है ॥

बहुत भोजनही अजीर्णका हेतु है उसीको कहते हैं ।

**अनात्मवंतः पशुवद्भुंजते येऽप्रमाणतः ॥**
**रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवंति हि ॥ १० ॥**

भाषा-जिन मनुष्यकी इन्द्रियें स्वाधीन नहीं हैं वे पशुके समान अप्रमाण भोजन करते हैं उन्होंके अनेक रोगोंका कारण अजीर्णरोग प्रगट होता है ॥

अजीर्णरोगसे विषूचिकारोगकी उत्पत्ति होय है इससे अजीर्णके अनंतर विषूचिकाको कहते हैं ।

**अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ॥**
**विषूच्यलसको तस्माद्भवेच्चापि विलंबिका ॥ ११ ॥**

भाषा–आम, विष्टब्ध और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहे हैं उनसे विषूचिका ( हैजा ), अलस और विलंबिका पैदा होय है। इनसे चौथा रसशेष अजीर्णको विषूच्यादिक उत्पादक नहीं लिखा है। इसका कारण यह है कि उस रसाजीर्णको अपरिणाममात्रत्वकरके विषूचिका आदिके आरंभत्व स्वभावादिकोपमतके कहनेसे आम, विदग्ध और विष्टब्ध इनसे क्रमपूर्वक विषूचिका, अलस, विलंबिका ये प्रगट होते हैं। ऐसा कार्तिककुण्ड आचार्य कहता है सो असत्य है क्योंकि विदग्धाजीर्णको विलंबिकाका प्रगट करना असम्भव है क्योंकि उस विलंबिकाको आगे कफवातसे प्रगट कहेंगे और विदग्धभावको पित्तजन्यता है इससे यह मत मन्तव्य नहीं है। इसी कारण तीनों अजीर्ण मिलकर विषूचिका आदिको प्रगट करते हैं यह बकुल आचार्यका मत है ॥

विषूचिकाकी निरुक्ति कहते हैं ।

**सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ॥**
**यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १२ ॥**

भाषा–जिस अजीर्णमें वादी देहको सुईके सदृश पीडा देय अर्थात् सुईसी चुभे उसको वैद्य विषूचिका कहते हैं ॥

**न तां परिमिताहारा लभंते विदितागमाः ॥**
**मूढास्तामजितात्मनो लभंतेऽशनलोलुपाः ॥ १३ ॥**

भाषा–जिनका आहार परिमाणका है और जो वैद्यविद्याके कहनेपर चलते हैं उनके कदाचित् विषूचिकारोग नहीं होय और जो अज्ञानी तथा जिनकी इन्द्रिय वशमें नहीं और जो भोजनके लालची हैं ऐसे मनुष्योंको यह विषूचिकारोग अवश्य होय है ॥

विषूचिकाके लक्षण ।

**मूर्च्छातिसारो वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्वेष्टनजृंभदाहाः ॥**
**वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवंति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ १४ ॥**

भाषा–मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोंमें पीडा, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमें पीडा और मस्तकमें पीडा ये लक्षण हों उसको विषूचिका कहते हैं। इसीको महामारी अथवा हैजा कहते हैं ॥

अलसके लक्षण ।

**कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति ॥ निरुद्धो मारुतश्चैवं कुक्षावुपरि धावति ॥ १५ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि ॥ तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ तु यस्य च ॥ १६ ॥**

भाषा—कूखमें और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमें और कंठादिस्थानोंमें फिरे, मल मूत्र और गुदाकी पवन रुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें होंय उसको अलसक रोग कहते हैं ॥

विलंविकाके लक्षण ।

**दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्याम् ॥ विलंबिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥१७॥**

भाषा—जिस मनुष्यका भोजन करा भया अन्न कफवातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नहीं जाय अर्थात् वमन, विरेचन न होय उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसा विलंविकारोग कहते हैं । कोई शंका करे कि अलसक और विलंविका इन दोनोंको वातकफके प्रबल होनेसे ऊपर नीचे प्रवृत्ति होती है इन दोनोंमें भेद क्या है सो कहो । उत्तर—अलसकमें शूल आदिकी घोर पीडा होती है और विलं- विकामें नहीं हो इतनाही भेद है ॥

अजीर्णसे प्रगट विषूच्यादिको कहकर अजीर्णजन्य आमके दूसरे कार्यांतर कहते हैं ।

**यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ॥ दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १८ ॥**

भाषा—जिस ठिकानेपर आम रहता है उस ठिकानेपर जिस दोषसे वह स्थान व्याप्त हो उसके लक्षणकरके ( पीडा, दाह, गौरव आदि ) और आमजन्य विकार करके ( आमवातादिक ) विशेष पीडा होती है । इससे जाना गया कि और ठिकानेपर थोडी पीडा होती है और " यत्र ' इस सर्वनाम शब्दसे कुपित भये वातादिकोंके सदृश आमका कोई स्थान नहीं है यह दिखाया ॥

अब विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण ।

**यः श्यावदंतोष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ॥ क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ १९ ॥**

भाषा–जिस रोगीके दांत, नख, होंठ काले पड जावें और संज्ञा जाती रहे, वमनसे पीडित होवे और नेत्र भीतरको वैठ जांय, मन्दस्वर हो तथा हाथ पैरकी सन्धि ढीली पड जांय वह मनुष्य वचे नहीं । विलम्बिका स्वरूपसेही असाध्य है यह जय्यट आचार्यका मत है ॥

**निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञिता ॥ अमी उपद्रवा घोरा विषूच्यां पंच दारुणाः ॥ २० ॥ प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ २१ ॥**

भाषा–निद्राका नाश, मनका न लगना, कम्प, मूत्रका रुकना, संज्ञाका नाश ये विषूचिकाके घोर पांच उपद्रव हैं । वहुधा भोजनकी विषमतासे अजीर्णरोग मनुष्योंके होता है वही अजीर्ण सव रोगोंका कारण है उस अजीर्णरोगके नाश होनेसे सव रोगोंका नाश होता है । ये दोनों श्लोक क्षेपक हैं ॥

अजीर्ण जाता रहा उसके लक्षण ।

**उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गौ यथोचितः ॥**
**लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ २२ ॥**

भाषा–शुद्ध डकार आवे, शरीर मनका प्रसन्न होना, जैसा भोजन करा हो उसके सदृश मलमूत्रकी भले प्रकार प्रवृत्ति होना, शरीर हलका होय परन्तु कोष्ठ विशेष हलका हो, भूख और प्यास लगे, भोजन पचनेके उत्तर ये लक्षण होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाथुरीमाधवार्थवोधिनीटीकायामजीर्ण-रोगनिदानं समाप्तम् ।

---

# अथ कृमिरोगनिदानम् ।
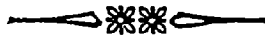
अजीर्णरोगसे कृमिरोग प्रगट होय है इसीसे अजीर्णरोगके अनन्तर कृमिरोग कहते हैं ।

**कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता वाह्याऽभ्यंतरभेदतः ॥**
**वहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥**

भाषा–कृमिरोग दो प्रकारका है । एक वाहरका, दूसरा भीतरका । तहां वाहरके मल ( पसीना आदि ) और कफ, रुधिर, विष्ठा इन कारणोंसे वहिः कृमिरोग चार प्रकारका है ॥

बाह्यकृमिके नाम ।

नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः ॥ तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशांबराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षादिनामतः ॥ द्विधा ते कुष्ठपिटिकाकंडूगंडान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

भाषा–वह कृमिरोगके वीस नामसे वीस भेद हैं । तहां बाहरके मलसे प्रगट कृमि तिलके प्रमाण, श्वेत, काली, केश और वस्त्रमें रहनेवाली होती है तथा बहुत पैरकी और छोटी जूं लीख नामसे प्रसिद्ध दो प्रकारकी हैं । ये कृमि कोढ, पीडिका, खाज, गांठ इत्यादि रोग प्रगट करती हैं ॥

कृमिरोगका कारण ।

अजीर्णभोजीमधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ॥
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक्संलभते कृमींस्तु ॥ ४ ॥

भाषा–अजीर्णमें भोजन करे, प्रतिदिन मीठा खट्टा खावे तथा पतला पदार्थ ( जैसे कढी, रायता आदि ) खावे, पीसा अन्न मैदा आदि और गुडके पदार्थ खावे और भोजन करके परिश्रम न करे, दिनमें सोवे, विरुद्ध भोजन जैसे दूध मछली आदिको खावे ऐसे पुरुषके कृमिरोग प्रगट होता है ॥

कौन कारणसे कौनसी कृमि प्रगट होती है ।

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ॥
मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवंति हि ॥ ५ ॥

भाषा–उडद, पीसा अन्न ( लड्डू, घेवर, गूंझा आदि ), नोनके गुडके तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसे मलकी कृमि प्रगट होती है । मांस उडद, गुड, दूध, दही, कांजी ऐसे पदार्थ खानेसे कफकी कृमि पैदा होती है । विरुद्ध पदार्थ जैसे दूध मछली और आधा कच्चा आधा पका शाक जैसे हरा चनेका आदि ऐसे भोजनसे रुधिरजन्य कृमि पैदा होती है ॥

पेटमें कृमि पड गई हों उसके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

भाषा–ज्वर हो, शरीरका रंग औरही प्रकारका हो जावे, शूल, हृदय दूखे, वमन–

कीसी इच्छा हो, भ्रम, भोजन बुरा लगे, दस्त होय ये लक्षण जिसके पेटमें गिंडोहा आदि कृमि पड जाते हैं उसको होते हैं॥

कफकी कृमिके लक्षण।

**कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पंति सर्वतः॥ पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गंडूपदोपमाः॥ ७॥ रूढधान्यांकुराकारास्तनु दीर्घास्तथाणवः॥ श्वेतास्ताम्रावभासाश्च मानतः सप्तधा तु ते॥ ८॥ अंत्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महारुजः॥ चुरवो दर्भकुसुमाः सुगंधास्ते च कुर्वते॥ ९॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम्॥ मूर्च्छा च्छर्दिस्तृषानाहकार्श्यश्वयथुपीनसान्॥ १०॥**

भाषा–कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ जाती है तब चारों तरफ डोलती है, कोई चामके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती है, कितनीही छोटी, बडी, चौडी होती है और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका तामेके समान होय है, उन्होंके सात नाम हैं। सो इस प्रकार १ अंत्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगंध ये नाम कोई सार्थक हैं और कोई निरर्थक हैं। व्यवहारके निमित्त पहले आचार्योंने कहे हैं। इन कृमियोंसे वमनकी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न होना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश होवे, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं॥

रुधिरकी कृमिके लक्षण।

**रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जंतवोऽणवः॥ अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः॥ ११॥ केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुंबराः॥ षट् ते कुष्ठैककर्माणः सह सौरसमातरः॥ १२॥**

भाषा–रुधिरकी बहनेवाली नाडियोंमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, तामेके रंगके होते हैं। कोई बहुत बारीक होते हैं वे देखनेसेभी नहीं दीखे। ये कृमि छः प्रकारकी हैं उनके नाम ये हैं। १ केशाद, २ रोमविध्वंस, ३ रोमद्वीप, ४ उदुंबर, ५ सौरस और ६ मातर ये कुष्ठको पैदा करती हैं॥

**पक्वाशये पुरीषोत्था जायंतेऽधो विसर्पिणः॥ प्रवृद्धाः स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः॥ १३॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गंधानुविधायिनः॥ पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसिता-**

**श्रिताः ॥ १४ ॥ ते पंच नाम्ना कृमयः कक्केरुकमकेरुकाः ॥ सौसुरादा मलूनाश्च लेलिहा जनयंति च ॥ १५ ॥ विड्भेद-शूलविष्टंभकार्श्यपारुष्यपांडुताः ॥ रोमहर्षाग्निसदनगुदकंडू-र्विमार्गगाः ॥ १६ ॥**

भाषा-पक्काशयमें विष्ठासे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसती हैं जब ये बढ जाती हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है। ये कृमि बडी, छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफेद, नीली होती हैं इनके पांच नाम हैं। १ ककेरुक, २ मकेरुक, ३ सौसुराद, ४ मलून, ५ लेलिह । जब ये कृमि मार्गको छोड अन्य मार्गमें जाते हैं तब इतने रोग प्रगट करे हैं। दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमे कृशता तथा देहमें कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां कृमिरोगनिदान समाप्तम्।

# अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

**पांडुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफैस्त्रयः ॥**
**चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥**

भाषा-मलसे प्रगट कृमिरोग पांडु ( पीलिया ) रोगको प्रगट करे है इसी कारण कृमिरोगके अनन्तर पाडुरोगका निदान कहते हैं। तहां प्रथम पांडुरोगकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं। १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्निपातका और ५ माटीके खानेसे। ऐसे पाडुरोग पांच प्रकारका कहा है ॥

पांडुरोगके कारण और सम्प्राप्तिके लक्षण ।

**व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥**
**निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पांडुरतां नयंति ॥ २ ॥**

भाषा-अति मैथुन, खट्टे पदार्थका भोजन, नोनका पदार्थ खानेसे, बहुत मद्य पीनेसे, मिट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे, अत्यंत तीखा पदार्थ खानेसे इन कारणोंसे तीनो दोष रुधिरको बिगाड देहकी त्वचाको पीले रंगकी कर देते हैं। इस जगह रुधिरका तो उपलक्षणमात्र है। रक्तके कहनेसे त्वचा, मांस इनको दूषित करते हैं। हारीतने रसको दूष्य कहा है दोष नाम वातादिक और दूष्य कहिये० रसरक्तादि ॥

पूर्वरूप ।

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ॥
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

भाषा–त्वचाका फटना, मुखसे वारंवार थूकना, अंगोंका जकडना, माटी खानेकी इच्छा, नेत्रोंपर सूजन, मल मूत्र पीले हों, अन्नका परिपाक न हो ये लक्षण पांडुरोग प्रगट होनवाला होय है तब होते हैं ॥

वातपांडुरोगके लक्षण ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणात्मता ॥
वातपांड्वामये कंपतोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

भाषा–वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापना, कालापना और लाली होय है तथा कंप, सुई छेदनेकासा चुभना, अफरा, भ्रम, आदिशब्दसे मेद और शूलादिकभी होते हैं ॥

पित्तज पांडुरोगके लक्षण ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ॥
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपांड्वामयी नरः ॥ ५ ॥

भाषा–पित्तपांडुरोगके ये लक्षण होते हैं । मल मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडित हो, मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यंत पीली होती है ॥

कफपांडुरोगके लक्षण ।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ॥
पांडुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

भाषा–मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलकस, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना । जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका पांडुरोग जानना ॥

संनिपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण ।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ॥
पांडुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेंद्रियः ॥ ७ ॥

भाषा–ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त,

-ो त्रिदोषजन्य पांडुरोगी और क्षीण हो गया हो और जिस रोगीके इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रही हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे॥

मिट्टी खानेसे प्रगट पांडुरोगके लक्षण।

**मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः॥ कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्॥ ८॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्षाद्भुक्तं च रूक्षयेत्॥ पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि॥ ९॥ इंद्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यौजसी तथा॥ पांडुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम्॥ १०॥**

भाषा-मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पड जाय उसके वातादिक दोष कुपित होवे, कषैली माटीसे वात कुपित होय, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीसे कफ कुपित होवे। फिर वही मिट्टी पेटमे जाकर रसादिक धातुओंको रूखा करे। जब रौक्ष्य गुण प्रगट हो जाय तब जो अन्न खाय सो रूखा हो जाय। फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस वहनेवाली नसोंमें प्राप्त करे। उनके मार्गको रोक दे। इसके वहनेवाली नसोका मार्ग जब रुक जाय तब इन्द्रियोका बल अर्थात् अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होय। शरीरकी कांति, तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार ( हृदयमें रहता है सो ) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट कर उसमे बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश होता है॥

विशेष लक्षण।

**शूनाक्षिकूटगंडभ्रूः शूनपन्नाभिमेहनः॥**
**कृमिकोष्ठोऽतिसार्य्येत मलं चासृक्कफान्वितम्॥ ११॥**

भाषा-नेत्र, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठेमें कृमि पड जांय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पड जांय हैं तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं यह जय्यट आचार्यका मत है और कोई कहता है ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण हैं क्योंकि मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण अनंतर लिखे हैं परंतु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण स्पष्ट कहे हैं॥

असाध्य लक्षण।

**पांडुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्ध्यति॥ कालप्रकर्षा-**

च्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १२ ॥ बद्धाल्पविट् सहारि-
तं सकफं योऽतिसार्यते ॥ दीनः श्वेतातिदिग्धांगच्छर्दिमूर्च्छा-
तृषान्वितः ॥ १३ ॥ स नास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तु पांडुः श्वेतत्वमा-
प्नुयात् ॥ पांडुदंतनखो यस्तु पांडुनेत्रश्च यो भवेत् ॥ १४ ॥
पांडुसंघातदर्शी च पांडुरोगी विनश्यति ॥ अंतेषु शूनं
परिहीनमध्यं म्लानं तथा तेषु च मध्यशूनम् ॥ १५ ॥ गुदे च
शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यं तमसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जये-
त्पांडुकिनं यशोर्थी तथातिसारज्वरपीडितं च ॥ १६ ॥

भाषा—बहुत दिनका पांडुरोग काल बहुत बीतनेसे पुराना हो जाय है सो अच्छा नहीं होय । अथवा सब देहमें सूजन आ गई होवे और उसको पदार्थ पीले दीखें सोभी असाध्य है । अथवा जिस मनुष्यका बंधा हुआ मल थोडा हरे रंगका कफ-मिश्रित उतरे सोभी असाध्य है । अथवा जो पुरुष दीन कहिये ग्लानियुक्त हो और जिसकी देहका श्वेत वर्ण हो और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसे पीडित होवे सो पांडु-रोगी नष्ट होवे । अथवा जो रुधिरक्षय होनेसे पांडुरोग उत्पन्न होय सोभी असाध्य है । जिसके दांत, नख और नेत्र पीले होंय वह रोगी असाध्य है । जिसको सब पदार्थ पीलेही पीले दीखें वह रोगी मरे । हाथ, पैर, शिर इनमें सूजन हो और जिसका मध्य पतला होय ऐसा पांडुरोगी असाध्य है इससे विपरीत साध्य है । जिस रोगीके देहके मध्यमें सूजन हो और हाथ, पग, शिर ये सूख जांय तथा गुदा, लिंग इनमें सूजन होय तथा मरेके समान हो गया होय ऐसे पांडुरोगीको जिस वैद्यको यशकी इच्छा हो सो त्याग दे । उसी प्रकार अतिसार और ज्वर इनसे पीडित रोगीको वैद्य त्याग देवे । परंतु इस अंतके श्लोकमें जो ' पांडुकिनं ' यह पाठ है इस जगह " पानकिनं " ऐसा पाठ कोई आचार्य मानते हैं सो ठीक है । क्योंकि ऐसा पढनेसे पांडुरोगकी अवस्था अर्थात् पांडुरोगका भेद जो पानकी है उसकेभी लक्षण इस पाठसे आ गये । सो सुश्रुतमें लिखाभी है इसीका आशय लेकर किसीने लिखा है ॥

अंते शूनः कृशो मध्ये त्वथवा गुदशेफसि ॥
शूनो ज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तु पानकी ॥ १७ ॥

---

१ " सकामलापानाकिपांडुरोगः कुम्भाह्वयो लाघविकोऽलसाख्यः । " इति ।

भाषा–जिस मनुष्यके हाथ पैरपर सूजन होय और देहका मध्य कृश हो गया होय अथवा गुदा लिंगपर सूजन हो तथा ज्वर अतिसार करके मुर्दोंके समान होय यह लक्षण पानकी रोगके हैं । पाडुरोगका भेद कामला है ॥

अथ कामलाके लक्षण ।

**पांडुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ॥ तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥ हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ॥ रक्तपित्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेंद्रियः ॥ १९ ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ॥ कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ २० ॥**

भाषा–जो पाण्डुरोगी अत्यन्त पित्तकारक वस्तुओंका सेवन करे उसका पित्त रुधिर मांसको जलाय ( दुष्ट कर ) कामलारूप रोग प्रगट करनेको समर्थ होय । उस मनुष्यके नेत्र अत्यन्त पीले होंय, त्वचा, नख और मुख ये पीले होंय, मल मूत्र काले होंय अथवा पीले होंय वह मनुष्य वर्षाऋतुके मेंडकके समान पीला होवे । इन्द्रियोकी शक्ति नष्ट होय, दाह हो, अन्न पचे नहीं, दुर्बलता, अंगग्लानि, अन्नमें अरुचि इनसे पीडित होय जिसमे पित्त प्रबल ऐसी यह कामला एक कोष्ठाश्रय और दूसरी शाखा ( रक्तादि धातु ) आश्रित है । उसी प्रकार कामला स्वतंत्र होय है ॥ अब कहते हैं कि पाडुरोगकी उपेक्षा करनेसेही कामलादिक होते हैं, उसीकी दूसरी अवस्था कुम्भकामला है ।

अथ कुम्भकामलाके लक्षण ।

**कालांतरात्खरीभूता कृच्छ्रात्स्यात्कुंभकामला ॥**

भाषा–बहुत कालसे पुरानी पडनेसे जो कुम्भकामला होवे सो कृच्छ्रसाध्य होती है । कुम्भ कहिये कोष्ठ तद्गत जो कामला अर्थात् कोष्ठाश्रय कामला ॥

असाध्य लक्षण ।

**कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ॥
संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २१ ॥**

भाषा–जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो और शरीरपर सूजन विशेष होवे और नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यंत लाल होंय, मोह होय वह कामलावान् रोगी बचे नहीं ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

दाहारुचितृडानाहतंद्रामोहसमन्वितः ॥
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं च कामलावान्विपद्यते ॥ २२ ॥

भाषा-दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तन्द्रा, मोह इन लक्षणयुक्त तथा मन्दाग्नि और विस्मृतिवान् कामलावाला रोगी तत्काल मरे ॥

कुंभकामलाके असाध्य लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ॥
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुंभकामली ॥ २३ ॥

भाषा-वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायासश्रम इनसे पीडित तथा श्वास, खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुम्भकामलावाला रोगी मर जावे ॥

पांडुरोगसे हलीमक रोग प्रगट होता है सो कहते हैं ।

यदा तु पांडुवर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः ॥
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामंदाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥
स्त्रीष्वहर्षोऽगमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिर्भ्रमः ॥
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

भाषा-जिस समय पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होय और बल व उत्साह इनका नाश, तन्द्रा, मन्दाग्नि, महीन ज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगट हलीमक रोगके हैं ॥

पानकीलक्षण ।

सन्तापे भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता ॥
पांडुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत् ॥ २६ ॥

भाषा-सन्ताप कहिये इन्द्रिय मन इनका ताप, मलका पतला होना, भीतर बाहर पीला हो जावे और नेत्रोंका पीला होना ये पानकी रोगके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां पांडुकामलाहलीमकनिदानं समाप्तम् ।

# अथ रक्तपित्तनिदानम्।

पांडुरोगके सदृश रक्तपित्तकोभी पित्तजन्य होनेसे तदन्तर
रक्तपित्तनिदानको कहते हैं।

**घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः ॥ तीक्ष्णोष्णक्षार वर्णैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥ पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ॥ ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वं वाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥ ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ॥ कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥**

भाषा-धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत माग चलनेसे, अति मैथुन करनेसे, मिरच आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेस, जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोनसे आदि ले लवणके पदार्थ, खट्टी, कडुवी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडे तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो निकले। ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनी इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यंत कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमाचोंसे निकले है ॥

पूर्वरूप।

**सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ॥**
**लोहगंधिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४ ॥**

भाषा-ग्लानि, शीतकी इच्छा, कठसे धूआं निकलना, वमन और तपाये भये लोहेपर जल गेरनेसे जैसी गंध आवे ऐसी श्वास लेनेसे गंधका आना जिस मनुष्यमें इतने लक्षण मिलते होंय उसके जानना कि इसके रक्तपित्त प्रगट होवेगा ॥

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण।

**सांद्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ॥**

भाषा-सघन, कुछ पीला और कुछ चिकना तथा गाढा ऐसा रक्तपित्त कफमिश्रित जानना ॥

वातिक रक्तपित्तके लक्षण।

**श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातकम् ॥ ५ ॥**

भाषा-नीलवर्ण, लालवर्ण, कुछ झागयुक्त, पतला और रूखा ऐसा रक्तपित्त वातका जानना ॥

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण।

**रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ॥**
**मेचकागारधूमाभमंजनाभं च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥**

भाषा-जो रक्तपित्त काढेके रंगसमान हो, काली गौके मूत्रसमान हो अथवा मोरकी चन्द्रिकाके समान नीलवर्ण होय अर्थात् बैंजनी रंगके सदृश होय, घरके धूआंके सुर्मेके समान होय ये पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण हैं। शंका-क्योंजी! केवल पैत्तिक रक्तपित्त नहीं हो सके है कारण इसका यह है कि जैसे कफके रक्तपित्तका मार्ग कहा है इस प्रकार पैत्तिक रक्तपित्तका नहीं कहा। उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह मार्ग जो कहा है सो वातकफके लक्षण प्रति नहीं कहा है ॥

द्विदोषजादि लक्षण।

**संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥**
**ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतान्वितम् ॥**
**द्विमार्गंकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते ॥ ७ ॥**

भाषा-दो दोषोंके मिलनेसे जो रक्तपित्त होय है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका रक्तपित्त जानना। ऊपरके मार्गसे कफका और नीचेके मार्ग होकर वातका और दोनों मार्गोंसे जो रक्तपित्त निकले सो वात और पित्त इन दोषोंसे प्रगट भया जानना ॥

ऊर्ध्वगादिकोंका साध्यासाध्य विचार।

**ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ८ ॥**

भाषा-ऊपरके मार्गसे लोही निकले सो साध्य है क्योंकि कफसे प्रगट है सो कफसे रक्तपित्तमें काथ तीखे रस कफ पित्तके हरणकर्त्ता होते हैं और नीचेके मार्गसे जिसमें रुधिर गिरे सो याप्य (साध्यासाध्य) है। इसका कारण यह है कि पित्तके हरणमें विरेचन मुख्य है और इसपर वात पित्त शमन करनेवाला मधुर रस प्रधान है। वमन देनेसे विरुद्धमार्गी होय है अर्थात् वेगमात्रका अवरोधक है परंतु पित्तका हरण करनेवाला नहीं है और दोनों मार्गोंसे गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्य है, कारण इसपर विरुद्ध चिकित्सा करनी पडती है ॥

साध्य होनेके कारण ।

**एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥**
**रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ९ ॥**

भाषा–बलवान् पुरुषके एक मार्ग अर्थात् ऊपरके मार्गसे जाता होय, अतिवेग नहीं होवे, नवीन प्रगट भया होय और हेमन्त शिशिर कालमें प्रगट भया हो और दुर्बलता आदि उपद्रवरहित होय ऐसा रक्तपित्त साध्य होय है ॥

दोषभेदसे साध्यासाध्य लक्षण ।

**एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥**
**त्रिदोषजमसाध्यं स्यान्मंदाग्नेरतिवेगितम् ॥ १० ॥**
**व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ ११ ॥**

भाषा–एक दोषका रक्तपित्त साध्य है, द्विदोषका याप्य है और तीनो दोषका असाध्य है । मन्दाग्नि अतिवेगसे होय. रोगसे क्षीण देहवालेका, बुढे मनुष्यका और जिसका आहार थक गया होय ऐसे मनुष्यका रक्तपित्त असाध्य होय है ॥

रक्तपित्तके उपद्रव ।

**दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुता दाहमूर्छा**
**भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥**
**तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं**
**भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १२ ॥**

भाषा–अशक्तता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, धतूरेके फल खानेसे जैसी अवस्था होय ऐसी अवस्था, शरीरका पीलावर्ण हो जावे, दाह, मूर्च्छा, अन्न खानेसे अत्यंत दाह होय, अधीरजपना, सर्वकाल हृदयमें विलक्षण पीडा, प्यास, कोष्ठभेद अर्थात् मल पतला होय, मस्तकमें पीडा, दुर्गंधयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं और उसी प्रकार उस रक्तपित्तकी विकृतिभी होय है सो आगे " मांसप्रक्षालनाभं " इत्यादि श्लोककरके कहते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

**मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा**
**मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ॥**
**यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-**
**स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ १३ ॥**

भाषा–जो रक्तपित्त मांस धोये हुए जलके समान हो अथवा सडे पानीके समान अथवा कीचके समान अथवा जलके समान, उसी प्रकार मेद राध रुधिर इनके समान, अथवा कलेजेके टुकडेके समान अथवा पकी जामनके समान किंवा काले रंगका किंवा नील कहिये पपैया पक्षीके पंखके समान अथवा जिसमें मरे खटमल-कीसी वास आवे और जिसमें पूर्वोक्त कहे श्वासकासादि विकार युक्त हों ऐसा रक्त-पित्त वर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्णसमान रंगका हो सोभी त्याज्य है अर्थात् ऐसे रक्तपित्तकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

**यन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ॥**
**पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम् ॥ १४ ॥**

भाषा–जिस रक्तपित्तने मनुष्यको ग्रस लिया होय वह दृश्य कहिये घटपटादि और अदृश्य कहिये आकाश इनको रक्तवर्णका देखे वह रोगी निःसन्देह असाध्य जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

**लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥**
**लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १५ ॥**

भाषा–जो वारंवार रुधिरकी वमन करे और जिसके लाल नेत्र होंय तथा डका-रभी लाल आवे सो रक्तपित्तवाला रोगी मर जावे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां रक्तपित्तनिदानं समाप्तम् ।

---

# अथ राजयक्ष्मानिदानम् ।

---

**वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ॥**
**त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥**

भाषा–वात, मूत्र, पुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे, अतिमैथुन, उपवास, ईर्ष्या, खेद इत्यादिक धातुक्षयके कारणोंसे, बलवान्से वैर करनेसे, विषमाशन कहिये कुस-मय थोडा अथवा बहुत भोजन करनेसे इन चार कारणोंसे तीनों दोषोंके कोपसे मनुष्यके राजयक्ष्मारोग होय है । वेगका रोकनाही वातकोपका कारण है । यह सत्य है तथापि वातकोपसे अग्नि दुष्ट होकर कफपित्तका कोप होय है । इन चार हेतुओंमें

असंख्य हेतुओंका अन्तर्भाव होता है । रसादि धातुओंके शोषण ( सुखाने ) से इस रोगको शोष कहते हैं । तथा शरीरमें पाचनादि सर्व क्रियाओंको क्षय करे है इसीसे इस रोगको क्षय कहते हैं । और राजा ( चन्द्र ) इस रोगसे अति पीडित भया इसीसे इसको राजयक्ष्मा कहते हैं । यह सुश्रुतका आशय है और वाग्भटने इसको सर्व रोगोंका राजा कहा है इसीसे इसको राजयक्ष्मा नाम कहा है । इस श्लोकमें जो कहा है कि त्रिदोषका एकही यक्ष्मारोग प्रगट होता है उसका तात्पर्य यह है कि तीनों दोषोंके कारणभेदसे अनेक प्रकारका नहीं है सो सुश्रुतमें कहाभी है और इस श्लोकमें " वेगरोधात् " इस पदसे केवल वात, मूत्र, मल इनकाही ग्रहण करना चाहिये । भ्रमादिक सर्वोका ग्रहण नहीं है सो चरकमें लिखा है इति ॥

राजयक्ष्माकी विशिष्टसंप्राप्ति ।

**कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥**
**अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनंतराः ॥**
**क्षीयंते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥**

भाषा-कफ है प्रधान जिनमें ऐसे वातादिक दोष तिनकरके रसके वहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जानेसे ( इससे यह सूचना करी कि रसमार्ग बंद होनेसे ) हृदयमें स्थित जो रस उसको विगाड और उसी स्थानमें विकृति कहिये और प्रकारका स्वरूप करके खांसीके वेगसे मुखमार्ग होकर निकाले । सो चरकमें लिखाभी है इससे अनुलोमक्षय दिखाया । अब प्रतिलोम क्षय कैसा होता है उसको कहते हैं । अथवा अति मैथुन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षीण होता है । जब शुक्र क्षीण हो जाय तब समीपकी धातु क्षीण होय तब पुरुष सूखने लगे । जैसे शुक्र क्षीणके अनन्तर मज्जा क्षीण होय, मज्जा क्षीणके अनन्तर हड्डी क्षीण होय ऐसे, पूर्व पूर्व धातु क्षीण होय जांय । शंका-क्योंजी ! रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र इनमें क्रमसे प्रत्येकके क्षीण होनेसे शुक्रका क्षय होना उचित है परंतु कार्यभूत शुक्रका क्षय होनेसे कारणभूत धातुओंका नाश कैसे होय है ? उत्तर-जब शुक्रका क्षय होय है तब वात कुपित होता है सो तंत्रान्तरोंमें लिखा है अर्थात् धातुके नष्ट

---

१ " संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते । क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः॥ राज्ञश्चंद्रमसो यस्मादभूदेषः किलामयः । तस्माच्चं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ " इति । २ " एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको यतः । उद्रेकात्तत्र लिंगानि दोषाणां निर्मितानि हि ॥ " इति । ३ " ह्रीमत्त्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम् । वातमूत्र-पुरीषाणा निगृह्णाति यदा नरः ॥ " इत्यादि । ४ रससे रुधिर, रुधिरसे मांस इसी रीतिसे शुक्रपर्यंत धातुओंका क्षय होय सो । ५ प्रतिलोम कहिये शुक्रसे रसपर्यंत धातुओंका शोष ।

होनेसे पवनको वहनेवाली नाडियोंका मार्ग बन्द होकर वायुको कुपित करे तब वही पवन समीपकी मज्जा धातुको सुखावे; तदनंतर हड्डी और उसके पश्चात् मेदा इसी रीतिसे रसपर्यंत धातुओंको सुखावे है । इस जगहपर दृष्टांत है जैसे अग्निमें तपाया भया लोहका गोला गीली पृथ्वीमे धरनेसे प्रथम समीपकी पृथ्वीके आर्द्रपनेको शोषण करे पीछे दूरका गीलापना शोषण करे उसी रीतिसे यहां जानना चाहिये ॥

पूर्वरूप ।

**श्वासांगसादकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ॥ शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जंतुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ३ ॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकनीलकंठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ॥ तं वाहयंति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥**

भाषा–श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुका सूखना, वमन, मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं और उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते हैं और उस मनुष्यकी मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेपर इच्छा होती है और स्वप्नमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ, गीध, बन्दर, करकटा इनपर अपनेको बैठा देखे और जलहीन नदीको देखे तथा पवन धूर और धूंआ इनसे पीडित ऐसे वृक्ष देखे । चकारसे तृण, केश आदिका गिरना ये होते हैं । ये सब स्वप्न क्षईरोग होनेके पहले दीखते हैं सो चरकमें लिखा है । शंका–क्योंजी ! शुक्रका तो क्षय हो जाय है फिर " रिरंसुः " यह पद क्यों धरा ? उत्तर–यह केवल व्याधिके बढनेसे मनके दोषसे जानना चाहिये ॥

त्रिरूपक्षयके लक्षण ।

**अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः ॥
ज्वरः सर्वांगगश्चैव लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥**

भाषा–कन्धा और पसवाडोंमे पीडा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये राजयक्ष्माके तीन लक्षण अवश्य होते हैं ऐसा चरकने कहा है ॥

---

१ " पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्य दोषदर्शनम् । अदोषेष्वपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः । स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुंठने ॥ मक्षिकाघुणकेशादितृणानां पतनानि च । प्रायोन्नपाने केशाना नखानां चाभिवर्द्धनम् ॥ पतत्रिभिः पतगैश्च श्वापदैश्चापि घर्षणम् । स्वप्ने केशास्थिराशीना भस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ जलाशयाना शैलानां वनानां ज्योतिषामपि । शुष्कतां क्षीयमाणानां, पततां चापि दर्शनम् ॥ प्राग्रूपं बहुरूपस्य तज्ज्ञेयं राजयक्ष्मणः । इति । अत्र श्वापदा व्याघ्रादयः ।

एकादशरूप षड्रूप और त्रिरूप शोषके लक्षण कहते हैं।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः ॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ६ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छंद एव च ॥ कासः कंठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥७॥ एकादशभिरेतैर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम् ॥ कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ८ ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः ॥ जह्याच्छोषार्दितं जंतुमिच्छन्सुविपुलं यशः ॥९॥

भाषा–राजयक्ष्मा इस त्रिदोषसे उत्पन्न है इसमें दोषोंके न्यारे न्यारे मिलाकर सब ग्यारह रूप हैं। ये व्याधिके प्रभावसे होते हैं। सन्निपातज्वरके सदृश सर्व लक्षण सब दोषोंसे नहीं होते पृथक् पृथक् होते हैं सो दिखाते हैं। वादीके प्रभावसे स्वरभेद, कन्धा और पसवाडे इनमें संकोच और पीडा होय, पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना और कफके कोपसे मस्तकका भारीपना, अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं। इसमें तीन तो वातसे और चार लक्षण पित्तसे तथा चारही लक्षण कफसे ऐसे सब ग्यारह लक्षणसे अथवा खांसी, अतिसार, पसवाडोंमें पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छः लक्षणोंसे अथवा ज्वर, खांसी और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षईरोगवाले मनुष्यको तथा जिसका बलमांस क्षीण हो गया होय ऐसे रोगीको यशेच्छु वैद्य त्याग देय, ऐसा रोगी असाध्य है॥

साध्यासाध्यविचार।

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्वापि बलक्षये ॥
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १० ॥

भाषा–स्वरभेदादिक जो ग्यारह लक्षण कहे उन सब लक्षणोंकरके अथवा उनमेंसे आधे अर्थात् छः लक्षणोंसे अथवा तीन लक्षण कहे इनसे युक्त जो क्षईरोगी बल मांस क्षीण होनेपर त्याज्य है। यदि बल, मांस जिसका क्षीण न भया हो परंतु सर्वलक्षणयुक्तभी है तथापि त्याज्य नही है। उसकी चिकित्सा करनी चाहिये॥

असाध्यलक्षण।

महाशिनं क्षीयमाणमतिसारनिपीडितम् ॥
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

भाषा–जो बहुत भोजन करे परंतु दिन दिन प्रति क्षीण होता जाय यह असाध्य

रोगी है। अतिसारकरके अत्यंत पीडित होय सो रोगीभी असाध्य होय है, क्यों कि क्षईरोगवालेका जीना मलके आधीन है। जैसे लिखा है "मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम्। तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥" इति। और जिसके अंडकोश और उदर ये सूज गये हों ऐसा रोगी असाध्य है, क्योंकि शोथवाला दस्तके करानेसे अच्छा होय है सो इसपर दस्त करना वर्जित है। इसीसे ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देय ॥

कौनसे रोगीको औषध देना योग्य है सो कहते हैं।

**ज्वरानुबंधरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ॥**
**उपक्रमेदात्मवंतं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ १२ ॥**

भाषा–जिस क्षईरोगवाले मनुष्यको ज्वरका सम्बन्ध होय नहीं, बलवान् औषधादि उपचारका सहनेवाला और जिसकी इन्द्रियमें बल होय तथा जठराग्नि जिसकी दीप्त होय और कृश न होय ऐसे रोगीकी चिकित्सा ( उपचार ) करना चाहिये इस श्लोकमें "अकृशं" इस पदके धरनेका यह प्रयोजन है कि पुष्ट देहवालाभी इस क्षईरोगसे हजार दिन बच सके है। सो ग्रन्थान्तरमें लिखा है[1] ॥

असाध्यलक्षण।

**शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥**
**कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हंतीह मानवम् ॥ १३ ॥**

भाषा–सपेद नेत्र जिसके हो गये होंय, अन्न जिसको बुरा लगे, ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मूतनेवाला अर्थात् मल सुखसे उतरे इससे यह दिखाया कि जो आहार खाय सो मल हो जाय जब आहारका मल हो गया तब उसके मांस, रुधिर इनका क्षय होय इसीसे यह असाध्य है शुक्लाक्षादिक ये प्रत्येक अलग अलगभी असाध्य है। अब कहते हैं कि अति मैथुनादि करनेसे धातुका क्षय होय है इसीसे क्षईरोग प्रगट होय है ऐसा नहीं किंतु औरभी कारणसे होय है उसको कहते हैं ॥

**व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषिणः ॥**
**व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणो लक्षणं शृणु ॥ १४ ॥**

भाषा–अति मैथुनका शोषी, शोकशोषी, वार्द्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, मार्गशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इनके न्यारे न्यारे लक्षण कहता हूं ॥

---

१ "पर दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः। सुभिषग्भिरुपक्रांतस्तरुणः शोषपीडितः ॥" इति।

व्यवायशोषीके लक्षण।

**व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः॥**
**पांडुदेहो यथापूर्वं क्षीयंते चास्य धातवः॥ १५॥**

भाषा—व्यवायशोषी (अति मैथुनसे क्षीण भया) सुश्रुतके कहे अनुसार शुक्र-क्षयलक्षणोंसे (शुक्र क्षय होनेसे लिंग और अंडकोशमें पीडा होय मैथुन करनेमें अशक्ति और बलसे मैथुन करे तो वहुत देरमें शुक्रका स्राव होय और वह स्राव बहुत अल्प होय अथवा रुधिरका स्राव होय) पीडित होय उनके देहका वर्ण पीला हो जाय और शुक्रसे मज्जा, मज्जासे हड्डी ऐसे उलटे धातु क्षीण होते जाते है॥

शोकशोषीके लक्षण।

**प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः॥**

भाषा—शोकशोषी अर्थात् शोचसे जिसको क्षय हो वह चिंता करे और हाथ, पैर गलने लगे तथा शुक्रक्षयव्यतिरिक्त शोषवान् हो और पांडु देह होय ऐसा शोचसे क्षयवाला पुरुष होता है॥

जराशोषीके लक्षण।

**जराशोषी कृशो मंदवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः॥ कंपनोऽरुचिमान्भिन्न-कांस्यपात्रहतस्वरः॥ १६॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचि-पीडितः॥ संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः॥ १७॥**

भाषा—जरा (बुढापा) शोषी मनुष्य कृश होय है, उसके वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रिय ये मन्द हो जांय, कंप होय, अन्नमें अरुचि, फूटे कांसेके वासनको लकडीसे बजानेसे जैसा शब्द होय ऐसा शब्द होय, कफरहित वारंवार थूके अर्थात् कफके निकालनेके वास्ते यत्न करे तथापि कफ नहीं निकले, शरीर भारी रहे, अरु-चिस पीडित (पुनः अरुचि ग्रहणविशेषताद्योतकके वास्ते कही है), मुख, नाक और नेत्र इनसे स्राव होय, मल शुष्क उतरे और देहकी कांति निस्तेज होय॥

अध्वप्रशोषीके लक्षण।

**अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः॥**
**प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः॥ १८॥**

भाषा—अध्वप्रशोषी (अति मार्ग चलनेसे क्षीण हुए) मनुष्यके हाथ, पैर शिथिल हो जावे, उसके देहका वर्ण भूंजे पदार्थके सदृश और खरदरा होय है, सर्व देहमें प्रसुप्तता, हृदयमें प्यासका स्थान है सो, गला और मुख इनका सूखना। शंका—क्योंजी! जराशोषीके अनन्तर व्यायामशोषीके लक्षण कहने चाहिये। अध्व-

( मार्ग ) शोषीके लक्षण कहने चाहिये फिर माधवचार्यने अध्वशोषीके लक्षण क्यों कहे ? उत्तर–अध्वशोषीके लक्षण इसवास्ते पहले कहे कि व्यायामशोषीमें इसके सब लक्षण मिलते हैं । शंका–अच्छा आप ऐसे कहोगे तो व्यायामशोषीमें अध्वशोषीके कौनसे लक्षण नहीं मिलते ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परंतु अध्वशोषीमें उरःक्षत आदि चिह्न नहीं हैं इससे पूर्व अध्वशोषीके लक्षण कहे ॥

व्यायामशोषीके लक्षण ।

**व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ॥**
**लिङ्गैरुरक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ १९ ॥**

भाषा–व्यायामशोषी ( अत्यंत दंड कसरत आदि श्रमसे क्षीण ) मनुष्य विशेष करके अध्वशोषी लक्षण स्रस्तांगतादियुक्त होय है अर्थात् जो लक्षण अध्वशोषीमें थोडे थोडे होते हैं वे व्यायामशोषीमें अधिक होते हैं और उस मनुष्यके घावके विनाही उरःक्षतके लक्षण मिलते हैं । उरःक्षतके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं[1] ॥

तीन कारणोंसे व्रणशोष होय है सो कहते हैं ।

**रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयंत्रणात् ॥**
**व्रणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २० ॥**

भाषा–रुधिरके क्षयसे, फोडोंकी पीडासे तैसेही आहारके घटनेसे व्रणी पुरुषके जो शोष होय सो अत्यंत असाध्य जानना ॥

उरःक्षतसे धातुशोष होनेका सम्भव है अत एव शोषप्रकरणमें निदान-साहित उरःक्षतरोग कहते हैं ।

**धनुषा यस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् ॥ युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २१ ॥ वृषं हयं वा धावंतं दम्यं चान्यं निगृह्णतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २२ ॥ अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ॥ महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ २३ ॥ सहसोत्पततो दूरात्तूर्णं वातिप्रनृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च ॥ २४ ॥ ताडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥ स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २५ ॥**

---

१ " तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति । कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ॥ संतप्तवक्षसोऽत्यर्थं वमनात्परिताम्यति । दुर्गंधोच्छ्वासवदनो भिन्नवर्णस्वरो नरः ॥ " इति ।

भाषा–बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे, बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊंचे स्थानसे गिरनेसे, बैल घोडा हाथी ऊंट इत्यादिक दौडते हुओंको थमानेसे, भारी, शिला लकडी पत्थरनिर्घात ( अस्त्रविशेष ) इनके फेंकनेसे, शत्रुको मारनेवाला, जोरसे वेदादिक शास्त्रको पढनेसे अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला अथवा घोडेके साथ दौडनेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जल्दी जल्दी बहुत नाचनेसे इस प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूर कर्म करनेसे उर ( छाती ) फट जाती है । ऐसे पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होय है और बहुत मैथुन करे तथा रूखा थोडा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसे अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे और रूखा रूखा थोडा और अनुमानका भोजन करनेवालेके ॥

**उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विरुज्यते ॥ प्रपीड्यते तथा पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ २६ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ॥ ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधादपि ॥ २७ ॥ दुष्टः श्यावः सुदुर्गंधिः पीतो विग्रथितो बहुः ॥ कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सास्रः प्रवर्त्तते ॥ सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसो क्षयात् ॥ २८ ॥**

भाषा–पूर्वोक्त लक्षणयुक्त ऐसे पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूक कर डाले ऐसा मालूम होय और हृदयमें अत्यंत पीडा हो और उसके पसवाडोंमें अत्यंत पीडा होय, अंग सब सूखने लगे तथा थरथर कांपने लगे और शक्ति मांस वर्ण रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा होय, मनमें सन्ताप, दीन हो जाय, अग्नि मन्द होनेसे दस्त होने लगे और वारंवार खासते खांसते दुष्ट काला अत्यन्त दुर्गंधयुक्त पीला गाठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण हो जाय ऐसा नहीं किन्तु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज ( सब धातुओंका तेज ) इनका क्षय होनेसे यह मनुष्य क्षीण होय है ॥

पूर्वरूप ।

**अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥**

भाषा–उस उरःक्षतके अप्रगट लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥

क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण ।

**उरोरुक्छोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः कफे ॥**

**क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३० ॥**

भाषा-क्षतक्षीण रोगीके हृदयमें पीडा होय, रुधिरकी उलटी करे और विशिष्ट कास अर्थात् कहे जो दुष्टश्वासादि लक्षण उन्होंसे युक्त होय और रुधिरयुक्त मूत्रका उतरना, पसवाडे, पीठ और कमर इनमें पीडा होय ॥

अथ साध्यलक्षण ।

**अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः ॥**
**परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥**

भाषा-जिसमें थोडे लक्षण मिलते हों और जिसका अग्नि दीप्त होय, बलवान् पुरुषके होय तथा रोग नवा हो तो वह साध्य है और रोगको भये एक वर्ष व्यतीत हो गया होय सो याप्य ( साध्यासाध्य ) है और जिसमें सर्व लक्षण मिलते होय सो असाध्य है उसको वैद्य त्याग देय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां राजयक्ष्मरोगनिदानं समाप्तम् ।

## कासनिदानम् ।

अथ कारण सम्प्राप्ति और निरुक्ति ।

**धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ॥**
**विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥**
**प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥**
**निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥**

भाषा-नाक मुखमें धूर वा धूंआ जानेसे, दंड कसरत, रूक्षान्न इनका नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलमूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिक्का अर्थात् ( छींक ) आती हुईके रोकनेसे प्राणवायु अत्यंत दुष्ट होकर और दुष्ट उदानवायुसे मिलकर कफ-पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोग कास ( खांसी ) कहते हैं ॥

**पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥**
**क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥**

भाषा-वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय ऐसे पांच प्रकारकी खांसी होती है ।

इनकी औषध न करे तौ सर्वका क्षयरूप हो जाय है ये उत्तरोत्तर बलवान् जानने । जैसे वातसे पित्तकी, पित्तसे कफकी, कफसे क्षतकी, क्षतसे क्षयकी खांसी प्रबल है ॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ॥
कंठे कंडूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

भाषा—मुख और गलेमें कांटेसे पड जाय तथा कंठमें खुजली चले, भोजन करा न जाय ये खांसी होनेहारेके लक्षण हैं ॥

वातकी खासीके लक्षण ।

हृच्छंखमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ॥
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

भाषा—हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम ये क्षीण पड जांय, वारंवार खांसीका उठना, स्वरभेद और सूखी खांसी उठे ये वातकी खासीके लक्षण हैं ॥

पित्तकी खासीके लक्षण ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितास्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेन पांडुः परिदह्यमानः ॥ ६ ॥

भाषा—पित्तकी खांसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो; मुख कडुआ रहे, प्यास लगे, पीले रंगकी और कडुवी ऐसी पित्तके प्रभावसे वमन होय, रोगीका पीला वर्ण हो जाय और सब देहमें दाह होय ॥

कफकी खासीके लक्षण ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजाऽऽर्त्तः कफपूर्णदेहः ॥
अभक्तरुग्गौरवकंडुयुक्तः कासेद्भृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

भाषा—कफकी खांसीसे मुख कफसे लिपटा रहे, मथवाय और सब देह कफसे परिपूर्ण रहे, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहे, कंठमें खुजली और रोगी वारंवार खांसे, कफकी गाठ थूकनेसे सुख मालूम होय ॥

क्षतकासलक्षण ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः ॥ रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ ८ ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् ॥ कंठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥ ९ ॥

सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥ दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥ पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

भाषा–बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध ( कुस्ती ) करनेसे, हाथी घोडा दौडनेको रोकनेसे इन कारणोंसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करे । सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यंत दूखे, हृदय फूटे सदृश मालूम होय और तीखी सुईकेसे चमका चले और उसको हृदयका स्पर्श सुहाय नहीं, दोनों पसवाडोंमें शूल होय यह वाग्भटका मत है । तथा दाह हो, उस रोगीके गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूं घूं शब्द करे ॥

क्षयकी खांसीके लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ॥ घृणिनां शोचतां नृणां व्यपन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ १२ ॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चापि लभेत कासी ॥ १३ ॥ शुष्यन्विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदंति ॥ १४ ॥

भाषा–कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अति मैथुन मलमूत्रादिक वेगधारण इनसे, अति दया करनेसे, अति शोक करनेसे, अग्नि मन्द होय अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो अग्निको नष्ट करे, तब तीनों दोष कोपको प्राप्त हो क्षयजन्य देहका नाशक ऐसी खांसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करे । शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होंय तब यह प्राणका नाश करे । सूखी खांसी, रुधिर मांस, शरीरका सूख जाना, रुधिर और राध थूके । ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अति कठिन ऐसे इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं ॥

साध्यासाध्यविचार ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ॥ साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ १५ ॥ नवौ कदाचित्सिध्येतामपि

पादगुणान्वितौ ॥ स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥१६॥ त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥१७॥

भाषा–इस प्रकार यह क्षयजकास ( खांसी ) क्षीण पुरुषकी घातक होय है। बलवान् पुरुषके असाध्य अथवा याप्य ( साध्यासाध्य ) होय है । क्षतज खांसीभी इसी प्रकारकी होती है । यदि वैद्यादि पादचतुष्टयसंपन्न हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन होय तो कदाचित् साध्य होय और बूढे पुरुषके जराकास अर्थात् धातुक्षीण होनेसे भई जो खांसी सो सब प्रकारकी याप्य है । सो सब इन्द्रियोंके अंतर्गत जाननी । अब कहते हैं कि वात, पित्त, कफ ये तीन खांसी साध्य हैं और बाकी तीन याप्य हैं । वे पथ्य सेवन करनेसे नाश होती हैं और अवज्ञा करनेसे असाध्य हो जाती हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कासरोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ हिक्कानिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः ॥ शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगघातापतर्पणैः ॥ हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

भाषा–दाहकारक, भारी, अफराकारक, रूखी, अभिष्यंदी ऐसे भोजन करनेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न खानेसे, शीत जल करके स्नान करनेसे, रज और धूंएके मुख नाकमें जानेसे, गरमी हवामें डोलनेसे, दंडकसरतके करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, मलादिक वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यके हिक्का ( हिचकी ), श्वास, दमा और कास ( खासी ) ये रोग उत्पन्न होते हैं॥

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहांत्राणि मुखादि वा क्षिपन् ॥ स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ३॥

भाषा–उदानवायु प्राणवायुके साथ मिलकर जब निकले तब मनुष्य हिग हिग ऐसा शब्द करे और कलेजा प्लीह इनको मुखपर्यंत खींच लावे ( इस स्थानमें मुख

१ " पूयाभमरुणं श्याव हरित पीतनीलकम् । निष्ठीवेच्छ्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः ॥ कासश्वासक्षयच्छर्दिस्वरभेदादयो गदाः । भवंत्युपेक्षयाऽसाध्यास्तस्मात्तांस्त्वरया जयेत् ॥ " इति ।

शब्दकरके प्राण, जल अन्न इनके वहनेवाले मार्ग जानने ) और मुखमें आनकर बडा शब्द निकले उसको वैद्यवर हिक्का ( हिचकी ) रोग कहते हैं । यह शीघ्र प्राणों-का हर्त्ता होय है ॥

हिक्काके भेद और संप्राप्ति ।

**अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा ॥**
**वायुः कफेनानुगतः पंच हिक्काः करोति हि ॥ ४ ॥**

भाषा-वात कफसे मिलकर १ अन्नजा, २ यमला, ३ क्षुद्रा, ४ गंभीरा और ५ महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकी रोगको प्रगट करे ॥

पूर्वरूप ।

**कंठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ॥**
**हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥**

भाषा-कंठ और हृदय भारी रहे और वादीसे मुख कषैला रहे, कूखमें अफरा रहे यह हिचकीका पूर्वरूप जानना ॥

अन्नजाके लक्षण ।

**पानान्नैरतिसंभुक्तैः सहसा पीडितोऽनलः ॥**
**हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥**

भाषा-अन्न और पानीके वहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्व-गामी होकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करे ॥

यमलाके लक्षण ।

**चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ॥**
**कंपयंती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥**

भाषा-ठहर ठहरके दो दो हिचकी चलें, शिरकंधाको कंपावे उसको यमला हिचकी जानना ॥

क्षुद्राके लक्षण ।

**प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते ॥**
**क्षुद्रिकानाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥**

भाषा-जो हिचकी वहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मंद मंद चले उसको क्षुद्रा नाम हिचकी कहते हैं ॥

---

१ उक्तं च-" प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि विकृतोऽनिलः । हिक्काः करोति संवध्य तासां लिंगं पृथक् शृणु ॥ " इति ।

गंभीराके लक्षण ।

**नाभिप्रवृत्ता हिक्का या घोरा गंभीरनादिनी ॥**
**अनेकोपद्रववती गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥**

भाषा-जो हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गंभीर शब्द् करे और जिसमें प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसको गंभीरा हिचकी कहते हैं ॥

महती हिचकीके लक्षण ।

**मर्माण्युत्पीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ॥**
**महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ १० ॥**

भाषा-जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करती हुई और सर्व गात्रको कँपावती हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय उसको महाहिक्का कहते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

**आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् ॥**
**क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चात्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ११**

भाषा-जिसका हिचकीसे देह तन जावे, ऊंची दृष्टि हो जावे और मोह होय, क्षीण पड जाय, भोजनमें अरुचि होय और छींक वहुत आवे ये दोनों हिचकीवाले रोगी अर्थात् जिसको गम्भीरा और महतीहिचकी होय वह वैद्यको त्याज्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

**अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ॥**
**व्याधिभिर्जीर्णदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥**
**आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हंत्याशु जीवितम् ॥ १२ ॥**

भाषा-जिसके अत्यन्त दोषोंका संचय हो गया हो और जिसका अन्न छूट गया हो, जो कृश हो गया हो, जिसका अनेक व्याधिसे देह क्षीण हो गया होय और जो वृद्ध है, अति मैथुन करनेवाला हो ऐसे पुरुषके ये दोनों हिचकी उत्पन्न होय तो तत्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करे ॥

यमिकाके असाध्य लक्षण ।

**यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥**

भाषा-बकवाद करे, पीडा होय, मोह प्यास इन लक्षणोंसे युक्त जो यमिका-नामकी हिचकी सो तत्काल प्राणहर्त्ता जाननी ॥

यमिकाके साध्यलक्षण ।

**अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ॥**
**तस्य साधयितुं शक्या यमिका हंत्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥**

भाषा-बलवान्, प्रसन्न मन, जिसकी धातु इन्द्रिय स्थिर होंय ऐसे पुरुषकी यमिका हिचकी साध्य है और इससे विपरीत अर्थात् क्षीण, दीन इत्यादि पुरुषको तत्कालही नाश करे । अन्नजा, क्षुद्रा ये दोनों साध्यही हैं । दो वार आनेसे यमिका कहाती है । चरकोक्त यमला इस जगह नहीं ग्रहण करनी चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां हिक्कारोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ श्वासनिदानम् ।

**महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ॥**
**भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ १ ॥**

भाषा-हिक्का श्वासका एक हेतु होनेसे हिक्काके अनन्तर श्वासरोगको कहते हैं । महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास और इन भेदोंसे श्वासरोग पांच प्रकारका है ॥

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण ।

**प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ॥**
**आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ २ ॥**

भाषा-हृदय दूखे, शूल होय, अफरा होय, पेट तनासा होय, कनपटी दूखे, मुखमें रसका स्वाद आवे नहीं यह श्वासरोगका पूर्वरूप है ।

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति ।

**यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ॥**
**विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः ॥ ३ ॥**

भाषा-सर्व देहमें विचरनेवाला पवन जब कफसे मिलकर प्राण अन्न उदक वहनेवाली सब नसोंके मार्गको रोक देवे तब पवन फिरनेसे रुककर श्वासरोगको प्रगट करे ॥

महाश्वासके लक्षण ।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ॥ उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ १४ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रांतलोचनः ॥ विकृताक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ५ ॥ दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ॥ महा-श्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ६ ॥

भाषा–जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त हो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको निकाले, ऊंचे स्वरसे अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे, नेत्र चंचल होंय और जिसके श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फट जांय, मल मूत्र बन्द हो जांय, बोला जाय नहीं अथवा बोले तो मन्द बोले, मन खिन्न होय और जिसका श्वास दूरसे सुनाई देय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ॥ श्लेष्मावृतमुख-स्रोताः क्रुद्धगंधवहार्दितः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यश्च विभ्रांताक्ष इतस्ततः ॥ प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ८ ॥

भाषा–बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वास लेय नीचे आवे नहीं, कफसे मुख भर जाय तथा सब नाडियोंके मार्ग कफसे बन्द हो जाय, कुपित वायुसे पीडित होय, ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्च्छाकी पीडासे अत्यंत पीडित होय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं ॥

ऊपरकोहा श्वास ले नीचे नहीं आवे यह जो कहा उसमें कारण कहते हैं ।

ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते ॥
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हंत्यसून् ॥ ९ ॥

भाषा–ऊपरका श्वास कुपित होनेसे नीचेका श्वास बन्द होय अर्थात् हृदयमें रुक जाय अथवा श्वास कहिये वायु सो नीचे नहीं उतरे तब मनुष्यको मोह होय ग्लानि होय । ऐसे पुरुषके ऊर्ध्वश्वास प्राणका हरण करे ॥

छिन्न श्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ॥ न वा श्वसिति

दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ १० ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ॥ विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः ॥ ११ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ॥ छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १२ ॥

भाषा–जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्याग करे अथवा क्लेशको प्राप्त हो, श्वासको नहीं छोडे और मर्म कहिये हृदय बस्ति ( मूत्रस्थान ) और नाडियोंको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीडा होय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित होय, बस्ति ( मूत्रस्थान ) में जलन होय, नेत्र चलायमान होंय अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे होंय, श्वास लेते लेते थक जाय तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय ( यह व्याधिके प्रभावसे होय है दोषके प्रभावसे होय तौ दोनों हो जांय ), उद्विग्न चित्त हो जाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिल हो जाय इस छिन्नश्वासक- रके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करे ॥

## तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥ ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १३ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ॥ अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १४॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुद्ध्यते ॥ प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः ॥ तस्यैव च विमोक्षांते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १६ ॥ तथास्योद्ध्वंसते कंठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ॥ न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १७ ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ॥ आसीनो लभते सौख्य- मुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ १८ ॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ॥ विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ १९ ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥ स याप्यस्तमकश्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २० ॥

भाषा-जिस कालमें शरीरका पवन उलटी गतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रय कर कफसंयुक्त होय तब कफसे रुककर अतिवेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करे और मस्तकमें पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र वेगसे हृदयको पीडा करनेवाले श्वासको उत्पन्न करे। उस श्वासके वेगसे मूर्च्छित होय त्रासको प्राप्त होय, चेष्टारहित होय और खांसीके उठनेसे वडे मोहको वारंवार प्राप्त होय और जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घडीपर्य्यन्त सुख पावे। कंठमें खुजली चले, वडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे, सोवे तौ वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठेही चैन पडे और गरमीके पदार्थसे खुश होय, नेत्रोंमे सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे, अत्यन्त पीडा होय, मुख सूखे, वारंवार श्वास और हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे। यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थ इनके सेवन करनेसे वढे है। यह तमकश्वास याप्य है। यदि नया प्रगट भया होय तौ साध्य होय है ॥

पित्तका अनुवन्ध होकर ज्वरादिकोंका योग होनेसे
प्रतमक होय है उसको कहते हैं।

**ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥**

भाषा-इस तमकश्वासमे ज्वर और मूर्च्छा ये दोनो लक्षण होनेसे इसको प्रतमकश्वास कहते हैं ॥

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते है।

**उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २१ ॥**
**तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति ॥**
**मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ २२ ॥**

भाषा-उदावर्त्त, धूल, आमादि अजीर्ण, विदग्धान्न, मलमूत्रादि वेगके रोकनेसे अथवा क्लिन्नकाय कहिये वृद्ध मनुष्य और निरोध कहिये वेगरोध इन कारणोंसे प्रगट भई जो श्वास सो अंधकारसे अथवा तमोगुणसे अत्यन्त वढे और शीतल उपचारसे शीघ्र शांत हो जाय, इस श्वासके योगसे रोगीको अन्धकारमें बूडासदृश मालूम होय इसको प्रतमकश्वास ऐसा कहते हैं ॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण।

**रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ॥ क्षुद्रश्वासो नसोऽत्यर्थं दुःखेनांगप्रबाधकः ॥ २३ ॥ हिनस्ति न स गात्राणि न च**

**दुःखो यथेतरे ॥ न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥२४॥**
**नेंद्रियाणां व्यथा चापि कांचिदापादयेद्रुजम् ॥ स साध्य उक्तः-**

भाषा-रूखे पदार्थ खानेसे, श्रमके करनेसे प्रगट भई जो क्षुद्रश्वास सो पवनको ऊपर ले जाय । यह क्षुद्रश्वास अत्यन्त दुःखदायक नहीं है तथा अंगोंको कुछ विकार नहीं करे । जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक है ऐसा यह नहीं है और भोजन-पानादिकोंकी उचित गतिको बन्द नहीं करे और इन्द्रियोंकोभी पीडा नहीं करे और कोई रोगकोभी नहीं प्रगट करे । यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा है ॥

साध्यासाध्यविचार ।

**बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २५ ॥**
**क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः क्षुद्र उच्यते ॥**
**त्रयः श्वासा न सिद्ध्यंति तमको दुर्बलस्य च ॥ २६ ॥**

भाषा-बलवान् पुरुषके सब महाश्वासादिकोंके लक्षण प्रगट न होंय तौ साध्य है । तिनमेंभी क्षुद्रश्वास अत्यंत साध्य है और तमकको क्षुद्र कहते हैं । अथवा " तमकः क्षुद्र उच्यते " इस जगह " तमकः कृच्छ्र उच्यते " ऐसाभी पाठ कोई कहते हैं । उसका अर्थ यह है कि तमक कृच्छ्रसाध्य है । महान्, ऊर्ध्व और छिन्न ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्त साध्य नहीं है । और निर्बल पुरुषके तमकश्वासभी साध्य नहीं होय ॥

**कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ॥**
**यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २७ ॥**

भाषा-प्राण हरण करनेवाले ऐसे सन्निपात ज्वरादिक रोग बहुतसे हैं वे ठीक हैं परंतु श्वास और हिचकी ये जैसे जल्दी प्राण हरण करते हैं ऐसे और ज्वरादिक नहीं करते ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां श्वासनिदान समाप्तम् ।

# अथ स्वरभेदनिदानम् ।

**अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवना-नादयस्तु ॥ स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥**

भाषा-बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊंचे स्वरसे पाठ करनेसे अर्थात् वेदादि पाठ करनेसे, कंठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो वात, कफ, पित्त सो कंठमें स्वरके वहनेवाली चार नसें हैं उनमें प्राप्त हो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त स्वरको नष्ट करे । यह स्वरभेदरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, क्षय और मेद इन भेदोंसे छः प्रकारका है ॥

वातज स्वरभेदके लक्षण ।

**वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं स्वरं वदति गर्दभवत्स्वरं च ॥**

भाषा-वायुसे स्वरभंग होय तो रोगीके नेत्र मुख मूत्र और विष्ठा ये काले होय, वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले अथवा गधेके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ॥

पित्तज स्वरभेदके लक्षण ।

**पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥**

भाषा-पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र मुख मूत्र और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय गलेमें दाह होय है ॥

कफके स्वरभेदके लक्षण ।

**ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकंठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥**

भाषा-कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुका रहे और मंद मंद तथा थोडा बोले, दिनमें बहुत बोले ॥

सान्निपातके स्वरभेदके लक्षण ।

**सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ३**

भाषा-सन्निपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होय हैं । यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते हैं ॥

---

१ " विषाध्ययनाभिघातैः " अत्र स्थाने " विषाध्यशनाभिघातैः " इति पाठः साधुः ।
२ यदुक्तं सुश्रुते-" द्वाभ्यां भाषते द्वाभ्यां घोषं करोति, भाषणघोषणयोरल्पमहत्त्वाभ्यां भेदः । " इति ।

क्षयजन्य स्वरभेदके लक्षण ।

**धूम्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥**

भाषा-क्षयी स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धूआंसा निकले और वाणी क्षय हो जाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले। इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत हो जाय अर्थात ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होय है और ओजका क्षय ( नाश ) नहीं होय तो साध्य है ॥

मेदके स्वरभेदका लक्षण ।

**अंतर्गतं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्त्तः॥४॥**

भाषा-मेदके सम्बन्धसे कफ अथवा मेद इनसे गला लिप्त होय अथवा मेदसे स्वरका मार्ग रुक जानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर बोले और मंद बोले ॥

असाध्य लक्षण ।

**क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यस्य सहोपजातः ॥**
**मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥**

भाषा-क्षीण पुरुषके, वृद्धके, कृशके, बहुत दिनका, जन्मके संगही प्रगट भया, मोटे पुरुषके और सन्निपातोद्भव ऐसा स्वरभेदरोग साध्य नहीं होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवभावार्थबोधिन्यां माथुरीभाषाटीकायां स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ।

# अथारोचकनिदानम् ।

**वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगंधैः ॥**
**अरोचकाः स्युः परिहृष्टदंतकषायवक्त्रस्य मतोऽनिलेन ॥ १ ॥**

भाषा-पृथक् वातादि दोष करके ३, सन्निपातसे १, शोकसे १, भयसे १, अति लोभसे १ तथा अतिक्रोधसे १, ऐसा ८ प्रकारका अरोचक ( अरुचि ) रोग है। वह मनको क्लेश देनेवाले अन्न, रूप और गंध इन कारणोंसे प्रगट होय है। परंतु सुश्रुत और अन्य ग्रन्थोंके मतसे पांचही प्रकार मुख्य माने हैं। भय, लोभ, क्रोधकी अरुचिको शोककीही अरुचिके अन्तर्गत मानते हैं। वादीकी अरुचिसे दांत खट्टे हों और मुख कषैला हो ॥

१ " अरोचको भवेद्दोषैरेको हृदयसंश्रयैः। सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥" इति ।

पित्तजादि अरुचियोंके लक्षण ।

**कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम् ॥**
**माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबंधयुतं कफेन ॥ २ ॥**

भाषा-पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गंधयुक्त ऐसा मुख होय। कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल मुख होय हैं और मुख बंधा सरीखा अर्थात् खाय नही और आत कफसे लिप्त हो ॥

शोकादि अरुचिके लक्षण ।

**अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याऽशुचिगंधजे स्यात् ॥**
**स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥**

भाषा-शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु, अपवित्र वास इनमें प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहे अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कषैला, खट्टा आदि नहीं होय, सन्निपातकी अरुचिमें अन्नसे अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हों ॥

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहकर अन्य ठिकानेपर जो विकृति होय है उसे कहते हैं ।

**हृच्छूलपीडितयुतं पवनेन पित्तात्तृड्दाहशोषबहुलं सकफप्रसेकम् ॥**
**श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥४॥**

भाषा-वातकी अरुचिसे हृदयमें शूल और वेदना होती है। पित्तसे प्यास दाह और चूसनेके सदृश पीडा ये लक्षण होते हैं। कफकी अरुचिमे मुखसे कफ गिरे। सन्निपातकी अरुचिमें पीडा अत्यन्त होय । वैगुण्य कहिये मनकी व्याकुलता, मोह, जडत्व इन लक्षणोसे अपर कहिये आगंतुक अरोचक जाने। भूख होय परंतु खानेकी सामर्थ्य न होना इसको अरुचि कहते हैं। आपको प्रियभी अन्न किसीने दिया होय परंतु खाय नहीं उसको अन्नाभिनन्दन कहते हैं। अन्नका स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास इनसे जिसको त्रास होय उसको भक्तद्वेष कहते हैं। इस प्रकार यह रोग तीन प्रकारका है। इसीवास्ते चरक सुश्रुतने अरोचक शब्दकरके संग्रह करा है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अरोचकनिदानं समाप्तम् ।

---

१ उक्तं हि वृद्धभोजेन-" प्रक्षिप्तं यन्मुखे चान्नं जतोस्तत्स्वदते मुहुः । अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमथो शृणु ॥ चिंतयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा च भोजनम् । द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ कुपितस्य भयार्त्तस्य अभिचाराभिभूतये । यस्यान्ने न भवेत् श्रद्धा स भक्तद्वेष उच्यते ॥ " इति ।

# अथ छर्दिनिदानम्।

छर्दिके कारण और निरुक्ति।

**दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ॥ छर्दयः पंच विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥ अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥२॥ श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्कृमिदोषतः ॥ नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ॥ छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति ॥ ४ ॥**

भाषा-दुष्ट हुए पृथक् और सब दोषोंकरके तथा दुष्ट वस्तुके देखनेसे आदि शब्दकरके दुष्ट गंधके सूंघनेसे पांच प्रकारकी छर्दि जाननी अर्थात् जिसको रद, वमन, उलटी कहते हैं उसके लक्षण आगे कहते हैं। अत्यन्त पतले अथवा चिकने, अहृद्य ( अप्रिय ) वस्तु, खारके पदार्थ इनके सेवन करनेसे, कुसमय भोजन करनेसे अथवा अत्यन्त भोजन करनेसे अथवा जो न पचे ऐसा भोजन करनेसे श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमिदोष इन कारणोंसे, गर्भिणी स्त्रीके गर्भकी पीडासे तथा जल्दी जल्दी भोजन करनेसे और बीभत्स ( खोटे ) कारणोंसे जैसे विष्ठा, राध आदिका देखना इनसे तीनों दोष कुपित हो बलसे मुखको आच्छादन करे और अंगोंको पीडा कर मुखद्वारा भोजन हुआ सब निकाल देय इसको छर्दि ( उलटी ) ऐसा मनुष्य कहते हैं। इस जगह उदान वायु वमन कराती है ॥

छर्दिका पूर्वरूप।

**हृल्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणस्तनुः ॥**
**द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥**

भाषा-हृदयमें खारा, खट्टा प्रथमही निकले अथवा सूखी रद होय, डकार आवे नहीं, लार गिरे, खारी मुख हो जाय, अन्न और पानीसे अत्यन्त अरुचि होय यह छर्दि ( छाट ) का पूर्वरूप है ॥

वातकी छर्दिके लक्षण।

**हृत्पार्श्वपीडा मुखशोषशीर्षनाभ्यार्तिकासस्वरभेदतोदैः ॥**

**उद्गारशब्दं प्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥**
**कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ ६ ॥**

भाषा–हृदय और पसवाडा इनमें पीडा होय, मुखशोष, मस्तक और नाभि इनमें शूल होय, खासी, स्वरभेद, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कषैली होय, वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ॥

पित्तकी छर्दिके लक्षण ।

**मूर्च्छा पिपासा मुखशोषशीर्षताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ॥**
**पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥**

भाषा–मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अर्थात् तपायमान रहे, अंधेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, गरम, हरा, कडुआ, धूंएके रंगका और दाहयुक्त ऐसे पित्तको वमन करे यह पित्तकी छर्दिका लक्षण है ॥

कफकी छर्दिके लक्षण ।

**तंद्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकं संतोषनिद्राऽरुचिगौरवार्त्तः ॥**
**स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥**

भाषा–तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष ( अन्नमें अरुचि ), निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसे पिडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद ऐसे कफको वमन करे, जब रद करे तब पीडा थोडी होय, रोमांच होय, ये कफकी छर्दिके लक्षण हैं ॥

त्रिदोषकी छर्दिके लक्षण ।

**शूलाविपाकाऽरुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तम् ॥**
**छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसांद्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ९ ॥**

भाषा–शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन सो सन्निपातसे होय है । रद करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट जिसको देशावरी मनुष्य जाडी कहे हैं, गरम, लाल ऐसी होय है ॥

असाध्य छर्दिके लक्षण ।

**विट्स्वेदमूत्रांबुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुद्ध्य यदोर्ध्वमेति ॥**

---

१ यदुक्तं सुश्रुते–" शुक्लं हिमं सान्द्रकफं कफेन " इति ।

**उत्पन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ १० ॥**
**विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृट्श्वासकासार्तियुतं प्रसक्तम् ॥**
**प्रच्छर्दयेदुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशु विनाशमेति ॥ ११ ॥**

भाषा–जिस समय यह वायु पुरीष, पसीना, मूत्र और जल इनके वहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर ऊपर आवे तब ऊपर आनेवाला दोष ( मलमूत्रादि ) कोठेसे बाहर निकाल वमन करावे, उस वमनमें मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवे तथा वर्णभी मलमूत्रके सदृश होय, प्यास, श्वास, खांसी और शूल ये होय और यह वमन वारंवार बडे वेगसे होय है इस वमनसे पीडित मनुष्य थोडे कालमें नाशको प्राप्त हो। यहभी सन्निपातकी है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं और अन्य आचार्य कहते हैं कि सब छर्दि प्रबल हैं परंतु ऐसी छर्दि असाध्य है ॥

आगंतुक छर्दिके लक्षण ।

**बीभत्सजा दौहृदजाऽमजा च याऽऽसात्म्यजा वा कृमिजा च या हि ॥**
**सा पंचमी तां च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥**

भाषा–बीभत्स पदार्थ कहिये मल, राध, रुधिर आदि अपवित्र वस्तुके देखनेसे; गंधसे, स्वादसे, स्त्रीके गर्भ रहनेसे, आमसे, असमान भोजनसे अथवा कृमिरोगसे इन कारणोंसे प्रगट भई आगंतुज पांचवीं छर्दि होय है। उसमें पूर्वोक्त लक्षणोंमेंसे जिस दोषके अधिक लक्षण मिलें उसी दोषको प्रबल जाने ॥

कृमिकी छर्दिके लक्षण ।

**शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ॥**
**कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥**

भाषा–कृमिकी छर्दिमें शूल, खाली रद ये विशेष होते हैं और बहुधा कृमि और हृदयरोग इनके लक्षण सदृश लक्षण जानने। जैसे पिछाडी कह आये हैं–" उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः। अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ "

साध्यासाध्य लक्षण ।

**क्षीणस्य या च्छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ॥**
**सचंद्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १४ ॥**

भाषा–क्षीण पुरुषकी अथवा वारंवार एकसी होनेवाली और कासादि उपद्रवयुक्त और रुधिर राध मिली, मोरचंद्रिकाके समान ऐसी छर्दी असाध्य है और जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य समझकर उपाय करें ॥

उपद्रव।

**कासश्वासौ ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च ॥**
**हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १९ ॥**

भाषा-खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेचेत, हृदयरोग, अंधेरा आना ये छर्दिरोगके उपद्रव हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया छर्दिनिदान समाप्तम्।

# अथ तृष्णानिदानम्।

तृष्णाकी सम्प्राप्ति।

**भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाप्यूर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च ॥**
**पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥**

भाषा-भयसे, श्रमसे, बलके भयसे और पित्तके बढानेवाले क्रोध उपवासादिकोंसे अपने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त और वात ये कुपित होकर ऊपर तालुए ( पिपासास्थान ) में जाय तृष्णा ( प्यास ) को उत्पन्न करें। इस जगह तालुका तो उपलक्षणमात्र है। तालुके कहनेसे क्लोमस्थान ( हृदयमें जो प्यासका स्थान है ) उसकाभी ग्रहण है क्योंकि वहभी प्यासका स्थान है सो चरकमें लिखा है॥

अन्नजादिक तृष्णाकी संप्राप्ति।

**स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृष्णा भवतीह जंतोः ॥**
**तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ॥**
**भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशश्च ॥ २ ॥**

भाषा-जलके वहनेवाली नसके दूषित होनेसे दोष ( अन्न, कफ और आम ) से तृष्णारोग होय है वह तीन प्रकारका है और चौथी क्षतज तृष्णा ( जो व्रणवाले पुरुषके होती है ), पांचवीं क्षयसे होती है, छठी आमसे होती है, सातवीं अन्नसे होय। उन्होंके लक्षण क्रमसे कहता हूं। इनमे पहिली चार तृष्णा सुखसाध्य हैं और बाकीकी तीन कष्टसाध्य हैं। शंका-क्योंजी ! इस श्लोकमें " स्रोतःसु " यह बहुवचन क्यों धरा ? यह विरुद्ध है क्योंकि सुश्रुतमें तो जलके वहनेवाली दोही

---

१ " रसवाहिनी च धमनी जिह्वामूलगतालुक्लोम्नः। सशोष्य नृणां देहे कुरुतस्तृष्णामतिप्रबलौ ॥ " इति। २ " द्वे उदकवहे " इति।

नाडी मानी हैं । उत्तर—अन्न कफ आमको दुष्ट करनेसे तथा रोगोंका सम्बन्ध होनेसे अन्न, आम, कफको दोषत्व ग्रहण है यह गयदासका मत है । अथवा दोषके कहनेसे वात, पित्त, कफकाही ग्रहण करना चाहिये ॥

वातकी तृषाके लक्षण ।

**क्षामास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि ॥**
**स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥**

भाषा—वातकी तृषा ( प्यास ) से मुख उतर जाय अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकाने नोचनेके समान पीडा होय, रस और जल वहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुक जाय, मुखसे स्वाद जाता रहे और शीतल जलके पीनेसे प्यास वढे ये अनुपशयके लक्षण हैं । चकारसे निद्राका नाश होय ।

पित्तकी तृषाके लक्षण ।

**मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ॥**
**शीताभिनंदा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूयनं च ॥ ४ ॥**

भाषा—पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, वडवड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष, शीत पदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुआट और सन्ताप ये लक्षण होते हैं॥

कफकी तृषाके लक्षण ।

**बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णाबलासेन भवेत्तथा तु ॥**
**निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ५ ॥**

भाषा—अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होय तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके वहनेवाली नाडियोंको सुखाय कफकी तृषाको प्रगट करे । केवल कफसे तृष्णाका प्रगट होना असंभव है । केवल कफ बढे भयेका द्रवीभूत धर्म पतला होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है और वात पित्तको तृषा करनेवाले होनेसे होय है सो ग्रन्थातंरमें लिखाभी है इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृषा नहीं कही । सुश्रुते चिकित्सामें भेद होनेसे कही है और हारीतनेभी सपित्त कफकी तृषा मानी है, केवल कफकी नहीं मानी । इस तृषामें निद्रा, भारीपना, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं । इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जाता है ।

क्षतज तृष्णाके लक्षण ।

**क्षतस्य रुक् शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥**

---

१ यदुक्तम्—" पित्त सवातं कुपित नराणा " इत्यादि । चरकेऽप्युक्तम् " मदस्याग्नेविना हि तृष्णापघनाद्वातौ हि शोषणे हेतुः । " इति । सुश्रुतेऽप्युक्तम् । " मंदस्याग्नेयवायव्यौ गुणावंबुवहानि च । स्रोतांसि शोषयेद्यस्मात्ततस्तृष्णा प्रवर्तते ॥ " इति ।

भाषा–शस्त्रादिकके लगनेसे घाव होय तब उस पुरुषके पीडा और रुधिरका स्राव होनेसे जो तृष्णा होय यह चौथी क्षतज तृष्णा जाननी ॥

क्षतज तृष्णाके लक्षण।

**रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥ ६ ॥**
**पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥**
**रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥ ७ ॥**

भाषा–रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होय हैं सो सब क्षयज तृष्णामें होते हैं तिससे पीडित पुरुष रात्रि दिन वारंवार पानी पीवे परंतु संतोष नहीं होय। कोई आचार्य इसको सन्निपातसे प्रगट कहते हैं। रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सब होते हैं सो वैद्योंको जानने चाहिये। रसक्षयलक्षण सुश्रुतमें कहे हैं वे इस प्रकार होते हैं। रसक्षय होनेसे हृदयमें पीडा, कंप, शोष, बधिरता ( बहरापना ) और प्यास होय है॥

आमज तृष्णाके लक्षण।

**त्रिदोषलिंगाऽऽमसमुद्भवा तु हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ ८ ॥**

भाषा–आमज कहिये अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं सो सुश्रुतमें लिखाभी है और हृदयमें शूल, लारका गिरना, ग्लानि ये सब होते हैं॥

अन्नज तृषाके लक्षण।

**स्निग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषं करोति ॥**

भाषा–चिकना, खट्टा, खारा, चकारसे कडुआ, कषैला आदि जानना, ऐसे भोजनसे तथा मात्राधिक और भारी ऐसा अन्न खानेसे अवश्यही शीघ्र प्यासको प्रगट करे। दृढवल आचार्यने पांचही प्रकारकी तृष्णा कही है। वातकी, पित्तकी, क्षयकी, आमकी, उपसर्गकी। तहां कफकी और आमकी तृषाके अंतर्गत कही है और क्षतजा वातकी तृषाके अंतर्गत जाननी और अन्नजाभी वातकी तृषाके अंतर्गत कही है क्योंकि भोजनसे वातका कोप होय है। शंका–क्योंजी! सुश्रुतने मद्यके प्रकरणमे मद्यकी तृष्णा कही है फिर माधवाचार्यने सातही तृषा कैसे कही हैं? उत्तर–दृढवलाचार्यके मतसे मद्यकी तृषाको वातकी तृषाके अन्तर्गत होनेसे माधवाचार्यने सातही कही है॥

---

१ तदुक्त हारीतेन–" स्वाद्वम्ललवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा। प्रपद्याम्बुवहस्रोतस्तृष्णा सजनयेन्नृणाम् ॥ शिरसो गौरव तद्रा माधुर्य वदनस्य च। भक्तद्वेषः प्रसेकश्च निद्राधिक्य तथैव च ॥ लिंगैरेतैर्विजानीयात्तृष्णां कफसमुद्भवाम् इति। २ " रसक्षये हृत्पीडा कपशोषवधिरता तृष्णा च ॥ " इति। ३ " अजीर्णात्पवनादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत्। " इति। " सतत यः पिबेत्तोय न तृप्तिमधिगच्छति। पुनः कांक्षति तोय च त तृष्णार्दितमादिशेत् " ॥ इति।

उपसर्गज तृषाके लक्षण ।

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः ॥
भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ ९ ॥
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ १० ॥

भाषा–हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि होय, मुख दीन हो जाय; हृदय, गला और तालु सूख जाय ये लक्षण तृषाके उपद्रवसे होते हैं । यह मनुष्यको सुखाय डाले और व्याधिसे शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य हो जाय है । इसके उपद्रव ये हैं । ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास आदिशब्दसे अतिसारादिकोंका ग्रहण है । ये रोग जिसके जिसके होंय उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी ॥

असाध्य तृषाके लक्षण ।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ॥
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ ११ ॥

भाषा–वातजादि सब प्रकारकी तृषा अत्यन्त बढी हुई अथवा रोगसे कृश भये ऐसे पुरुषको जो तृषा होती है सो अथवा छर्दिसे प्रगट भई जो तृषा और जो भयंकर उपद्रवकरके युक्त ऐसी तृषा मारनेका कारण होय है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां तृष्णारोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ मूर्च्छानिदानम् ।

तृष्णामें मोह होय है इसीसे तृष्णाके अनन्तर मूर्च्छाको कहते हैं ।

निदान और संप्राप्ति ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ॥ वेगाघाताद‌भीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यंतरेषु च ॥ निविशंते यदा दोषास्तदा मूर्च्छंति मानवाः ॥ २ ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ॥ ततोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

**वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥ षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥**

भाषा—क्षीण पुरुषके दोषोंका संचय होनेसे, विरुद्ध आहार क्षीर मत्स्यादि-कका सेवन करनेसे, मलमूत्रादि वेगको धारण करनेसे, लकडी आदिकी चोट लग-नेसे अथवा जिस पुरुषका सतोगुण क्षीण हो गया होय ऐसे पुरुषकी वाहरकी और भीतरकी मनके वहनेवाली नाडियोंमें दोष प्रवेश करे तव मनुष्यको मूर्च्छा आती है। अर्थात् संज्ञाके वहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषोंकरके आच्छादित होनेसे सुखदुःखका ज्ञान नष्ट होय तव मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठकीसी तरह गिरे। इस रोगको मूर्च्छा अथवा मोह ऐसा कहते हैं। अथवा वाहरकी इन्द्रियें नेत्र, कान आदि कर्मेंद्रिये और बुद्धीन्द्रियें इनमें बलवान् दोष ( वात, पित्त, कफ ) प्रवेश कर संज्ञाकी वहनेवाली जो नाडी तिसको वह वात, पित्त, कफ रोग अंधकारको प्रगट करे तव मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे उसको मूर्च्छा कहते हैं अथवा मोह कहते हैं। वह मूर्च्छा छः प्रकारकी है। वात, पित्त, कफसे तीन प्रकारकी और रुधिर, विष और मद्य इन भेदोंसे तीन प्रकारकी। इन तीनों मूर्च्छाओंमें पित्त है सो मुख्य प्रधान है अथवा व्यापक है ॥

मूर्च्छाका पूर्वरूप।

**हृत्पीडा जृंभणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ॥**
**सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं ता विभावयेत् ॥ ६ ॥**

भाषा—हृदयमें पीडा, जंभाई, ग्लानि, भ्रांति ये मूर्च्छाके पूर्वरूप हैं। उस मूर्च्छाके वातादि भेद जानने। यह प्रगट अवस्थाके पूर्वरूप अवस्थाको भेद नहीं यह जय्यटाचार्यका मत है ॥

वातकी मूर्च्छाके लक्षण।

**नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वाऽरुणम् ॥ पश्यंस्तमः प्रवि-शति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ७ ॥ वेपथुश्चांगमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ॥ कार्श्यं श्यावारुणा च्छाया मूर्च्छाये वातसंभवे॥८॥**

भाषा—जो मनुष्य नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगका आकाशको देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय और जल्दी होश हो जाय, देहमें कंप, अंगका टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश हो जाय, शरीरका रंग काला लाल पड जाय उसको वातकी मूर्च्छा जाननी ॥

---

१ उक्तं चाभिधानांतरे—" सज्ञोपघात मूर्च्छो या मूर्च्छा स्यान्मूर्छनं तथा। कश्मलं प्रलयो मोहः सन्यासस्तु मृतोपमः ॥ " इति।

पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण ।

**रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुद्ध्यते ॥ ९ ॥ सपिपासः ससंतापो रक्तपीताकुलेक्षणः ॥ संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छा चेत्पित्तसंभवा ॥ १० ॥**

भाषा–जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्च्छा आवे और सावधान होते समय पसीना आवे, प्यास होय, संताप होय, नेत्र लाल पीले होंय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं ॥

कफकी मूर्च्छाके लक्षण ।

**मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमो घनैः ॥ पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ११ ॥ गुरुभिः प्रावृतैरंगैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा ॥ सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छा ये कफसंभवे ॥ १२ ॥**

भाषा–कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बद्दल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय, देरमें सावधान होय, भारी बोझासा देहपर भार मालूम होय अथवा गीला चमडा धारण करासा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होयगी ऐसा मालूम होय ॥

सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण ।

**सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवापरः ॥**
**स जंतुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥**

भाषा–सन्निपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं । यह रोग दूसरा अपस्मार ( मृगी ) जानना चाहिये । परन्तु अपस्मारमें दांतोंका चबाना, मुखसे झागका गेरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका हो जाना इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोगमें नहीं होते; इतनाही भेद है । शंका–क्योंजी ! पूर्व तो छः प्रकारकी मूर्च्छा कह आये फिर सन्निपातकी मूर्च्छा कैसे कही ? उत्तर–चरककी अष्टोत्तरीयाध्यायमें लिखा है, जैसे अपस्मार चार प्रकारका है । वातका, पित्तका, कफका, सन्निपातका । उसी प्रकार मूर्च्छारोगभी चार प्रकारका है । इसी मतको ग्रहण कर माधवाचार्यने सन्निपातकी मूर्च्छा कही है ॥

रक्तकी मूर्च्छाके लक्षण ।

**पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगंधस्तदन्वयः ॥**

---

१ चतस्रो मूर्च्छा अपस्मारे व्याख्याताः । यथा चत्वारोऽपस्माराः वातेन, पित्तेन, श्लेष्मणा, सन्निपातेन तद्वन्मूर्च्छा अपीत्यर्थः ।

**तस्माद्रक्तस्य गंधेन मूर्च्छंति भुवि मानवाः ॥**
**द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ १४ ॥**

भाषा–पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुणविशिष्ट हैं सो सुश्रुतमें लिखा है। और रुधिरकी गंधभी उन दोनोंसे अर्थात् पृथ्वी और जलसे प्रगट है तो रुधिरकी गंधभी तमोगुणविशिष्ट हुई इसीसे जो तामसी पुरुष हैं वे रुधिरकी गंधीसे मूर्च्छित होते हैं। जो राजसी, सात्विकी पुरुष हैं वे मूर्च्छित नहीं होते। शंका–क्योंजी ! चंपक ( चम्पा ) पुष्पकी गंधसेभी मूर्च्छा होनी चाहिये क्योंकि उसमेंभी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गंध है। उत्तर–इसवास्ते कहते हैं " द्रव्यस्वभावमित्येके " अर्थात् कोई आचार्य कहते हैं कि यह द्रव्यकाही स्वभाव है अर्थात् रुधिरका यही स्वभाव है कि जिसकी गंधसेही मनुष्य मूर्च्छित होय है। अब प्रभावको औरभी दृढ करते हैं। " दृष्ट्वा यदभिमुह्यति " अर्थात् रक्तके देखनेसेभी मूर्च्छित होय है सो लिखाभी है ॥

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाको कहते हैं।

**गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥**
**त एव तस्मादाभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १५ ॥**

भाषा–तैलादिकोंमे जो दश गुण हैं वेही गुण विष और मद्यमें अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं। इसीसे विष और मद्यके सेवन करनेसे मोह होय है इसमेंभी मद्यमें तीव्र रहे और विषमे तीव्रतर रहे इसीसे विषका मोह स्वयं शांत नहीं होय। क्योंकि विष अपाकी है और मद्यका मोह मद्यकी नसा उतरेपर शांत हो जाय है। यह भेद विष और मद्यमें रहता है ॥

रक्तजादि तीन मूर्च्छाओंके लक्षण।

**स्तब्धांगदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १६ ॥ मद्येन विलपञ्छेते नष्टविभ्रांतमानसः ॥ गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरा यावन्न याति तत् ॥ १७ ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥**

भाषा–रुधिरकी मूर्च्छामें अंग और नेत्र निश्चल हो जांय और श्वास अच्छे प्रकार आवे नहीं। बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्च्छा हो उसके ये लक्षण हैं। बहुत

---

१ " तमोबहुला पृथ्वी तमोबहुला आपः " इति। २ यदुक्तम्–" भेदस्तब्धांगदृष्टिश्च गूढोच्छ्वासस्तथैव च। दर्शनादसृजस्तस्माद्घ्राणाच्चैव प्रमुह्यति॥" इति। ३ यदुक्तं दृढबलेन–" लघु रूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं विकाशि च। उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञैः ॥" इति।

बके, सो जाय, संज्ञा जाती रहे, भ्रमयुक्त होय और जबतक मद्य न पचे तबतक पृथ्वीमें हाथ पैर पटके। विषजन्य मूर्च्छामें कांपे, सोवे, प्यास लगे और अंधेरा आवे। एवं मूल, पत्र, दूध इनके भेदकर जो विषभक्षणसे लक्षण होते हैं सो सब लक्षण होते हैं॥

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इनके भेद कहते हैं।

**मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः॥**
**तमोवातकफा तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा॥ १९॥**

भाषा–मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहते हैं। रजोगुण, पित्त और वायु इनसे भ्रम होय है तमोगुण, वायु और कफ इनसे तन्द्रा और कफ तथा तमोगुण इनसे निद्रा उत्पन्न होती है॥

तन्द्राके लक्षण।

**इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृंभणं क्लमः॥**
**निद्रार्तस्येव यस्यैते तस्य तंद्रा विनिर्दिशेत्॥ २०॥**

भाषा–इन्द्रियें अपने अपने विषयको ग्रहण न करें, देह भारी हो जाय अर्थात् सुस्त हो जाय, जंभाई और क्लम होय ये लक्षण निद्रार्त पुरुषके सदृश जिसके होंय उसको तन्द्रा कहते हैं। इसमें आधे नेत्र खुले रहते हैं। निद्रामें इन्द्रियें और मनको मोह होय है। तन्द्रामें केवल इन्द्रियोंकोही मोह होय है। निद्रा और भ्रम ये दोनों अतिप्रसिद्ध होनेसे माधवाचार्यने नहीं कहे, परंतु चरकमें कहे हैं। सो इस प्रकार, जिस समय मन और इन्द्रिय खेदको प्राप्त होय और अपने अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) त्याग देय, तब यह मनुष्यको निद्रा आती है॥

संन्यासके भेदको कहते हैं।

**दोषेषु मदमूर्च्छाद्यागतवेगेषु देहिनाम्॥**
**स्वयमेवोपशाम्यंति संन्यासो नौषधैर्विना॥ २१॥**

भाषा–दोषोंका वेग नष्ट होनेसे मदमूर्छादिक अपने आप शांत हो जाते हैं परंतु संन्यास यह औषधके विना शांत नहीं होता है॥

---

१ "ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः सन्निपातप्रकोपनः। त एव मद्ये दृश्यते विषे तु बलवत्तराः॥" इति। २ "तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतसत्वज्ञानादिकम्। अन्ये चक्रास्थितस्येव सभ्रमवस्तुदर्शनम्॥" इति। ३ "यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः। विषयेभ्यो निवर्त्तते तदा स्वपिति मानवः॥" इति। ४ "येनायासश्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः। क्लमः स इति विज्ञेय इंद्रियार्थप्रबाधकः॥" इति।

संन्यासके लक्षण ।

**वाग्देहमनसां चेष्टा आक्षिप्यातिबला मलाः ॥**
**संन्यस्यंत्यबलं जंतुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २२ ॥**
**स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥**
**प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २३ ॥**

भाषा–अत्यंत बलिष्ठ भये जो दोष सो वाणी, देह और मन इनके व्यापारको बंद कर हृदयमें प्राप्त हो निर्बल मनुष्यको मूर्च्छित करे, वह संन्याससे पीडित मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे । उसकी सद्यःफल चिकित्सा अर्थात् सुईसे छेदना, तीखे अंजनका लगाना, अनामिकाको पीडित करना, कौंचकी फली लगाना, दाह देना, नास देना इत्यादिक क्रिया न करे तौ वह रोगी प्राणवियुक्त कहिये मरणको प्राप्त हो अन्यथा बचे है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूर्च्छारोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ मदात्ययनिदानम् ।

**ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः ॥ तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥ किं तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ॥ अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ २ ॥**

भाषा–विषके जो गुण कहे हैं सोई गुण मद्यमें हैं अर्थात् यही मद्य अविधिसे सेवन करा भया घोर भयंकर मदात्ययरोग प्रगट करे है । कोई ऐसे शंका करे कि विषके गुण मद्यमें हैं इससे विषके समान मद्यको सेवन न करे । इस विषयमें कहते है मद्य यह स्वभावसेही जैसे अन्न देहधारक है ऐसाही है, परंतु वह मद्य अविधिसे पीवे तो रोगकारक होय है और विधिसे सेवन करे तौ अमृतके समान गुण करे ॥

१ विधिश्चाय तद्यथा–"कुसुमितलतोपगूढः प्रकटनिरंतरनवाङ्कुरनिकरै रोमाचैः मधुकरमधुरचीत्कारशीत्कारैर्मुक्तकठकलकठकूजितैर्दक्षिणसमीरणोद्विजितसमुद्धसितपल्लवकरप्रचारैस्तरुणतरुभिः उपक्रांततरललताभिरतिशोभनेषु वनोपवनेषु तुषारकिरण रंजितप्रदोषेषु शृंगारसमुचिताळंकृतिकमनीयकामिनीसमर्पित ललितललनोपनीयमान सुरानिरुचिरकपरसोपदर्शक मानपरिमितपराद्धमधुपान क न सुखयति । चरकेण तु विस्तरेणोक्तं विद्धि ।

विधिसे मद्य पीनेका फल ।

**विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥ स्निग्धैः सदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ॥ भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ४ ॥**

भाषा–विधिपूर्वक, प्रमाणके संग, योग्य कालमें, चिकने आदि अच्छे अन्नके संग, बलाबलके अनुसार, अत्यंत हर्षके साथ जो मद्यपान करे उसको अमृतके तुल्य गुण करे । इसके पीनेकी विधि मदात्ययके दूसरे श्लोककी टिप्पणीमें लिख आये हैं । तथा और ग्रन्थान्तरोंमें विधि तथा मात्रा कालका नियम लिखा है अर्थात् शुद्ध शरीर होकर प्रातःकाल सोपदंश[1] अर्थात् मद्यपान करनेके बाद जो चटनी आदि पदार्थ खाये जाते हैं सो इनकरके सहित सो दो पल पीवे, मध्याह्नको चार पल पीवे तदनंतर चिकना पदार्थ भोजन करे और सायंकालको आठ पल पीवे । इस जगह पल नाम जैपुरसाई १ टका पक्केको कहते हैं । अथवा चिकने अन्नके साथ, मांसके साथ अथवा और भक्ष्य हैं उनके साथ मद्यको सेवन करे तो मनुष्यकी आयुष्य बढे, बल बढे तथा देह पुष्ट होय इस श्लोकमें " स्निग्धैः सदन्नैः " यह जो पद धरा सो स्निग्धका एक उपलक्षणमात्र है अर्थात् जो मद्यसे विपरीत गुण रखते हैं । जैसे तीक्ष्णादि दश गुण हैं उनसे विपरीत होय उसके साथ मद्य पीना चाहिये । सो तीक्ष्णादि दश गुण ग्रंथांतरोंमें लिखे हैं और विशेष देखना होय तो भावप्रकाशमें देख लेवे । इस स्थलमें ग्रन्थविस्तारभयसे हमने त्याग दिये हैं ॥

विधिसे मद्य पीनेके दूसरे गुण ।

**काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ॥ विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संति हिता गुणाः ॥ ५ ॥**

भाषा–मद्यको विधिपूर्वक पीनेसे सुन्दर स्वरूप, मनको संतोष, उत्साह, दूसरेको जीतनेकी सामर्थ्य इत्यादि हितकारक गुण होते हैं । कही हुई विधिसे विरुद्ध

---

१ " शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंशपलद्वयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाचयेत् ॥ प्रदोषेऽष्टपल तद्वन्मात्रामद्ये रसायनम् । आरोग्य धातुसाम्यं च कांतिपुष्टिबलप्रदम् ॥ अनेन विधिना सेव्य मद्यं नित्यमतन्द्रितैः । अन्यैर्बुद्ध्यादयो यावदुल्लसंति निरत्ययाः ॥ मात्रेय विहिता मद्ये पाने रोगाय चापरा ॥ "काल इति । तत्र कालो द्विविधः । नित्यकः आवश्यकश्च । तत्र नित्यकः ऋतुसंबन्धी । यथा ग्रीष्मे शीतमधुरं माध्वीकादि शीते उष्ण तीक्ष्ण गौडिकपिष्टकादि । तथा आवश्यके काले वाते स्निग्धापि एवं वयस्युदाहार्यम् । २ " लघुस्तीक्ष्णो ह्यसूक्ष्माम्लो व्यवायाशुगमेव च । रूक्षं विकाशि विशद मद्ये दश गुणाः स्मृताः ॥ " तथा च सुश्रुते–" मद्य शस्तं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्म विशदमेव च । रूक्षमाशुकरं चैव व्यवाये च विकाशि च ॥ " इति । अत्र अम्लरसत्वं वास्योद्भुतरसत्वेनोक्तम् । यदुक्तमन्यत्र–" सर्वेषाम्लजातीनां मद्यं मूर्ध्नि व्यवस्थितम् । " इति ।

---

[1] मद्यपानानन्तर भक्षणीयद्रव्यविशेषः ।

मद्यपान करनेसे मदात्यय रोग होय है सो मदात्यय तीन प्रकारका है । पूर्वमद, मध्यम और अंत्यमद ॥

पूर्वमदके लक्षण ।

**बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च ॥**
**संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ६ ॥**

भाषा—बुद्धि, स्मरण और प्रीति इनको करे, सुख करे, पान ( पीना ), अन्न, निद्रा और रति इनको वढावे, सुन्दर पाठ और गीत ( गाने ) को वढावे ऐसा प्रथम मद अति रमणीय कहा है । शंका—क्योंजी ! मद तो मनमें विकार उत्पन्न करे है फिर आप इसको रमणीय कैसे कहते हो ? उत्तर—आपने कहा सो ठीक है परंतु दुःखको दूर करनेसे इसको रमणीयता है इसी कारण सुश्रुतने हर्षको मनके विकारोंमें कहा है ॥

द्वितीय मदके लक्षण ।

**अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशांतः ॥**
**आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ७ ॥**

भाषा—मध्यम मदसे मत्तवाले पुरुषकी बुद्धि, स्मरण और वाणी यथार्थ नहीं होय । विरुद्ध चेष्टा करे और बावलेकीसी चेष्टा करे, प्रचंड हो जाय, वारंवार आलकस और निद्रासे पीडित हो जाय ॥

तृतीय मदके लक्षण ।

**गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च पश्येत्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ॥**
**ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतंत्रः ॥ ८ ॥**

भाषा—तीसरे मदसे पुरुष मदके स्वाधीन होकर अगम्या ( गुरुकी स्त्री आदि ) से गमन करे, वडोंका तिरस्कार करे, जो वस्तु खानेके योग्य नही है उसको खाय, संज्ञा जाती रहे और जो गुप्त बात हृदयमें है उनको कहने लगे ॥

चतुर्थ मदके लक्षण ।

**चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः ॥ कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादप्यपरो मृतः ॥ ९ ॥ को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् ॥ बहुदोषमिवारूढः कांतारं स्ववशः कृती ॥ १० ॥**

भाषा—चतुर्थ मदसे मनुष्य मूढ होकर टूटे वृक्षके समान क्रियारहित होय, कार्य ( करने योग्य ) अकार्य ( नहीं करने योग्य ) इनको न समझे, वह पुरुष मरेसेभी

अधिक मरा भया है। कौन ऐसा स्ववश अथवा सुकृती पुरुष ऐसे निंद्यमद (-अमल) का सहनशील होय है किंतु कोई नहीं होय। जैसे सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशु जिस वनमें बहुत हैं ऐसे निर्जन वनमें मार्गमें कौन चतुर मनुष्य जायगा। शंका-चरक, विदेह, वाग्भट आदि आचार्योंने तो चतुर्थमद कहाही नहीं है और सुश्रुतने कहा है। इनमें विरोध क्यों है ? उत्तर-चरकमें जो दूसरे और तीसरेमें अन्तर कहा है सोई सुश्रुतने तृतीयमदको मानकर उसके लक्षण कहे हैं और जो चरकमें तृतीय मदके लक्षण कहे हैं सो सुश्रुतने चतुर्थ मदके लक्षण कहे हैं; ऐसा विरोध नहीं है वास्तवमें तीनही मद हैं। शंका-क्यंजी ! एक मद्यसे ३ प्रकारके मद होय है इसमें क्या कारण है ? उत्तर-मद्य यह अग्निके समान है, जैसे अग्निमें सुवर्ण ( सोना ) तपानेसे उत्तम, मध्यम, अधमकी परीक्षा होय है ऐसेही मद्यभी सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणवाले पुरुषोंकी प्रकृतिसूचक है। अर्थात् सतोगुणवाले पुरुषको प्रथम मद, रजोगुणवाले पुरुषको दूसरा मद, तमोगुणवाले पुरुषको तीसरा मद प्राप्त होय है सो चरकमें लिखा है ॥

विधिहीन मद्य सेवनसे और विकार होते हैं उनको कहते हैं।

निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ॥
आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ ११ ॥

भाषा-जिस पुरुषने अन्नरहित निरंतर मद्यपान नित्य करा होय, वह अत्यंत दुःखदायक विकार ( पानात्ययादिक ) उत्पन्न करे है और शरीरका विनाश करे है ॥

अन्नके साथ मद्य सेवन करा भयाभी क्रुद्धत्वादि कारणोंसे
विकारकर्त्ता होय है सो कहते हैं।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ॥
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १२ ॥
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ॥
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ १३ ॥

भाषा-क्रोधयुक्त, भयसे पीडित, प्यासा, शोकवान्, क्षुधायुक्त, दंड कसरत और भारसे जो क्षीण हो गया होय, मलमूत्र आदि वेगसे पीडित हो, अत्यंत अम्लरस खानेसे जिसका पेट भर रहा होय, अजीर्णमें भोजन करनेवाले पुरुषके, निर्बल पुरुषके, गरमीसे तपायमान ऐसे मनुष्यके मद्य सेवन करनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ॥

---

१ "प्रधानावरमध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदर्शकः। यथाग्निरेव सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥" इति।

उन विकारोंको कहते हैं ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ॥
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १४ ॥

भाषा–पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादिक भयंकर विकार होते हैं । उनके लक्षण कहता हूं ॥

वातमदात्ययके लक्षण ।

हिक्काश्वासशिरःकंपपार्श्वशूलप्रजागरैः ॥
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १५ ॥

भाषा–हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होंय उसको वातप्रधान मदात्यय जानना ॥

पित्तमदात्ययके लक्षण ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ॥
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥

भाषा–प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम ( कुछ कुछ ज्ञान होय ), देहका वर्ण हरा हो इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना ॥

कफमदात्ययके लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥

भाषा–वमन ( रद्द ), अन्नमें अरुचि, खाली रद्द ( ओकारी ), तन्द्रा, देह गीली भारी और शीत लगे इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना ॥

सन्निपातमदात्ययके लक्षण ।

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिंगैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

भाषा–जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातप्रधान मदात्यय जानना ॥

परमदके लक्षण ।

श्लेष्मोच्छ्रयोऽगगुरुता मधुरास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तंद्रि-रारोचकश्च ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चातिभेदः ॥ १९ ॥

भाषा-कफका कोप ( यह नासास्रावादिक जानना ), देहका जड होना, मुखमें मिठास, मलमूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, प्यास, मस्तकमें पीडा और संधियोंमें कुठारीसे तोडनेसरीखी पीडा होय ये परमदके लक्षण जानने ॥

पानाजीर्णके लक्षण ।

**आध्मानमुग्रमथ वोद्गिरणं विदाहः**
**पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥**

भाषा-अत्यंत पेटका फूलना, वमन अथवा डकारका आना, जलन होना ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं ॥

पानविभ्रमके लक्षण ।

**हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकंठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः ॥**
**द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु पानेन विभ्रममुशंत्यखिलेनधीराः२०**

भाषा-हृदय और गात्र इनमें सुई चुमानेकीसी पीडा होय, कफका स्राव होय, कंठसे धूआंसा निकलनेकीसी पीडा, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, शिरमें पीडा, मुख कफसे लिहसासा होय । अनेक प्रकारकी मैरेय पैष्टिक इत्यादिक सुराविकृति और लड्डू पेडा आदि अन्नविकृति इनमें द्वेष होय, इन सर्वलक्षणोंसे इस रोगको पानविभ्रम ऐसा कहते हैं । ये परमदादिक तीनों सन्निपातके अंतर्गत होनेसे चरकने नहीं कहे और पूर्वोक्त मदात्ययके लक्षणोंसे विलक्षण होनेसे सुश्रुतमें उक्त त्रिदोषज मदात्ययको पृथक् कहा है ॥

असाध्य लक्षण ।

**हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तु ॥**
**जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा २१**

भाषा-ऊपरके होठसे नीचेका होठ कुछ लम्बा होय, देहके बाहर अति शीत लगे और भीतर अत्यन्त दाह होय, तेलसे लिप्त सदृश मुख हों; जीभ, होठ, दांत ये काले अथवा नीले हो जांय; नेत्र पीले अथवा रुधिरके समान लाल होंय ऐसा अतिपानसे अर्थात् अतिमद्य पीनेसे नष्ट मनुष्यको वैद्य त्याग देय । चरकमें[1] ध्वंसक और विक्षेपक दो मद्यविकार और कहे हैं ॥

---

१ " विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते । ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ श्लेष्मप्रसेकः कण्ठास्यशोषः सर्वासहिष्णुता । निद्रातन्द्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ हृत्कठरोगसंमोहच्छर्दिरंगरुजा ज्वरः । तृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ " इति ।

उपद्रव कहते हैं ।

**हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः**
**कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥ २२ ॥**

भाषा–हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसवाडोंमें पीडा होय, खांसी, भ्रम ये उपद्रव जिसके होंय उसको वैद्य त्याग दे । परन्तु जय्यट आचार्य कहते हैं कि असाध्य लक्षणसे पृथक् पाठ होनेसे और यह लक्षण होनेसे रोगी कृच्छ्रसाध्य जानना, असाध्य न जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मदात्ययरोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ दाहनिदानम् ।

**त्वचं प्राप्तः समानोष्मा पित्तरक्ताऽभिमूर्छितः ॥**
**दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥**

भाषा–दाहरोग सात प्रकारका है । तिसमे प्रथम मद्यजन्य दाहके लक्षण कहते हैं । मद्यपान करनेसे कुपित भया जो पित्त उस पित्तकी उष्णता पित्तरक्तको वढाय भयंकर दाहरोग उत्पन्न करे । इसमें पित्तके समान औषध करे ॥

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण ।

**कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ॥ समुष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः॥२॥ लोहगंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ ३ ॥**

भाषा–सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यन्त दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपे है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंगसदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होंय तथा मुखसे और देहसे तप्त लोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगोंमें मानो किसीने अग्नि लगाय दीनी ऐसी वेदना होय । पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं । उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये । पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशय दुष्ट होता है और पित्तके दाहमें नहीं होय और सब लक्षण होते हैं ॥

प्यास रोकनेके दाहके लक्षण ।

**तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥**
**स बाह्याभ्यंतरं देहं प्रदहेन्मंदचेतसः ॥**
**संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥ ४ ॥**

भाषा-प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ ये अत्यंत सूखें और जीमको बाहर काढ दे, काँपे ॥

शस्त्रघातक दाहके लक्षण ।

**असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुःसहः ॥ ५ ॥**

भाषा-शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिर उस रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भर जाय तब दाह अत्यन्त दुःसह प्रगट होय ॥

धातुक्षयजन्य दाहके लक्षण ।

**धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥**
**क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ६ ॥**

भाषा-धातुका क्षय होनेसे जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त होय, स्वरभंग और चेष्टाहीन होय और इस दाहसे पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होय ॥

क्षतज दाहके लक्षण ।

**क्षतजोऽनश्नतश्चान्यः शोचतो वाप्यनेकधा ॥**
**तेनांतर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७ ॥**

भाषा-क्षत ( घाव ) के होनेसे जो दाह हो उससे आहार थोडा रह जावे और अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाहकरके आभ्यन्तर दाह होय तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप ( बकवाद ) ये लक्षण होंय ॥

मर्माभिघातज दाहके लक्षण ।

**मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥**

भाषा-मर्मस्थान ( हृदय, शिर, बस्ति ) में चोट लगनेसे जो दाह होय सो सातवां असाध्य अर्थात् और जो छः प्रकारके दाह हैं वे साध्य हैं ॥

**सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥**

भाषा-सब दाहोंमें शीतल देहवाला रोगी त्याज्य है ॥

इति श्रीप० माधवभावार्थबोधिन्यां माथुरीभाषाटीकायां दाहनिदानं समाप्तम् ।

# अथ उन्मादनिदानम् ।

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्यते ॥ १ ॥

भाषा–दोष ( वात, पित्त, कफ ) बढकर अपने २ मार्गको छोड अन्य मार्ग अर्थात् मनोवह धमनियोंमें प्राप्त होकर मनको उन्मत्त करे और यह व्याधि मानसी है अत एव इसको उन्माद ऐसा कहत हैं ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ मानसेन च दुःखेन स पंचविध उच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥ स चापवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

भाषा–अत्यन्त कुपित भये पृथक् २ दोषोसे ३, सन्निपात और मानसिक दुःखसे यह रोग पांच प्रकारका है और विष खानेसे छठा । इनमें दोषानुसार औषध देनी चाहिये । जबतक यह रोग बढे नहीं और जबतक तरुण रहे तबतक इस रोगको मद ऐसा कहते हैं ॥

उन्मादके सामान्य कारण और सम्प्राप्ति ।

विरुद्धदुष्टाऽशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ॥
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ॥
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयंत्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

भाषा–विरुद्ध दुष्ट कहिये जहर मिला अन्न आदि अशुचि चाण्डालादिसे स्पर्श करा ऐसा भोजन, देवता, गुरु, ब्राह्मण इनका तिरस्कार करनेसे, भय और हर्षके होनेसे, मनका बिगडा, सब चेष्टा विपरीत करे अर्थात् टेढा तिरछा चले, बलवान्से वैर करे, बकने लगे इस श्लोकमे पूर्वशब्द करणका है और चकारसे काम क्रोध लोभादिकभी उन्माद रोगके कारण हैं यह जय्यटका मत है ॥

इनमें कहे जो कारणोंसे अल्प ( थोडा ) मल गुण पुरुषके वातादिक दोष कुपित होकर बुद्धिके निवासस्थान ( रहनेके ठिकाने ) को हृदय कहिये मन उसको बिगाड मनके वहनेवाली नसोंमें प्राप्त हो मनुष्यके अंतःकरणको मोहित करे ॥

उन्मादका स्वरूप ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ॥
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य चिह्नम् ॥ ६ ॥

भाषा-बुद्धिमें भ्रम, मनका चञ्चल होना, दृष्टिका सर्वत्र चलना, अधीरजपना ( डरपना ), कुछका कुछ बोलना, हृदय शून्य हो जाय अर्थात् विचारशक्तिका नाश होना ये उन्माद रोगके सामान्य लक्षण हैं ॥

विशेष लक्षण ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चापि निहंति शीघ्रम् ॥७॥
अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि ॥
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्वरूपम् ॥ ८ ॥

भाषा-रूखा, थोडा और शीतल ऐसा अन्न, विरेक इस शब्दसे इस जगह दस्त और वमन जानना, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यन्त बढी जो वायु सो चिन्ता शोकादि करके युक्त होकर हृदय ( मन ) को अत्यन्त दुष्ट कर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करे और हँसनेके कारण विना हँसे, मंद मुसकान करे, नाचे, विना प्रसंगके गीत और बोलना करे, हाथोको सर्वत्र चलावे, रोवे, शरीर रूखा, कृश और लाल हो जाय और आहारका परिपाक भयेपर ज्यादा जोर होय ये वातज उन्मादके लक्षण हैं ॥

पित्तज उन्मादके कारण और लक्षण ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ॥
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥
अमर्षसंरंभविनग्नभावाः संतर्जनाभिद्रवणोष्णरोषाः ॥
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिंगम् १०

भाषा-अधकचा, कडुवा, खट्टा, दाह करनेवाला और गरम ऐसा भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेंद्रिय पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करे है । इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकना, नग्न हो जाय, डरपे, भागने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोध करे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय ये लक्षण पित्तज उन्मादके हैं ॥

कफज उन्मादके कारण और लक्षण।

**सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृत्तः॥**
**बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्संजनयेद्विकारम्॥ ११॥**
**वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारी-विविक्तप्रियसाऽतिनिद्रा॥**
**छर्दिश्च लाला च बलं च भुंक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफाधिके स्यात् १२**

भाषा–मंद भूखमे पेटभर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषका पित्त-युक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करे और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करे। उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यंत आवे, वमन होय, मुखसे लार बहे, भोजन करे पिछाडी इस रोगका जोर हो, नख आदिशब्दसे त्वचा, मूत्र, नेत्रादिक ये सफेद होय। ये लक्षण कफके उन्मादके हैं॥

सन्निपातके उन्मादके लक्षण।

**यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्यात्॥**
**सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृक् विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः॥१३॥**

भाषा–जो उन्माद वातादिक दोषकरके अथवा तीनों दोषोके कारणकरके होय वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है। उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधी विधि वर्जित है। यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है, कारण यह कि असाध्य है॥

शोकज उन्मादके लक्षण।

**चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसं-क्षयाद्वा॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्क-टतरो मनसो विकारः॥ चित्रं ब्रवीति च मनोनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः॥ १४॥**

भाषा–चोरोंने राजाके मनुष्योने अथवा शत्रुओंने, उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय अथवा धन, बंधुके नाश होनेसे, ऐसे पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरु-षके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय वह पुरुष गुप्त बातकोभी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे तथा मूर्ख होजाय॥

विषजन्य उन्मादके लक्षण।

**रक्तेक्षणो हतबलेंद्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥**

भाषा-विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होंय, बल, इन्द्रिय और शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आ जाय और संज्ञा जाती रहे ॥

असाध्य लक्षण।

**अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ॥**
**जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥**

भाषा-जिसका मुख नीचेको होय अथवा ऊपरको होय और जिसका मांस और बल क्षीण हो गया होय तथा जिसकी निद्रा जाती रही हो ऐसा मनुष्य निश्चय इस उन्मादसे नाशको प्राप्त हो ॥

भूतज उन्मादके लक्षण।

**अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टा ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ॥**
**उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥**

भाषा-वाणी, पराक्रम, शक्ति, देहका व्यापार, तत्त्वज्ञान, शिल्पादि ज्ञान अथवा ज्ञान कहिये शास्त्रज्ञान और विज्ञान नाम तदर्थ निश्चय आदिशब्दसे स्मृत्यादिक ये जिसकी मनुष्यकीसी न होंय और जिसका उन्मत्त होनेका काल निश्चय होय ऐसे उन्मादको भूतोन्माद कहते हैं। भूतशब्दसे यहां आगे कहेंगे सो सब देवता जानने ॥

देवग्रहके लक्षण।

**सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगंधो निस्तंद्रिस्त्ववितथसंस्कृतप्रभाषी ॥ तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १८ ॥**

भाषा-सदा संतोषयुक्त रहे, पवित्र रहे, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला ( तेरा कल्याण हो ऐसा वर देय ), ब्राह्मणसे प्रीति राखे, ऐसा मनुष्य देवग्रहपीडित जानना। देवशब्दसे गणमातृकादि ग्राह्य हैं सो विदेहने कहाभी है[1] ॥

---

१ " क्रोधनस्तब्धसर्वांगो लालाफेनाविलाननः। निद्रालुः कम्पता मूको गणमातृभिरार्दितः ॥ " इति।

असुरपीडितके लक्षण।

**संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः॥ संतुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः १९**

भाषा–पसीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्ध मार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसेमी जिसको संतोष न होय और दुष्टबुद्धि ऐसा मनुष्य दैत्यग्रहपीडित जानना॥

गंधर्वग्रहके लक्षण।

**दुष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगंधमाल्यः॥ नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः२०**

भाषा–गंधर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचामें रहनेवाला, अनिंदित आचारका करनेवाला, गान सुगंध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगें वह पुरुष नाचे, हँसे, सुन्दर बोले, थोडा बोले॥

यक्षग्रहके लक्षण।

**ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥ २१॥**

भाषा–यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके नेत्र लाल हों, सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला गंभीर, बुद्धिवान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देऊं ऐसा बोलनेवाला ऐसा होय॥

पितृग्रहके लक्षण।

**प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिंडान्भ्रांतात्मा जलमपि चापसव्यहस्तः॥ मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः॥ २२॥**

भाषा–कुशाके ऊपर प्रेतों (पितरों) को पिंड देय, चित्तमें भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य करके तर्पणभी करे, मांस खानेकी इच्छा होय तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले। (इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है ऐसेही सर्वत्र जानना) यह डल्लनका मत है और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं॥

सर्पग्रहयुक्तके लक्षण ।

**यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव ॥ क्रोधालुर्मधुगुडदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजंगमेन जुष्टः ॥ २३ ॥**

भाषा–जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे अर्थात् छातीके बल चले तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रांत ( होठों ) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहे, सहत, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहे वह सर्पग्रहग्रस्त जानना ॥

राक्षसग्रहपीडितके लक्षण ।

**मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥ क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विट् भवति च राक्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥**

भाषा–जो मनुष्य मांस, रुधिर, नाना प्रकारके मद्य पीनेकी इच्छा करे और निर्लज्ज, अतिनिष्ठुर, अत्यन्त शूर, क्रोधी, बडा बली, रात्रिमें डोलनेवाला, अपवित्र ऐसा होय वह राक्षसकरके ग्रस्त जानना ॥

पिशाचजुष्टके लक्षण ।

**उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंधो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ॥ बह्वाशी विजनवनांतरोपसेवी व्याचेष्टन्भ्रमति रुदत्पिशाचजुष्टः ॥ २५ ॥**

भाषा–जो अपने हाथ ऊपरको करे । " उद्धस्त्र " ऐसाभी पाठ है उस जगह उद्धस्त्र नाम नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बकनेवाला, जिसके देहमें दुर्गंध आवे, अपवित्रता तथा अति चंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदन करता डोलनेवाला ऐसा मनुष्य पिशाचग्रस्त जानना । प्रसंगवशसे ब्रह्मराक्षस और भूतोन्मादके लक्षण ग्रंथान्तरोंसे लिखते हैं ॥

**देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदांगविच्छविः ॥**
**आशु पीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥**

भाषा–देव ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्त्ता, वेद और वेदके अंग ( शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि ) का पढा भया, शीघ्र पीडाका कर्त्ता, हिंसा करे नहीं ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं ॥

भूतोन्मादके लक्षण ।

**महापराक्रमो यस्य दिव्यं ज्ञानं च भाषते ॥**
**उन्मादकालो नैश्चित्यो भूतोन्मादी स उच्यते ॥ २७ ॥**

भाषा—महापराक्रमी, जिसके श्रेष्ठ ज्ञानको कहे और जो उन्मादकालका निश्चय न होय, उसको भूतोन्मादी कहते हैं । अब कहते हैं कि देवादिक ग्रह इस मनुष्यको तीन कार्यके वास्ते ग्रहण करते हैं । हिंसा अर्थात् मारनेके निमित्त और पूजाके निमित्त तथा विहारके निमित्त । इसमें हिंसाके निमित्त ग्रस्त मनुष्य साध्य ( अच्छा ) नहीं होय उसके लक्षण आगे कहते हैं ॥

**स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कंपते च योऽति ॥ यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २८ ॥**

भाषा—नेत्र भयानक हो जांय, शीघ्र चले, मुखमें जो झाग है उसको चाटनेवाला और जिसको निद्रा बहुत आवे तथा गिर पडे, कांपे और जो पर्वत, हाथी अथवा नग नाम वृक्ष, आदिशब्दसे भीत, मन्दिर आदि जानने इनसे गिरकर ग्रहग्रस्त होय वह असाध्य है । तैसेही तेरहवें वर्षमें सर्व देवादि उन्मादी असाध्य जानने । विदेहने विशेष लक्षण कहे हैं सो ग्रन्थान्तरोंसे जान लेने ॥

देवादियोंका आवेशसमय ।

**देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संधयोरपि ॥ गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ २९ ॥ पितृग्रहास्तथा दर्शे पंचम्यामपि चोरगाः ॥ रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशंति हि ॥ ३० ॥**

भाषा—देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह सायंकालमें, अपिशब्दसे पूर्णमासीकोभी प्रवेश करते हैं, गंधर्वग्रह बहुधा अष्टमीको, प्रायशब्दसे संध्याकोभी गंधर्व ग्रह प्रवेश करते हैं, यक्ष ग्रह पडिवाको, पितृग्रह अमावास्याको, सर्पग्रह पंचमीको, अपिशब्दसे अमावास्याकोभी प्रवेश करते हैं, राक्षस रात्रिमें और पिशाच चतुर्दशीको मनुष्यके देहमें प्रवेश करते हैं । तिथि कहनेका यह प्रयोजन है कि जिस २ तिथिको जो जो ग्रह मनुष्यको ग्रस्त करे उसको उसी उसी तिथिमें शांतिके निमित्त बलिदानादिक कराने चाहिये । शंका—क्योंजी ! जब ग्रहग्रस्त मनुष्योंको उन्माद

---

१ " संध्या त्रिनाडीप्रमिताऽर्कबिम्बादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र । " इति । २ " ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः । दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुंजीत चिकित्सकः ॥ " इति

होता है तौ वह ग्रह मनुष्यकी देहमें प्रवेश करते क्यों नहीं दीखते हैं इसवास्ते कहते हैं ॥

**दर्पणादीन्यथा च्छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ॥**
**स्वमणिं भास्करांशुश्च यथा देहं च देहधृक् ॥**
**विशंति न च दृश्यंते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ ३१ ॥**

भाषा–जैसे दर्पणमें मनुष्यका प्रतिबिंब पडे है; आदिशब्द इस जगह प्रकार-वाची है अर्थात् जल, तल आदिमें जैसे छाया पडती है और सरदी, गरमी जैसे मनुष्योंको लगती है अथवा जैसे सूर्यकिरण सूर्यकान्तमणि ( आतसीकाच ) में प्रवेश करते हैं अथवा जैसे जीव देहमें प्रवेश करता है, इसी प्रकार सब ग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं परंतु दीखते नहीं हैं। इस श्लोकके पोषक दृष्टांत जय्यट आचार्यने बहुत दिये हैं परंतु हमने ग्रन्थ बढनेके भयसे नहीं लिखे हैं ॥

इस उन्मादरोगमें सर्वत्र देवशब्दकरके देवताओंसे आचारणवाले देवताओंके अनुचर ( दास ) जानने चाहिये, क्योंकि देवताओंका मनुष्यके अपवित्र देहमें प्रवेश होना असंभव है सो सुश्रुतमें लिखा है ॥

**न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति न वा मनुष्यान्क्वचिदाविशन्ति ॥**
**ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात्ते भूतविद्याविषयादपोह्याः ३२॥**
**तेषां ग्रहाणां परिचारिका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ॥**
**असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तथा विशंति ॥३३**

भाषा–जो देवादिक मनुष्यके साथ मिलते नहीं हैं न वे मनुष्योंकी देहमें प्रवेश करते हैं और प्रवेश करते हैं ऐसे जो वैद्य कहते हैं, वे अज्ञानसे कहते हैं। ऐसा वैद्य भूतविद्यावाला जानकर त्याज्य है । तौ कौन प्रवेश करते हैं इसवास्ते कहते हैं । " तेषामिति " अर्थात् उन देवताओंके परिचारक ( नोकर ) जो करोडों, हजारों, पद्मसंख्याक, रुधिर, वसा, मांसके भोजन करनेवाले, भयंकर, रात्रिमें विचरनेवाले हैं वे प्रवेश करते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां उन्मादरोगनिदान समाप्तम् ।

# अथापस्मारनिदानम् ।

प्रथम सुश्रुतोक्त इस रोगकी निरुक्ति लिखते हैं ।

**स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ॥**
**अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥ १ ॥**

भाषा—स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहते हैं और अपशब्द उसका नाशक है इसीसे स्मृति और अप इन दोनो शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ। इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यह रोग जलादिकके विषे प्रवेश होनेसे प्राणांतकारक है ॥

अपस्मारकी निदानपूर्वक सम्प्राप्ति ।

**चिंताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः ॥**
**कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ २ ॥**

भाषा—चिंता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित भये जो दोष ( वात, पित्त, कफ ) सो हृदयमें स्थित जो मनके वहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण ( ज्ञान ) का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करे है ॥

वाग्भटके मतसे निदान ।

**मिथ्यायोगेंद्रियार्थानां कर्मणामतिसेवनात् ॥ विरुद्धमलिनां कर्मविहारकुपितैर्मलैः ॥ ३ ॥ वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम् ॥ रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां वा रजस्वलाम् ॥ ४ ॥ तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ॥ चेतसोऽभिभवैः पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥ ५ ॥**

भाषा—इन्द्रियोंके अर्थ कहिये विषय और कर्म उनका मिथ्यायोग, अतियोग और अयोगके सेवन करनेसे तथा विरुद्ध और मलिन भोजन और विहारसे कुपित भये जो दोष उनसे तथा मलमूत्रादिवेगोंके धारण करनेवालोंके, अहित और अपवित्र भोजन करनेसे, रजोगुण, तमोगुण मनुष्योंके, रजस्वला स्त्रीगमन करनेसे तथा काम, भय, उद्वेग, क्रोध, शोक इन कारणोंसे; चित्त ( मन ) के बिगडनेसे, मनुष्योंके अपस्माररोग प्रगट होय है । तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण ये इन्द्रियोंके अर्थ हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये इन्द्रियोंके विषय हैं । इनके अतिसेवनसे । उदाहरण दिखाते हैं । जैसे पुरुषका इष्टनाशादि सुनना मिथ्यायोग है । पटहादि बाजोंका सुनना अतियोग है । कुछ न सुनना अयोग है । ऐसेही

अपवित्र आदिको छूना मिथ्यायोग है । अतिशीतल, अति गरम स्नान उबटना आदिका सेवन अतियोग है । किसीको न छूना अयोग है । छोटी वस्तुका देखना मिथ्यायोग है। बडी वस्तुका देखना अतियोग और किसीको न देखना अयोग है । रसोंका अतिसेवन अतियोग है । थोडा सेवन मिथ्यायोग है। असेवन अयोग है । दुर्गंधका सूंघना मिथ्यायोग है । अतितीक्ष्ण गंधका सूंघना अतियोग है । किसीको न सूंघना अयोग है। तहां कायिक, वाचिक, मानासिक तीन प्रकारका कर्म कहा है । तहां कायिक कर्म जैसे कुसमयमें दंड कसरतका करना मिथ्यायोग, बहुत करना अतियोग, कुछ न करना अयोग है। खोटा और झूंठा बोलना वाणीका मिथ्यायोग है, बहुत बोलना अतियोग, चुप हो जाना अयोग है । मानसकर्म जैसे शोकादि चिंतवन मानसिक मिथ्यायोग है, अत्यंत चिंता करना अतियोग और किसीकी चिंता न करना अयोग है। आगे श्लोक सब माधवके हैं ॥

अपस्मारके सामान्य लक्षण ।

**तमःप्रवेशः संरंभो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ॥**
**अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥**

भाषा–अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढे बांके फिरें, दोषोंके बढनेसे ज्ञानका नष्ट होना ये लक्षण जिस रोगमें होंय ऐसा यह भयंकर अपस्मार रोग चार प्रकारका है इसको लौकिकमें मिरगी ऐसा कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ॥**
**निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवंत्यथ ॥ २ ॥**

भाषा–जब अपस्मार होनेवाला होय है तब ये लक्षण होते हैं । हृदय कांपे और शून्य पड जाय, कुछ सूझे नहीं, चिंता, मूर्च्छा, पसीने आवे, ध्यान लग जाय, मूर्च्छा कहिये मनका मोह और प्रमूढता कहिये इन्द्रियोंका मोह होय, निद्रा जाती रहे ॥

वातज अपस्मारके लक्षण ।

**कंपते प्रदशेद्दंतान्फेनोद्वामी श्वसत्यपि ॥**
**पुरुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥**

भाषा–वातके अपस्मारसे रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गिरे और श्वास भरे तथा मनुष्योंका कर्कश, अरुणवर्ण और काला वर्ण दीखे अर्थात् कोई

नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है, इसी प्रकार पित्तसे पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है और कफसे सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा जानना ॥

पित्तकी मृगीके लक्षण।

**पीतफेनांगवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ॥**
**सतृष्णोष्णाऽनलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥**

भाषा–पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, मुख और नेत्र ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे। प्याससुयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगत्को देखे॥

कफकी मृगीके लक्षण।

**शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतहृष्टांगजो गुरुः ॥**
**पश्यञ्छुक्लानि रूपाणि मुच्यते श्लैष्मिकश्चिरात् ॥ ५ ॥**

भाषा–कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होंय, देह शीतल होय तथा देहके रोमांच खडे रहें, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीखें यह अपस्मार ( मिरगी ) रोग देरमें छोडे। इससे यह सूचना करी कि वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है॥

सन्निपातकी मृगीके लक्षण।

**सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ॥**
**अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्याऽनवश्च यः ॥ ६ ॥**

भाषा–जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों वह त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वहभी असाध्य है। तथा पुराना पड गया होय वहभी अपस्मार ( मिरगी ) रोग असाध्य है॥

मिरगीके असाध्य लक्षण।

**प्रतिस्फुरन्तं बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ॥**
**नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥**

भाषा–वारंवार कंपयुक्त होय, क्षीण हो गया हो, भ्रुकुटी ( भौंह ) का चलानेवाला और नेत्र टेढे वांके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं॥

मिरगीरोगकी पाली।

**पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ॥**
**अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथोत्तरम् ॥ ८ ॥**

भाषा–कोपको प्राप्त भये जो दोष वे पंद्रहवें दिन अथवा बारहवें दिन अथवा महीनेभरमें मिरगीरोग प्रगट करे । तिनमें पैत्तिक १५ दिन, वातिक १२ दिन और श्लैष्मिक ३० दिनमें आती है । इस जगह बारहवें दिनके पिछाडी पक्ष कहना ठीक था । फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि अधिक कालकरकेही दोष वेग करते हैं यह कहा । " किंचिदथोत्तरम् " इस पदसे यह सूचना करी है कि जिस जिस दोषका जो जो काल है उससे पहिलेभी दोषोंके तारतम्यसे मिरगीरोग होता है ऐसा जानना । शंका–वेग उत्पन्न करके अपस्मारके प्रगटकर्ता दोष देहमें सदा रहते हैं फिर वे सर्वकालमें वेग क्यों नहीं करते ? द्वादशादि दिनमें क्यों करते हैं ? इस विषयमें दृष्टांतरूप समाधान कहते हैं ॥

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ॥
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ९ ॥

भाषा–जैसे चातुर्मासमें इन्द्र वर्षेभी है परन्तु कोई जव, गेहूं, चना आदि बीज शरदृतुमेंही ऊगते हैं तैसेही सर्व रोगके बीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादिक व्याधिविशेषके निदानादिकका संगम होनेसे उस रोगको प्रगट करते हैं । अथवा इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि बीजके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायकभी हैं परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा ( इच्छा ) करते हैं । अंकुर आनेको कालहीका सहाय चाहिये अर्थात् जिस कालमें जिस अंकुरका बीज आता है वह उसी कालमें आवेगा बीचमें कभी नहीं आवेगा यही न्याय चातुर्थिक ज्वरादिकोंमेंभी जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया-
मपस्माररोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ वातव्याधिनिदानम् ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः ॥ विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादपि ॥ १ ॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टनैः ॥ धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥ वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात् ॥ मर्मबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयाना-

दिसेवनात् ॥ ३ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ॥ करोति विविधान्व्याधीन्सर्वांगैकांगसंश्रयान् ॥ ४ ॥

भाषा—रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्न खानेसे, अतिमैथुनके करनेसे, बहुत जागनेसे, विषम उपचार करनेसे दोष ( कफ, पित्त, मल, मूत्र इत्यादि ) और रुधिर इनके निकलनेसे अर्थात् वमन विरेचनसे, लंघन अर्थात् अखाडे आदिमे कला खेलनेसे, नदी आदिमे तैरनेसे, बहुत, चलनेसे, अति दंड कसरत आदि श्रमके करनेसे, अत्यंत विरुद्ध चेष्टा करनेसे, रस रुधिर आदि धातुओंके क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा कृश होनेसे, मल मूत्रादिकोंका वेग रोकनेसे, आगेसे लकडी आदिकी चोट लगनेसे, उपवास ( व्रत ) के करनेसे आदि ले सब मर्मस्थानोंमेंके लगनेसे, हाथी ऊंट घोडा इत्यादि जल्दी चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे कोपको प्राप्त भई जो बलवान् वायु सो देहमे खाली जो नसें हैं उनमें प्राप्त हो सर्वांग अथवा एक अंगमें व्याप्त होनेवाली ऐसी अनेक प्रकारकी वातव्याधि उत्पन्न करे ॥

पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥
आत्मरूपं तु तद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

भाषा—उस वक्ष्यमाण वातव्याधिके जो अप्रगट लक्षण उसको पूर्वरूप ऐसा कहते हैं । ज्वरादिकोंके सदृश विशिष्ट नहीं है और जो रूप प्रगट होय अर्थात् दोषादि भेदकरके यथार्थ दीखे उसको उस व्याधिका लक्षण जानना । अपानवायुको चंचल होनेसे स्तंभ संकोच कंपादिकका कदाचित् अभाव होय है और लघुता ( शरीरकी उस वायुकरके धातुशोषण करनेसे ) अथवा अपायलघुता कहिये सब वातविकारोंका अपाय कहिये अभाव होय और वातविकारोंकी लघुता कहिये अल्पत्वकरके जो स्थिति है सो निःशेष निवृत्त नहीं होय । अब नाना प्रकारकी व्याधि करे है यह जो कह आये हैं उसको आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

संकोचः पर्वणां स्तंभो भंगोऽस्थ्नां पर्वणामपि ॥ लोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥ खांज्यपांगुल्यकुब्जत्वं शोषोऽगानामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशः स्पंदनं गात्रसुप्तता ॥ ७ ॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुंडनम् ॥ भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मोहश्चायास एव च ॥ ८ ॥ एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

भाषा–संधियोंका संकोच और स्तंभ, हड्डियों और संधियोंमें फूटनेकीसी पीडा, रोमांच, वाहियात बकना, हाथ पैर और मुख इनका जकड जाना, खंजत्व, पांगुरा होना, कुवडापना, अंगोंका सूजना, निद्राका नाश, गर्भका न रहना, शुक्र और रज ( स्त्रीका आर्त्तव ) इनका नाश, कंप, अंगोंमें शून्यता, मस्तक, नाक, मुख, जत्रु और नाड इनका भीतर जाना, अथवा टेढे हो जांय. भेदसदृश पीडा, नोचनेकीसी पीडा, शूल, आक्षेपरोग जो आगे कहेंगे, मोह, श्रम, कुपित भई जो वायु इस प्रकार लक्षण करे है। वह वायु हेतु और स्थान इन भेदोंसे विशिष्ट रोग उत्पन्न करनेवाली होती है। जैसे कफावृत होनेसे मन्यास्तंभरोग करे। यदि पक्वाशयमें वात स्थित होय तौ आंतोंका गूंजना इत्यादि रोग करे है॥

कोष्ठाश्रित वायुके कार्य।

**तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः॥**
**वर्ध्मह्रद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते॥ १०॥**

भाषा–कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध होय, वद्रोग, हृदयरोग, गोला, ववासीर और पसवाडोंमें पीडा इतने रोग उत्पन्न करे॥

सर्वांगकुपित वायुके कार्य।

**सर्वांगकुपिते वाते गात्रस्फुरणजृंभणम्॥**
**वेदनाभिः परीतस्य स्फुटंतीवास्य संधयः॥ ११॥**

भाषा–सब अंगकी वायु कुपित होनेसे अंगोंका फरकना, जंभाई और संधि वेदनायुक्त हों, फूटनेकीसी पीडा होय॥

गुदामे स्थित वायुके कार्य।

**ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः॥**
**जंघोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोफो गुदास्थिते॥ १२॥**

भाषा–वायु गुदामें स्थित होनेसे मल मूत्र और वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी, जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीडा और सूजन ये रोग होते हैं॥

आमाशयस्थित वायुके कार्य।

**रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविषूचिकाः॥**
**कासः कंठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशये स्थिते॥ १३॥**

---

१ इस जगह गुदाशब्दकरके उत्तरगुदा अर्थात् पक्वाशय जानना। गुदा नहीं जानना। क्योंकि गुदामें कहे तो उसको अश्मरी ( पथरी ) कर्तृत्व नहीं हो सके।

भाषा–वायु आमाशयमें स्थित होनेसे पसवाडा, उदर, हृदय और नाभि इनमें पीडा होय, प्यास, डकार और हैजा ( मुख और गुदाके द्वारा अन्नकी प्रवृत्ति ), खांसी, कंठ मुखका सूखना, श्वास ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वाशयस्थ वायुके कार्य ।

**पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ॥**
**मूत्रकृच्छ्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥**

भाषा–वायु पक्वाशयमें होय तौ आंतोंका गूंजना, शूल, आटोप ( गुडगुड शब्द ), मल मूत्र कष्टसे निकले, अफरा, त्रिकस्थानमें पीडा इन लक्षणोंको करे ॥

इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ।

**श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धसमीरणः ॥**

भाषा–कानसे आदि जो और इन्द्रियें हैं उनमें कुपित वायु यदि स्थित होय तो इन्द्रियोंका नाश करे ॥

रसधातुगत वायुके लक्षण ।

**त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ॥**
**आतन्यते सरागा च पर्वरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥**

भाषा–वायु त्वग्गत अर्थात् धातुरूप त्वचामें प्राप्त होनेसे त्वचा रूखी और फटी, शून्य, कर्कश और काली हो जाय और उसमें चमका चले तथा तन जाय, कुछ तांबेके समान लाल रंग हो जाय और हृदयादि मर्मोंमें पीडा होय ॥

रक्तगत वायुके लक्षण ।

**रुजस्तीव्राः ससंतापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ॥**
**गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तंभश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥**

भाषा–वायु रुधिरमिश्रित होनेसे सन्तापयुक्त तीव्र वेदना होय, देहका विवर्ण होय, कृशता, अरुचि और देहमें फोडा तथा भोजन करनेके उपरांत देहका जकड जाना ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगत वायुके लक्षण ।

**गुर्वंगं तुद्यते स्तब्धं दंडमुष्टिहतं यथा ॥**
**सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥**

भाषा–मांस और मेदमें वायुके पहुँचनेसे अंग भारी हो जाय, चोटनेके समान पीडा होय अथवा निश्चल हो जाय अथवा मुक्का मारनेकीसी तथा लकडी मारनेकीसी पीडा होय ॥

मज्जास्थिगत वायुके लक्षण।

**मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः॥**
**अस्वप्नं सततां रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले॥ १८॥**

भाषा-मज्जा और हड्डी इन ठिकानेपर वायुका कोप होनेसे हडफूटनी हो, संधि संधिमें पीडा होय, मांस और बल ये क्षीण हो जांय, निद्रा आवे नहीं और निरंतर पीडा होय। इस जगह सुश्रुतने कुछ विशेष लिखा है॥

शुक्रगत वायुके लक्षण।

**क्षिप्रं मुंचति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा॥**
**विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः॥ १९॥**

भाषा-शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु शुक्रको जलदी पतन करे। और बंधन करे अथवा गर्भको जलदी छोडे और बंधन करे और गर्भका अथवा शुक्रका विकार प्रगट करे॥

शिरागत वायुके लक्षण।

**कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचनपूरणम्॥**
**स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च॥ २०॥**

भाषा-वायुके शिरा ( नाडी ) गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, आभ्यंतरायाम, खल्ली और कुबडापना इन रोगोंको उत्पन्न करे॥

स्नायुगत और संधिगत वायुके लक्षण।

**सर्वांगैकांगरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः॥**
**हंति संधिगतः संधीञ्छूलशोथौ करोति च॥ २१॥**

भाषा-वायु स्नायुगत होनेसे सर्वांग और एकांग रोगोंको करे। संधिगत होनेसे संधिका विश्लेष ( जुदा जुदा होना ) और संधियोंका जकड जाना तथा शूल और सूजन इन रोगोंको प्रगट करे॥

पित्त और कफ इनसे आवृत हुए प्राणादिक वायुके
आधे आधे श्लोकोंमें लक्षण कहते हैं।

**प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते॥ दौर्बल्यं सदनं तंद्रा वैरस्यं च कफावृते॥ २२॥ उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः। अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते॥ २३॥ स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते॥ कफेन संगे**

विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥ अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ॥ अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ २५ ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ स्तंभनो दंडकश्चापि शोथशूलौ कफावृते ॥ २६ ॥

भाषा-प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन और दाह उत्पन्न होय और कफसंयुक्त होनेसे दुर्बलपना, ग्लानि, तंद्रा और मुखमे विरसता ये होंय । उदानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनायास श्रम ये होंय और कफयुक्त होय तौ पसीना नहीं आवे, रोमांच, अग्नि मंद होय और शीत लगे । समानवायु पित्तयुक्त होनेसे पसीना, दाह, गरमी और मूर्च्छा ये होते हैं । पित्तकफयुक्त होनेसे मलमूत्रका रुकना और रोमांच होय । अपानवायु पित्तयुक्त होनेसे कमरके नीचेके भागमे भारीपना और सरदीका लगना । व्यानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, गात्रोंका विक्षेप अर्थात इधर उधरको फेरना और श्रम होय । कफयुक्त होनेसे शरीर लकडीके समान स्तंभ होय, सूजन और शूल होय । इस जगह प्राणादि पंच वायुओंके परस्पर मिलनेसे वीस प्रकारके आवरण चरकोक्त जान लेने और वाग्भटके मतसे आवरण बाईस प्रकारके हैं । हमने ग्रंथके विस्तारभयसे छोड दिये हैं ॥

आक्षेपकके सामान्य लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥
तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥
मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ २७ ॥

भाषा-जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडियोंमे जाकर प्राप्त होय तब उस जगह वह वारंवार संचार करके देहको वारंवार आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करे उस देहको वारंवार चलानेको आक्षेपक रोग कहते हैं ॥

आक्षेपकके अपतंत्र और अपतानक ऐसे दो अवस्थाविशेषको कहते हैं ।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्त्तते ॥ पीडयन्हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयेत् ॥ २८ ॥ धनुर्वन्नामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ॥ स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ २९ ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतंत्रकः ॥ दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कंठेन कूजति ॥ ३० ॥ हृदि

**मुक्ते नर स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥ वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ ३१ ॥**

भाषा–रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वायु वह अपने स्वस्थानको छोड ऊपर जाकर प्राप्त हो और हृदयमें जाकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीडा करे और देहको धनुषके समान नवाय देवे और चले तो मूर्छित कर दे वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय; नेत्र मिच जावें अथवा टेढे हो जांय, कबूतरके समान गूंजे तथा बेहोश होय, इस रोगको अपतंत्रक कहते हैं। दृष्टिका स्तंभन हो जाय, संज्ञा जाती रहे, गलेमें घुरघुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करे तब फिर मोह हो जाय, इस भयंकर रोगको कोई अपतानक ऐसा कहते हैं। अब कहते हैं कि दंडापतानक, अंतरायाम, बहिरायाम और अभिघात इन भेदोंसे आक्षेपकरोग चार प्रकारका है। उनके लक्षण लिखते हैं ॥

दंडापतानकके लक्षण ।

**कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥**
**स दंडवत्स्तंभयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥ ३२ ॥**

भाषा–वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त होय तब सब देहको दंड ( लकडी ) के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्टसाध्य है।

अब अंतरायाम और बहिरायाम इनके साधारण रूपको कहते हैं।

**धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तंभसंज्ञितः ॥**

भाषा–जो वायु धनुषके समान शरीरको बांका कर दे उसको धनुषस्तंभ संज्ञक कहते हैं ॥

अंतरायामके लक्षण ।

**अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥ स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ ३३ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ ३४ ॥ तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ ३५ ॥**

भाषा–पैरकी उंगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहा जो वायु वह वेगवान् होकर जो बडी नसोंके जालको सुखाय बाहर निकाल दे उस मनुष्यके नेत्र स्थिर हो जांय, मेडो रह जाय, पसवाडोंमें पीडा होय, मुखसे

कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नम जाय तब वह बली वायु अंतरायाम रोगको करे ॥

वाह्यायामलक्षण ।

**वाह्यः स्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥**
**तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकटयूरुभंजनम् ॥ ३६ ॥**

भाषा–बाहरकी नसोंमें रहनेवाला जो वात सो बाह्यायाम अर्थात् पीठको बाकी कर दे, उरःस्थल, कमर और जांघोको मोर दे ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य कहते हैं ॥

अब पूर्वोक्त आक्षेपकको पित्तकफका अनुबंध होय है उसको कहते हैं ।

**कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥**
**कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ३७ ॥**

भाषा–कफपित्तयुक्त वायु अथवा केवल वायु आक्षेपक रोगको करे और दूसरा कहिये दंडापतानकादि तीनोंकी अपेक्षा चतुर्थ अभिघातज आक्षेपक रोगको करे । इसके लक्षण " यदा तु धमनीः सर्वाः " इत्यादि पूर्वोक्त सामान्य लक्षणोंसे जानने । इस श्लोकका गदाधरने ऐसा अर्थ करा है कि कफपित्तान्वित इत्यादि निमित्तभेद-करके चार प्रकारका आक्षेपकरोग प्रगट होय । एक कफान्वित वायुसे, दूसरा पित्तान्वित वायुसे, तीसरा केवल वायुसे और चौथा दंडादिक चोट लगनेसे कुपित वायुसे । इस पक्षमें गर्भपात और रुधिरका अतिस्राव जो होय है सो केवल वात-जन्य जानना और उस ठिकाने वारंवार आक्षेपक होता है इसका कारण यह है कि ये सब आक्षेपकके भेद हैं ॥

असाध्यत्वको कहते हैं ।

**गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥**
**अभिघातनिमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥ ३८ ॥**

भाषा–गर्भपातके होनेसे अथवा अति रक्तस्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतानकरोग वह असाध्य है ॥

पक्षाघातके लक्षण ।

**गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूः विशोष्य च ॥ पक्षमन्यतरं हन्ति संधिबंधान्विमोक्षयन् ॥ ३९ ॥ कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ ४० ॥**

भाषा—वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखाकर दहिने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असमर्थ कर दे और संधिके बंधनोंको शिथिल कर दे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अङ्ग हलें चलें नहीं और उसको थोडाभी देखनेका स्पर्श आदिका ज्ञान नहीं रहे इसको एकांगरोग कहते हैं। दूसरे पक्षवध कहते हैं, इसीको पक्षाघात कहते हैं ॥

सर्वांगरोगके लक्षण ।

**सर्वांगरोगं तं केचित्सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥**

भाषा—तद्वत् कहिये "शिरास्नायू विशोष्य" इत्यादि सम्प्राप्तिलक्षण इससे जानने। सर्व शिरा ( नाडो ) में वायु प्राप्त होनेसे उसको सर्वांगरोग कोई कहते हैं। अब साध्यासाध्यके ज्ञानार्थ और दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं।

**दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते ॥ ४१ ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥ साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ४२ ॥ गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्स्रुतौ ॥ पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि ॥ ४३ ॥**

भाषा—पक्षवधकी वायु कफपित्तयुक्त होय तौ दाह, संताप और मूर्च्छा होय। और वही वायु कफयुक्त होय तौ शीत, सूजन, भारीपन ये लक्षण होंय और केवल वायुसे प्रगट पक्षाघात अत्यंत कष्टसाध्य होय है और दोषोंसे संसृष्ट होनेसे साध्य होय है। क्षयसे प्रगट भया पक्षाघात असाध्य होय है। गर्भिणी, बालक, वृद्ध और क्षीण इनके भया तथा रुधिरके स्रावसे प्रगट पक्षाघात पीडारहित होय तौ उसको वैद्य त्याग दे अर्थात् असाध्य जानकर चिकित्सा न करे ॥

अर्दितरोगके लक्षण ।

**उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ हसतो जृंभमाणस्य विषमाच्छयनासनात् ॥ ४४॥ शिरोनासौष्ठचुबुकललाटेक्षणसंधिगः ॥ अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ॥ ४५ ॥ वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यात्प्रवर्त्तते ॥ शिरश्चलति वाक्स्तंभो नेत्रादीनां च वैकृतम् ॥ ४६ ॥ ग्रीवाचुबुकदंतानां तस्मिन्पार्श्वे सवेदना ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥४७॥**

भाषा—ऊंचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे, बहुत हँसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊंचे नीचे स्थानमें सोनेसे, विषमाशन ( भोजन ) के करनेसे कोपको प्राप्त हुई जो वायु मस्तक, नाक होंठ, ठोडी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धियोंमें प्राप्त हो मुखमें पीडा करे अर्थात् आर्दित रोगको उत्पन्न करे उस पुरुषका मुख आधा टेढा हो जाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला जावे नहीं, नेत्र, भ्रकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होय और जिस तरफ आर्दित रोग होय उस तरफ नार, ठोडी और दांत इनमें पीडा होय। व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य है वह इस व्याधिको आर्दितरोग ऐसा कहता है। शंका—क्योंजी ! आर्दितरोगमें और पक्षाघातमें क्या भेद है ? उत्तर—आर्दितसे गर्भमेंभी पीडा होय है, कभी नहीं होय है और पक्षाघातमे सदा पीडा होती है। आर्दितरोग चार प्रकारका है ॥

आर्दितरोगके असाध्य लक्षण।

**क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥**
**न सिद्ध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ४८ ॥**

भाषा—क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगे ऐसे पुरुषके, अत्यंत शुद्ध बोले नहीं ऐसे पुरुषके, आर्दितरोगको प्रगट भये तीन वर्ष व्यतीत हो गये हों अथवा त्रिवर्ष कहिये मुख, नाक और नेत्र इन तीनोंका स्राव होय ऐसा और कंपयुक्त पुरुषका आर्दितरोग साध्य नही होय ॥

अब आक्षेपकसे लेकर आर्दितपर्यंत रोगोंका वेग कहते हैं।

**गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥**

भाषा—आक्षेपकादि सब वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य कहिये पीडा कम होय जैसे मस्तकके ऊपरका भार ( बोझा ) उतारनेसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥

हनुग्रहके लक्षण।

**जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ॥ कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ ४९ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ॥ हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ५० ॥**

---

१ अथवा सब लक्षणयुक्त आर्दितरोग है उससे विपरीत अर्धांगवातके लक्षण जानने। परंतु संस्कृतमें मुखमात्रकोही आर्दितरोगमे लिखा है और अर्धशरीरको अर्धवातकरके लभ्य होनेसे नहीं लिखा सोई माधवने पाठ लिखा है।

भाषा—जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे अथवा किसी प्रकार चोटके लगनेसे, हनुमूल ( कपोल ) के अर्थात् डाढकी जडमें रहे जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचे कर मुखको खुलाही रख दे अथवा मुखको बंद कर दे, उसे हनुग्रहरोग कहते हैं। तब उस मनुष्यको खाना, बोलना कठिनतासे होय॥

मन्यास्तंभके लक्षण।

दिवास्वप्नाशनस्नानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः॥
मन्यास्तंभं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणा युतः॥ ५१॥

भाषा—दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्या नाडी स्तंभन करे इस रोगका मन्यास्तंभन रोग कहते हैं॥

जिह्वास्तंभके लक्षण।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तंभयतेऽनिलः॥
जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता॥ ५२॥

भाषा—वायु वाणीके वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त हो जिह्वाका स्तंभन कर दे उसको जिह्वास्तंभरोग कहते हैं। यह अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे॥

शिराग्रहके लक्षण।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः शिराः॥
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिराग्रहः॥ ५३॥

भाषा—वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाडियोंको रूखी, पीडायुक्त और काली कर दे यह शिराग्रहरोग असाध्य है। शिरोग्रह ऐसाभी पाठ है॥

गृध्रसीके लक्षण।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात्॥
गृध्रसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पंदते मुहुः॥ ५४॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता॥ ५५॥

भाषा—प्रथम स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित कर दे। पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पग इनको

स्तंभित कर दे अर्थात् ये रह जांय। वेदना और तोद कहिये चोटनेकीसी पीडा होय और वारंवार कम्प होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होय है और वातकफसे होय तौ तन्द्रा, भारीपना और अरुचि ये विशेष होय। इस प्रकार गृध्रसीरोग दो प्रकारका है ॥

विश्वाचीके लक्षण।

**तलं प्रत्यंगुलीनां याः कंडरा बाहुपृष्ठतः ॥**
**बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेह प्रोच्यते ॥ ५६ ॥**

भाषा-बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपरले भागपर्यंत प्रत्येक उंगलीके नीचे मोटी नसे उसको दुष्ट कर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारनी इत्यादिक कार्योंका नाशकर्त्ता जो रोग होय उसको विश्वाचीरोग कहते हैं ॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण।

**वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ॥**
**ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५७ ॥**

भाषा-वातरक्तसे जानु ( घेंटू ) इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो उनको क्रोष्टुशीर्ष ऐसा कहते हैं ॥

खंज और पांगुके लक्षण।

**वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा ॥**
**खंजस्तदा भवेज्जंतुः पंगुः सक्थ्नो द्वयोर्वधात् ॥ ५८ ॥**

भाषा-कमरमे रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित कर देय उसको खोडारोग कहते है और दोनों जंघाओंकी नसोंको पकड दोनों पैरोंको स्तंभित कर दे उसको पांगुला कहते हैं ॥

कलायखंजके लक्षण।

**प्रकामं वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति ॥**
**कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥ ५९ ॥**

भाषा-जो पुरुष चलते समय थरथर कांपे और खंज अर्थात एक पैरसेही न मालूम होय। इस रोगमें संधिके बंधन शिथिल होते हैं इस रोगको कलाय-खंज कहते हैं ॥

वातकंटकके लक्षण।

**रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ॥**

**वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम् ॥ ६० ॥**

भाषा—ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित टकनेमें प्राप्त होकर पीडा करे तो इस रोगको वातकंटक ऐसा कहते हैं ॥

पादहर्षके लक्षण ।

**पादयोः कुरुते हर्षं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥**
**विशेषतश्चकवतः पादहर्षं तमादिशेत् ॥ ६१ ॥**

भाषा—जिसके पैर हर्षयुक्त कहिये झनझनाहट पीडायुक्त होंय और अत्यंत सोय जावें उसको पादहर्षरोग कहते हैं । यह कफवातके कोपसे होय हैं ॥

अंसशोष और अपबाहुकके लक्षण ।

**अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसबंधनम् ॥**
**शिराश्चाकुंच्य तत्रस्थो जनयेदपबाहुकम् ॥ ६२ ॥**

भाषा—कंधेमें रहा जो वायु सो कुपित होकर उसके बंधनको सुखाय दे तब अंसशोषरोग प्रगट होय और कंधेमें रहा जो वायु सो नसोंको संकोच करके अपबाहुकरोग प्रगट करे ॥

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण ।

**आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥**
**नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिम्मिणगद्गदान् ॥ ६३ ॥**

भाषा—कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्यका वचन क्रियारहित, मूक, मिम्मिण और गद्गद ऐसा कर दे । मूक कहिये जिससे बोला न जाय, मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोले और गद्गद बोलते समय बीचके पद और व्यंजनोंको न बोले और मंद बोले इन रोगोंके कारण सदृश होकर रोगोंके भिन्न भिन्न प्रकार होते हैं । वे दोषोंके उत्कर्षकरके अथवा प्रारब्धवशसे होते हैं ऐसा जानना ॥

तूनीरोगके लक्षण ।

**अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥**
**भिन्दन्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥ ६४ ॥**

भाषा—पक्वाशय और मूत्राशयसे उठी जो पीडा सो नीचे जाकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीडा करे उसको तूनीरोग कहते हैं ॥

प्रतूनीके लक्षण ।

**गुदोपस्थोत्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधावति ॥**
**वेगैः पक्वाशयं याति प्रतूनी चेह सोच्यते ॥ ६५ ॥**

भाषा-गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा उलटी ऊपर जाकर प्राप्त हो और जोरसे पक्वाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे उसको प्रतूनी कहते हैं ॥

आध्मानरोगके लक्षण ।

**साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरं भृशम् ॥**
**आध्मानमिति जानीयाद् घोरं वातनिरोधजम् ॥ ६६ ॥**

भाषा-गुडगुड शब्दयुक्त अत्यंत पीडायुक्त ऐसा उदर ( पक्वाशय ) अत्यंत फूले अर्थात् बादीसे भरकर चामकी थैलीके समान हो जाय इस भयंकर रोगको आध्मानरोग कहते हैं । यह वातके रुकनेसे होता है ॥

प्रत्याध्मानके लक्षण ।

**विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥**
**प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥ ६७ ॥**

भाषा-और वही आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तौ उसको प्रत्याध्मान कहते हैं । इसमें पसवाडे और हृदय इनमें पीडा नहीं होय और वायुकफकरके व्याकुल हो ॥

वाताष्ठीलाके लक्षण ।

**नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ॥**
**अष्ठीलावद् घनो ग्रंथिरूर्ध्वमप्युत उन्नतः ॥**
**वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ ६८ ॥**

भाषा-नाभीके नीचे उत्पन्न भई और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला ( गोल पाषाण ) के समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आडी कुछ ऊंची होय और वहिर्मार्ग कहिये अधोवायु मल मूत्र इनका अवरोध कहिये ( रुकना ) हो ऐसी गांठको वाताष्ठीला कहते हैं ॥

---

१ " अमातुरेण पानीय पीत्वा वेगविधारणम् । धावतो वा पिबेत्तोय भुंजतो वा दिवाहि च ॥ तथा पयोऽम्बुपानाद्वा दुर्जरः पललेन वा । साष्ठीला नाम विख्याता गुर्वी कुक्षिश्रितापि वा ॥ " इति आत्रेयः ।

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण।

**एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥**
**प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ६९ ॥**

भाषा—वाताष्ठीला अत्यंतपीडायुक्त वात मूत्र मलके रोध करनेवाली और जा तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥

मूत्रावरोधके लक्षण।

**मारुते विगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्त्तते ॥**
**विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवंति हि ॥ ७० ॥**

भाषा—बस्ति ( मूत्रस्थान ) में वायु अनुलोमगतिसे गमन करे तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे ऐसे प्रतिलोमसे गमन करे तौ अनेक प्रकारके पथरी मूत्रकृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होंय ॥

कंपवायुके लक्षण।

**सर्वांगकंपः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ७१ ॥**

भाषा—सब अंगोंको और मस्तकको जो कंपावे उस वायुको वेपथु ( कंप ) वायु कहते हैं ॥

खल्लीके लक्षण।

**खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥**

भाषा—और जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली ( मूलामना ) रोग कहते हैं ॥

ऊर्ध्ववातके लक्षण टीकाकारने लिखे हैं।

**अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च ॥**
**करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातं प्रचक्षते ॥ ७२ ॥**

भाषा—कफवातकरके पीडित नीचेकी वायु डकार बहुत लावे उस वातको ऊर्ध्व वात कहते हैं। परंतु टोडरानंदने कुछ विलक्षण लिखा है ॥

यथा।

**भुक्तेऽप्यभुक्ते सुप्ते वा यस्योद्गारः प्रजायते ॥**
**सततं घोषवांश्चाति ऊर्ध्ववातं तमादिशेत् ॥ ७३ ॥**

भाषा—भोजन करनेपर अथवा भोजनके पहिले अथवा सोनेके समय डकार निरन्तर शब्दवान् आवे उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं ॥

प्रलापके लक्षण ।

**स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धनिरर्थकम् ॥**
**वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः ॥ ७४ ॥**

भाषा-अपने हेतुओंसे कुपित भया जो वात सो असंबद्ध ( अर्थरहित ) वाणी, बोले अर्थात् बकवाद करे अकवा बडबड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ॥

रसाज्ञानके लक्षण ।

**भुंजानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीन्रसान् ॥**
**रसज्ञो यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते ॥ ७५ ॥**

भाषा-जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर ( मीठा ) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं ॥

अनुक्त वातरोगसंहारार्थ कहते हैं ॥

**स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान्विनिर्दिशेत् ॥**
**सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ ७६ ॥**

भाषा-स्थान और नाम इनके अनुरूप कहिये तुल्य ऐसे लक्षणोंसे शेष वात-व्याधि जाननी । स्थानानुरूप कहिये जैसे कुक्षिशूल, नखभेद इत्यादिक । नामानु-रूप कहिये जैसे शूलके कहनेसे कीलनिखातवत् पीडा जाननी । उसी प्रकार तोदभे-दादिक करकेभी पीडा विशेष जाननी चाहिये और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे द्विदोषज व्याधि जाननी चाहिये ॥

साध्यासाध्यविचार ।

**हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ ७७ ॥**
**कालेन महता वाता यत्नात्सिध्यंति वा न वा ॥**
**नवान्बलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ७८ ॥**

भाषा-हनुस्तंभ, आर्दित, आक्षेप, पक्षाघात, अपतानक ये वातव्याधि बहुत दिनमें बडे परिश्रमसे और यत्नसे साध्य होती हैं । अथवा कभी साध्य नहीं होय परंतु बलवान् पुरुषके ये वातव्याधि नई प्रगट भई हो और उपद्रवरहित होय तौ उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातव्याधिके उपद्रव ।

**विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ॥**
**क्षीणमांसबलं वाता घ्नंति पक्षवधादयः ॥ ७९ ॥**

भाषा-विसर्परोग, दाह, शूल, मलमूत्रका निरोध, मूर्च्छा, अरुचि, मंदाग्नि इन लक्षणयुक्त जो होय और बल क्षीण हो गया होय ऐसे पुरुषोंको पक्षवधादिक विकार मारक अर्थात् प्राणके हरणकर्त्ता होते हैं॥

असाध्य लक्षण।

**शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कंपाध्माननिपीडितम्॥**
**रुजार्तिमंतं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत्॥ ८०॥**

भाषा-सूजनवाला, जिसकी त्वचा सोई गई होय अर्थात् जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी टूट गई होय, कंप और अफरा इनसे अत्यन्त पीडित होय, रुजा और आर्ति कहिये शूलयुक्त ऐसे मनुष्यका यह वातव्याधिरोग नाश करता है॥

अब पांच प्रकारके प्रकृतिस्थ वायुके लक्षण और कार्य कहते हैं।

**अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः॥**
**वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम्॥ ८१॥**

भाषा-जिस पुरुषकी वायु अव्याहतगति और अपने आश्रयसे रहनेवाली और प्रकृतिस्थित कहिये न वृद्ध न क्षीण होय, वह पुरुष निरोगी होकर "अधिकं समाः शतं" कहिये एक सौ वीस वर्ष और पांच दिन पर्यन्त जीवे॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां वातव्याधिरोगनिदानं समाप्तम्।

# अथ वातरक्तनिदानम्।

शंका-क्योंजी! सुश्रुतमें तो वातव्याधिअध्यायमेंही वातरक्त कहा है फिर माधवने पृथक् क्यों कहा? उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु क्रियाविशेषज्ञापनार्थ माधवने अलग लिखा है और इसी रीतिसे चरकमेंभी वातव्याधिअध्यायके पीछे वातरक्ताध्याय कहा है॥

**लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः॥ क्लिन्नशुष्कांबुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः॥ १॥ कुलित्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः॥ दध्यारनालसौवीरसूक्ततक्रसुरासवैः॥२॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः॥ प्रायशः सुकुमाराणां**

मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ स्थूलानां सुखिनां चाथ वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ३ ॥

भाषा–नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे; सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके माससे; पिण्याक ( खर ), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव ( सेम ), शाक ( तरकारी ), पलल ( तिलकी चटनी ), ईख, दही, कांजी, सौवीर मद्य, सूक्त ( सिरका आदि ), छाछ, दारू, आसव ( मद्यविशेष ), विरुद्ध ( जैसे दूध, मछली ), अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेषकरके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय तथा सूखा होय ऐसे मनुष्योंके वातरक्तरोग होता है ॥

वातरक्तकी सम्प्राप्ति ।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ॥ ४ ॥
कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च स्रस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु ॥
तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥

भाषा–हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे ( यह वायुके बढनेका और विशेषकरके रुधिरके उतरनेका कारण है ); विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके ( इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है ), गरमागरम अन्नके खानेवाले ऐसे पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमे वायु प्रबल है । इसीसे इस रोगको वातरक्त ऐसा कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् ॥
सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघो-
रुकट्यंसहस्तपादांगसंधिषु ॥ निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं
सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कंडूः संधिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यति
चासकृत् ॥ वैवर्ण्यं मंडलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

भाषा–पसीना बहुत आवे अथवा नहीं आवे, शरीर काला हो जाय, शरीरमें स्पर्शका ज्ञान जाता रहे और थोडीसी चोट लगनेसे पीडा अधिक होय, संधि ढीली हो जांय, आलस्य आवे, ग्लानि हो, शरीरमें फुंसी उठें, घोंटू, जंघा, ऊरु, कमर, कंधा, हाथ, पैर, सन्धि और अंगोंमें सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, स्फुरण

( फरकना ), तोडनेकीसी पीडा, भारीपना, बधिरता ये लक्षण होते हैं । और संधियोंमें खुजली चले और शूल होकर वारंवार नाश हो जाय, शरीरका विवर्ण हो जाय, रुधिरके चकत्ता देहमें पड जांय ये वातरक्तके पूर्वरूप होते हैं ॥

अब वातरक्तको अन्य दोषोंका संसर्ग होनेसे उसके लक्षण न्यारे न्यारे लिखते हैं ।

**वाताधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ॥ शोथश्च रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ९॥ धमन्यंगुलिसंधीनां संकोचोंऽगग्रहोऽतिरुक् ॥ शीतद्वेषानुपशयस्तंभवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥**

भाषा-वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं । सूजन, रूखापना, नीलापना अथवा श्यामवर्णता एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें ह्रास ( कम हो ), धमनी और अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच होय, शरीर जकडबंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ॥

रक्ताधिकके लक्षण ।

**रक्ते शोफोऽतिरुक्क्लेदस्ताम्रश्चिमचिमायते ॥**
**स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कंडूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥**

भाषा-रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा और उसमेंसे तामेके रंगका क्लेद वहे । उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शांति न हो उससे खुजली और पानी निकले ॥

पित्ताधिकके लक्षण ।

**पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट् ॥**
**स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोफः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥**

भाषा-पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्रियोंको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना. प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीले फोडे, अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते हैं ॥

कफाधिकके लक्षण ।

**कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ॥**
**कंडूर्मन्दा च रुग्द्वंद्वे सर्वलिङ्गं च संकरात् ॥ १३ ॥**

भाषा-कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य ( गीले कपडेसे आच्छादितसमान )

भारीपना, शून्यता, चिकनापना, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा ये लक्षण होते हैं ॥

दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण और तीन दोषोंके वातरक्तमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं। पैरोंमें वातरक्त हुआ होय उसकी अपेक्षा करनेसे हाथोंमें होय है उसको कहते हैं।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

भाषा–वह वातरक्त पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् हाथोंमेंभी होय है सो आखु ( मूसे ) के विषसदृश सर्वदेहमें मंद मंद फैला जाय । यह वातरक्त चरकने दो प्रकारका कहा है । एक उत्तान, दूसरा गंभीर । त्वचा और मांस इनमें होय सो उत्तान और गंभीर इसकी अपेक्षा भीतरी होय है ॥

असाध्य लक्षण।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्तुतं च यत् ॥
उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १५ ॥

भाषा–आजानु ( जंघाके नीचेके भाग ) पर्यन्त गया भया वातरक्त असाध्य है। जिसकी त्वचा फट गई होय, चिर गया होय और जो स्रावयुक्त होय ऐसा वातरक्त अप्राण मांसक्षयादि उपद्रवयुक्त होय। आदिशब्दसे जो आगे श्रम, अरोचक श्वास इत्यादिक कहेंगे वेभी लक्षण होंय सोभी असाध्य है । वातरक्त प्रगट भये वर्ष दिन व्यतीत हो गया होय तो याप्य होता है। वर्षदिनके पहिले साध्य होता है परन्तु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होंय तौ साध्य है।

उपद्रव।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ १६ ॥ संमूर्च्छाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः ॥ १७ ॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत् ॥ १८ ॥

भाषा–निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, मस्तकका जकडना, मूर्च्छा अत्यन्त पीडा, प्यास, ज्वर, मोह, कंप, हिचकी, पांगुरापना, विसर्परोग, पकना, नोचनेकीसी पीडा, भ्रम, अनायासश्रम, उंगली टेढी हो जांय, फोडा, दाह, मर्म-

स्थानोंमें पीडा, अर्बुद ( गांठ ) हो इन उपद्रवयुक्त वातरक्तवाला रोगी असाध्य है। अथवा एक मोहयुक्तही होय तौभी असाध्य जानना ॥

साध्यासाध्य विचार ।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ॥
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १९ ॥

भाषा–जिस वातरक्तमें सब उपद्रव होय नहीं वह याप्य है और निरुपद्रव साध्य है और जो एक दोषका होय वह साध्य है और द्विदोषज याप्य और त्रिदोषज तथा उपद्रवयुक्त होय तौ वातरक्त असाध्य है। यह श्लोक क्षेपक है माधवका नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां वातरक्तनिदानं समाप्तम् ।

# अथ ऊरुस्तंभनिदानम् ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ॥ जीर्णाजीर्णातपायाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥ सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसंचितम् ॥ अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च ॥ तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ॥ ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ॥ तमूरुस्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

भाषा–शीतल, गरम, पतले, शुष्क, भारी, चिकने ऐसे परस्पर विरुद्ध भोजनसे, जीर्ण, अजीर्ण, उसी प्रकार दंड कसरतके करनेसे, पित्तके क्षोभसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागना इन कारणोंसे कफ मेदयुक्त अत्यन्त संचित भया आमयुक्त वात इतर दोषोंको अर्थात् पित्तको आच्छादित कर ऊरुमें आयकर प्राप्त होय और ऊरुके हाडोंको आर्द्रकफसे परिपूर्ण करे तब उनके ऊरु स्तंभित हों ( जकड

जांय ) और शीतल तथा निर्जीव हो जांय और दूसरे पुरुषके ऊरुके समान उठनेके चलना इस विषयमें असमर्थ होंय और भारी, अत्यन्त पीडायुक्त होंय, चिंता, अंगोंका तोडना, आर्द्रता ( गीला ), तन्द्रा, वमन, अरुचि और ज्वरसहित मनुष्यके दोनों ऊरु जकड जांय, वडे कष्टसे चले और शून्यता होय इस रोगको ऊरुस्तंभ ऐसा कहते हैं और कोई आढ्यवात कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ॥**
**लोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जंघोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥**

भाषा-निद्रा बहुत आवे, अत्यन्त चिंता, मंदता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरु इनमें पीडा होय ये ऊरुस्तंभके पूर्वरूप होते हैं ॥

ऊरुस्तंभके लक्षण ।

**वातशंकिभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः ॥ पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्दाहश्च वेदना ॥ पदं च व्यथतेऽत्यर्थं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ ८ ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ॥ अन्यस्येव हि संभग्ना ऊरू पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥**

भाषा-पैरोंका सोना संकोच होना इत्यादिक वातरोगके समान चिह्न मिलनेसे उस मनुष्यको वातरोगकी शंका होय । तब वह मनुष्य तैलादिक स्नेहन चिकित्सा करे तो उसके दूना रोग बढे, पैरोंमें पीडा होय तथा पैर सोय जावें, बडे कष्टसे पैर उठाया और धरा जाय, जंघा और ऊरु इनमें अधिक पीडा होय और निरंतर दाह तथा वेदना होय, पैरोंमें व्यथा होय, शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न हो तथा पैरके उठानेमें रगडनेमें अथवा चलनेमें अथवा हलनेमें असमर्थ होय, पैर और ऊरु टूटेसे तथा अन्य मनुष्यकेसे मालूम होय ये लक्षण ऊरुस्तंभके हैं । व्याधिके स्वभावसे यह ऊरुस्तंभ त्रिदोषका एकही है । वातादि भेदोंसे अनेक प्रकारका नहीं है ॥

असाध्यलक्षण ।

**यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ॥**
**ऊरुस्तंभस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥**

भाषा-जिस समय पुरुष दाह, शूल और तोद ( नोचनेकीसी पीडा ) इनसे

पीडित होकर कंपयुक्त होय उस समय वह ऊरुस्तंभरोग उसका नाश करे है और ये लक्षण न होंय और रोग नया होय तौ यह साध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां ऊरुस्तंभनिदानं समाप्तम् ।

# अथामवातनिदानम् ।

**विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥ १ ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ॥ तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ॥ स्रोतांस्यभिस्यंदयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसंधिप्रवेशकौ ॥ स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥४॥**

भाषा—विरुद्ध आहार ( क्षीर मत्स्यादि ) और विरुद्ध विहार करनेवाले मनुष्यके मंदाग्निवालेके, जो दंड कसरत न करे और चिकना अन्न खाकर दंड कसरत करनेवाले ऐसे पुरुषके आमवायुसे प्रेरित होकर कफके आमाशयादि स्थानके प्रति धायकर प्राप्त होय और उस कफसे अत्यन्त दूषित होकर वही आम धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर भीतर वह अन्नका रस ( आम ) वात और कफपित्तसे दूषित होकरके छिद्रोंमें भर जाय वह अनेक प्रकारके रंगका अतिगाढा होता है । पीछे ये वात कफ एकही कालमें कुपित होकर त्रिकसंधियोंमें जाकर प्रवेश करें तब देह जकडीसी हो जाय, इस रोगको आमवात ऐसा कहते हैं ॥

आमवातके सामान्य लक्षण ।

**अङ्गमर्दोऽरुचितृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ॥ अपाकः शून्यतांगानामामवातः स उच्यते ॥ ५ ॥**

भाषा—अंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलकस, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ॥

---

१ " अविपक्वरस पृक्तं दुर्गंध बहु पिच्छलम् । सरणं सर्वमात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥ अविपक्वरसं केचित्केचित्तं मलसञ्चयम् । प्रथमं दोषदुष्टिं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ " इति ।

अब आमवात अत्यंत बढ गया होय उसके लक्षण कहते हैं।

**स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत्॥ हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसंधिषु॥ ६॥ करोति स रुजं शोथं यत्र दोषैः प्रपद्यते॥ स देशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः॥ ७॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम्॥ उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम्॥ ८॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम्॥ तृट्छर्दिभ्रममूर्छांश्च हृद्ग्रहं विड्विबंधताम्॥ ९॥ जाड्यांत्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान्॥ १०॥**

भाषा-यह आमवात जिस समय बढे उस समय सब रोगोंमें कष्टकर्त्ता होता है अर्थात् सब रोगोंसे बढकर कष्टदायक है। हाथ, पैर, मस्तक, घोंटू, त्रिकस्थान, जानु, जंघा इनकी सन्धियोंमें पीडायुक्त सूजन करे और जिस २ ठिकाने आम जाय उसी उसी ठिकाने वीछूके डंक मारनेकीसी पीडा करे। यह रोग मंदाग्नि, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, देह भारी, उत्साहका नाश, मुखमें विरसता, दाह, बहुत मूत्रका उतारना, कूखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवे, रातिमें जागे, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका गूंजना अफरा तथा अत्यंत उपद्रव कहिये वातव्याधिमें कहे कलायखंजादिकोंको करे॥

विशेष लक्षण।

**पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम्॥**
**स्तैमित्यं गुरु कंडू च कफजुष्टं तमादिशेत्॥ ११॥**

भाषा-पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होय है। वादीके आमवातमें शूल होय है। कफसम्बन्धी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपना तथा खुजली चले है॥

साध्यासाध्य विचार।

**एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते॥**
**सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः॥ १२॥**

भाषा-एक दोषका आमवातरोग साध्य है, दो दोषोंका याप्य है और सर्व देहमें विचरनेवाली सूजन अथवा त्रिदोषसे प्रगट आमवातरोग कष्टसाध्य जानना॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां आमवातनिदानं समाप्तम्।

# अथ शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवन प्रभुः ॥ १ ॥

भाषा-वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारका, एक सन्निपातसे, एक आमसे और तीन द्वंद्वज ऐसे सब मिलकर आठ प्रकारका शूलरोग है। इन सब शूलोंमें वादीका शूल प्रबल है। ज्वरके समान शूलरोगकी प्रथम उत्पत्ति हारीतमें कही है सो इस प्रकार है। कामदेवके नाश करनेके अर्थ शिवने क्रोधकरके त्रिशूलको फेंका उस त्रिशूलको अपने सन्मुख आता हुआ देख कामदेव भयभीत होकर विष्णुभगवान्के देहमें प्रवेश कर गया। तदनंतर वह त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसे मूर्च्छित होकर गिरा तो पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध भया। तबसे वह शूल पंचभूतात्मक देहधारी मनुष्योंको पीडा करने लगा। इस प्रकार इसकी उत्पत्ति है। शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न भया तथा शूलके घावके समान पीडा करे है इसीसे इनको शूल ऐसा कहते हैं॥

वातशूलके कारण और लक्षण।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ॥
कलायमुद्गाढकिकोद्रुदोषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥
काषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ॥
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ ३ ॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ॥
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तंभनतोदभेदैः ॥
सस्वेदनाभ्यंजनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

भाषा-दंड कसरत, बहुत चलना, अति मैथुन, अत्यत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मूंगा, अरहर, कोदों, अत्यन्त रूखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), लकडी आदिके लगनेसे. कषैली कडवी, भीजा अन्न जिसमें अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि, सूखा मांस, सूखा शाक

१ " अनंगनाशायहरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च । तमापतंतं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितश्च शूलः । स पंचभूतानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥ " इति ।

( कचरिया आदि ) इनका सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोगनेसे, शोकसे, उपवास ( व्रत ) के करनेसे, अत्यन्त हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भया जो वात सो बढकर हृदय, पसवाडा, पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थानमें शूलको करे और वह भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल अत्यन्त कोप करे और वारंवार कोप होय, मलमूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं। तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है॥

पित्तशूलके कारण और लक्षण।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः॥
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः॥ ६॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम्॥
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम्॥ ७॥
मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च॥
शीते तु शीतैः समुपैति शांतिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च॥ ८॥

भाषा—यवक्षार आदि खार, मरिच आदि तीखी और गरम विदाहकारक बांस और करील आदि, तेल, सिंबी, खल, कुलथीके यूषसे कडुआ, खट्टा, सौवीर ( मद्यविशेष), सुराविकार ( कांजी इत्यादिक ) से क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे। वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा इनको करे और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे। दुपहरके समय, मध्यरात्रिमें, अन्नके विदाहकालमें, शरत्कालमें शूल अधिक होय। शीतकालमें, शीतल पदार्थसे और अत्यन्त मधुर ( मीठा ) शीतल अन्नसे यह शूल शात होय॥

कफशूलके कारण और लक्षण।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुली-
भिः॥ अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य
करोति शूलम्॥ ९॥ हृल्लासकासंसदनारुचिसंप्रसेकैरामाशये
स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽति-
मात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च॥ १०॥

भाषा-जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस, दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पीठा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी, कचौडी आदि और कफकारक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे। उसमें सूखी रद, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो ये लक्षण होय। भोजन करते समय पीडा होय। सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें, वसंतकालमें शूल बहुत होय॥

### आमशूलके लक्षण।

**आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः॥**
**कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति॥ ११॥**

भाषा-पेटमें गुडगुडाहट होय, डबकियोंका आना, रद, देह भारी, मंदता, अफरा, मुखसे कफका स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूललक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं॥

### द्वंद्वज शूलोंके लक्षण।

**बस्तौ हृत्कंठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः॥ कुक्षौ हृन्नाभिपार्श्वेषु स शूलः कफपैत्तिकः॥ १२॥ दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः॥ एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः॥ सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः॥ १३॥**

भाषा-बस्ति ( मूत्रस्थान ), हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय वह कफवातिक जानना। कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें कफपित्तका शूल होय है। दाह, ज्वर करनेवाला ऐसा भयंकर शूल होय वह वातपित्तका जानना। एक दोषका शूलरोग साध्य है, दो दोषोंका कृच्छ्रसाध्य और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत उपद्रवयुक्त होय वह शूल असाध्य जानना॥

### ग्रन्थांतरोक्त शूलके स्थान।

**वातात्मकं बस्तिगतं वदंति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम्॥**
**हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात्॥ १॥**

### शूलके उपद्रव।

**वेदना च तृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची॥**
**कासश्वासौ च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः॥ २॥**

परिणामशूलनिदान

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तथा ॥
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥ १४ ॥
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥ १५ ॥

भाषा-अपने रौक्षादि कारणोंसे वायु कुपित होकर कफपित्तके समीप जाय उसको आवृत कर बली होकर शूलको उत्पन्न करे, आहार पचनेके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं। उसके लक्षण संक्षेपसे कहता हूं ॥

वातिक परिणामशूलके लक्षण।

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबंधारतिवेपनैः ॥
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ १६ ॥

भाषा-पेटका फूलना तथा पेटमें गुडगुडशब्द, मलमूत्रका अवरोध, अरति (मनका न लगना), कंप ये लक्षण हों और चिकने, गरम पदार्थसे शांत होय ऐसे शूलको वातिक कहते हैं ॥

पैत्तिक परिणामशूलके लक्षण।

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् ॥
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद् बुधः ॥ १७ ॥

भाषा-प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना ये लक्षण होंय। तीखा, खट्टा, नोनका ऐसे पदार्थ खानेसे बढनेवाला और शीतपदार्थके सेवनसे शांत होय ऐसा शूल पित्तका जानना ॥

श्लैष्मिक परिणामशूलके लक्षण।

छर्दिहृल्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसंततिः ॥
कटुतिक्तोपशांतं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ १८ ॥

भाषा-वमन, अफरा और संमोह ( इन्द्रिय और मनको मोह ) ये लक्षण जिसमें बहुत होंय, पीडा थोडी होय, शूल बहुत दिन रहे, कडुवे और तीखे पदार्थसे शांत होय उस शूलको कफात्मक जानना ॥

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण।

संसृष्टलक्षणं यच्च द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ॥ १९ ॥

भाषा–जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिले हों उसको द्वंद्वज कहते हैं और तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज जानना । मांस, बल और अग्नि ये जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ॥

अन्नके उपद्रवसे प्रगट शूलके लक्षण ।

**जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ॥ पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥ न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २० ॥**

भाषा–अन्न पच गया होय अथवा पच रहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा शूल प्रगट होय वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं । यह शूल त्रिदोष विकृतिसे एक प्रकारका है परन्तु असाध्य नहीं है । क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शूलनिदानं समाप्तम् ।

## अथोदावर्तनिदानम् ।

उदावर्तके लक्षण ।

**वातविण्मूत्रजृंभास्रक्षवोद्गारवमींद्रियैः ॥**
**क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसंभवः ॥ १ ॥**

भाषा–अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जंभाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, भूख, प्यास, श्वास और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है । तेरहका नियम करनेका यह प्रयोजन है कि क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होय । क्योंकि इनके रोकनेमें तो स्वस्थता प्राप्त होती है । सब उदावर्त्तोंमें मुख्य कारण वायु है । उदावर्त्तकी निरुक्ति इस प्रकार है । "उद्धूतेन वेगविधारणेन आवृत्तस्य वायोरावर्त्तनमुदावर्त्तः ।" ॥

तेरह उदावर्त्तोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं ।

**वातमूत्रपुरीषाणां संगाध्मानं क्लमो रुजः ॥**
**जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥**

भाषा–अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द हो जांय, पेट फूल

जावे, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय तथा और वातकृत ( तोद शूलादि ) पीडा होय ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ॥
पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

भाषा–मलका वेग रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवे अथवा मल मुखके द्वारा निकले ॥

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥
विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिंगं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

भाषा–मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति ( मूत्राशय ) और शिश्न इन्द्रिय इनमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तककी पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय ॥

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जृंभोपरोधात्पवनात्मकाः स्युः ॥
तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवंति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

भाषा–आती हुई जंभाईके रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका और वातजन्य विकार मस्तकमें होय, उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुख-रोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं ॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि ॥
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवंति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

भाषा–आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने रोग प्रगट होय । मस्तक भारी रहे नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों ॥

मन्यास्तंभशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ॥
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

भाषा–मन्या कहिये नाडके पिछाडीकी नस उसका स्तंभ कहिये जकड जाना शिरमें शूलका चलना, आधा मुख टेढा हो जाय, अर्धांगवात और सब इन्द्रिये दुर्बल हो जांय इतने रोग आती हुई छींकके रोकनेसे होते हैं ॥

कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ वाऽप्रवृत्तिः ॥
उद्गारवेगेऽभिहते भवंति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥८॥

भाषा–आती हुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं । कंठ और मुख भारीसा मालूम हो, अत्यंत नोचनेकीसी पीडा होय, अव्यक्तभाषण अर्थात् जो समझमें न आवे ॥

अधोवायुकी अप्रवृत्ति ।

**कंडूकोठारुचिव्यंगो शोफपांड्वामयज्वराः ॥**
**कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥**

भाषा–जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अंगमें खुजली चले, देहमें चकत्ता हो जांय, अरुचि, मुखपर झांईसी पडे, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खाली रद, विसर्परोग ये होंय ॥

**मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथोरुजा मूत्रविनिग्रहश्च ॥**
**शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहते च शुक्रे ॥ १० ॥**

भाषा–मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारने शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमे सूजन होय तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी जो पथरीके निदानमे आगे कहेंगे सो होय, शुक्रका स्राव होय ऐसे अनक प्रकारके रोग होय ॥

**तंद्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥**

भाषा–भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मन्द होना ये रोग प्रगट होंय । चकारसे कृशता और दुर्बलता होय ये अन्य ग्रन्थसे जानने ॥

**कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्धृदयव्यथा वै ॥ ११ ॥**

भाषा–प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मन्द सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होंय ॥

**श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वापि गुल्मः ॥**

भाषा–जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायगोला इतने रोग होंय ॥

**जृंभांगमर्दाक्षिशिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथ वापि तंद्रा ॥१२॥**

भाषा–आती हुई निद्राके रोकनेसे, जंभाई, अंगोका टूटना, नेत्र और मस्तककी अत्यंत जडता होना और तन्द्रा होय ॥

अब कहते हैं कि वेग रोकनेसे प्रगट रोगोंको कहकर अब रूक्षादि कारणोसे कुपितवायुसे उत्पन्न होनेवाले उदावर्तरोगोंको कहते हैं ।

**वायुः कोष्ठानुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति च ॥ १३ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहानि वै ॥ स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्त्तयेत् ॥ १४ ॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्त्तो हृल्लासारतिपीडितः ॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् ॥ वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ १६ ॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १७ ॥**

भाषा—रूखा, कषैला, तीखा और कडुआ ऐसे भोजन करनसे कोष्ठगत वायु, मल, मूत्र, अश्रुपात, कफ और मेद इनके वहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोक दे और मलको सुखाय दे तब रोगी हृदय मूत्रस्थानमे शूलके होनेसे वेकल हो, सूखी रह, अस्वस्थपना इनसे पीडित होय, मल मूत्र और वात ये कष्टसे उतरें और श्वास खांसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकरोग, मनकी भ्रांति, सब्द सुने तथा वातकोपसे औरभी बहुतसे विकार होंय ॥

आनाहरोगनिदान ।

**आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥ प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरंति ॥ १ ॥ तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥ आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तंभ उद्गारविघातनं च ॥ २ ॥ स्तंभः कटिपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलेऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः ॥ श्वासश्च पक्वाशयजे भवंति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥**

भाषा—आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित हो विगुण वायुसे वारंवार विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे प्रवृत्त नहीं होय इस विकारको आनाह कहते हैं । आमसे प्रगट आनाहरोगसे प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड जाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई रद और श्वास ये लक्षण होंय । पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे आलसरोगोक्त लक्षण ( आध्मान वातरोधादिक ) होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

**तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ॥**
**शकृद्वमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥**

भाषा-प्याससे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे पीडित और मलकी रद्द करनेवाला ऐसे उदावर्त्त रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां उदावर्तनिदान समाप्तम् ।

---

# अथ गुल्मनिदानम् ।

**दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ॥**
**कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठांतर्ग्रंथिरूपिणम् ॥**
**तस्य पंचविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥ १ ॥**

भाषा-मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष कोष्ठ ( पेट ) में ग्रंथिरूप ( गांठ ) पांच प्रकारका गुल्मरोग उत्पन्न करते हैं । उस गुल्मरोगके पांच स्थान हैं । दोनों पसवाडे, हृदय, नाभि और बस्ति ॥

गुल्मके सामान्यरूप ।

**हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ॥**
**वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्त्तितः ॥ २ ॥**

भाषा-हृदय और नाभि तथा बस्ति ( मूत्रस्थान ) इनमें चलायमान अथवा निश्चल गोला कभी घटे, कभी बढे ऐसी ग्रन्थि ( गांठ ) होय उसको गुल्म ( गोलेका रोग ) कहते हैं । इस श्लोकमें नाभिशब्दसे वस्तिका ग्रहण करा है ॥

सम्प्राप्ति ।

**स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ॥**
**पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥**

भाषा-कुपित भये दोषोंसे पृथक् २ और सब दोष मिलकर एक ये चार प्रकारके गुल्म पुरुषोंके होते हैं और स्त्रियोंके रक्त ( रज ) के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होता है । परंतु प्रथम जो लिख आये हैं कि गुल्मरोग पांच प्रकारका है

सो इसका निश्चय नहीं है, क्योंकि रक्तगुल्म स्त्रियोंके होय है पुरुषोंके नहीं होय। धातुरूप रक्तज गुल्म जो है सो स्त्री पुरुष दोनोंके होय है। यह क्षीरपाणिका मत है। पांच प्रकारका गुल्म है इसपर बहुत शास्त्रार्थ और मत मतांतर हैं। जिनको देखनेकी इच्छा हो सो मधुकोश और आतंकदर्पण टीकामें देख लेवें ॥

पूर्वरूप ।

**उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्रविकूजनानि ॥**
**आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥**

भाषा–डकार बहुत आवे, मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय, सामर्थ्यका नाश होना, आंत बोले, पेटमें पीडा होय और अफरा होय तथा पेटका जकड जाना, मंदाग्नि होना ये लक्षण होंय तो जानना कि गुल्म ( गोला ) रोग शीघ्र प्रगट होना चाहता है ॥

गुल्मके साधारण लक्षण ।

**अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातेनांत्रविकूजनम् ॥**
**आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥**

भाषा–अरुचि, मल मूत्र कष्टसे उतरे, वादीसे आंत बोले, पेट फूल आवे, ऊर्ध्ववात होय ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं। सब गुल्मरोगोंमें वात कारण है सो चरक और सुश्रुतमेंभी लिखा है ॥

वातगुल्मके कारण और लक्षण ।

**रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ॥**
**शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥**
**यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ॥**
**श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥ ७ ॥**
**करोति जीर्णेऽप्यधिकं च कोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति पश्चात् ॥**
**वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥**

भाषा–रूखा, विषम और अतिमात्र ऐसे अन्नपान सेवन करनेसे, बलवान् पुरुषसे लडना, मल मूत्र आदि वेगोंके धारण करनेसे, शोक और अभिघात ( लकडी

---

१ " गुल्मिनामनिलशांतिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरणीया । मारुतेऽत्र विजितेऽन्यमुदीर्णंदोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ "

२ " कुपिताऽनिलमूलत्वात्संचितत्वान्मलस्य च । तुल्यवद्वा विशालत्वात् गुल्म इत्याभिधीयते ॥ " इति ।

आदिकी चोट ), विरेचन आदिसे, मलका क्षय करना; उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं। जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ति, कभी पसवाडेमें चला जाय तथा कभी लंबा, कभी मोटा, गोल अथवा छोटा होय तथा उसमें पीडा कभी थोडी कभी बहुत होय, तोदभेद ( सुई चुभानेकीसी पीडा ) होय अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय और गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम हो जाय, वह गोला वादीसे प्रगट होता है। उसमें रूखा, कषैला, कडुवा, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होय ॥

पित्तगुल्मके कारण ।

**कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षं क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ॥**
**आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ९ ॥**
**ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ॥**
**स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥**

भाषा-कटु, खट्टा, तीक्ष्ण रस, दाहकारक ( वंश करीलादिक ), रूखा ऐसा भोजन करनेसे, क्रोधसे, अति मद्यपान, सूर्यकी धूपमें डोलनेसे, अग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्णसे दुष्ट भया रस उससे, अभिघात कहिये लकडी आदि लगनेसे, रुधिरका बिगडना ये पित्तगुल्मके कारण कहे हैं। ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लालपना, अन्न पचनेके समय अत्यन्त शूल होय, पसीना आवे जलन होय, फोडेके समान स्पर्श सहा न जाय ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ॥

कफके और सन्निपातके गुल्मके कारण और लक्षण ।

**शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ॥**
**गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥ ११ ॥**
**स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ॥**
**शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ १२ ॥**

भाषा-शीतल, भारी, चिकने ऐसे पदार्थके सेवनसे, तृप्तिकी अपेक्षा अधिक भोजन करना, दिनमें सोना यह कफोत्पन्न गुल्म होनेका कारण है और जो वातआदि तीनों गुल्मोंके कारण कहे हैं. वे सब सन्निपातगुल्मके कारण जानने। देहका गीलापना. शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद ( उबाकी ), खांसी,

अरुचि, भारीपना, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म ( गोला ) कठिन होय और ऊंचा होय इतने ये सब कफात्मक गुल्मके लक्षण हैं ॥

द्वंद्वज गुल्मके लक्षण ।

**निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे संसर्गजे दोषबलाबलं च ॥**
**व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥१३॥**

भाषा–द्वंद्वज गुल्ममें कारण, लक्षण और दोषोंका बलाबल जानकर चिकित्सा करनेके वास्ते मिश्रलक्षणके और तीन गुल्म समझने चाहिये अर्थात् एक दोष बलवान् होय तो चिकित्सा करनी चाहिये और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होय तो चिकित्सा न करे ॥

सन्निपातगुल्मके लक्षण ।

**महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहदारुणम् ॥**
**मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥१४॥**

भाषा–भारी पीडा करनेवाला, दाहकरके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन तथा ऊंचा और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला अर्थात् मनको विकल करनेवाला, शरीरको कृश करनेवाला और विवर्ण करनेवाला, अग्निवैषम्यादिकारक, असामर्थ्य करनेवाला ऐसा त्रिदोषज गुल्म असाध्य जानना ॥

रक्तगुल्मके लक्षण ।

**नवप्रसूताऽहितभोजनाया या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ॥**
**वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १५ ॥**
**पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यवरं निबोध ॥**
**यः स्पंदते पिंडित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥**
**सरौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासि व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥ १६॥**

भाषा–नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्क गर्भपात होनेसे अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर ( जो ऋतुसमय निकले उस ) को लेकर गुल्म करे वह गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । और पित्तगुल्मके जो लक्षण कहे हैं वे सब इसमें होंय और इसमे दूसरे विशेष लक्षण होते हैं उनको कहता हूं सुनो । यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके

समान सब लक्षण मिलें अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड जाय, स्तनका अग्रभाग काला हो जाय और दोहदादि लक्षण सब मिलें ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं । जैसे क्षयी रोगवालेको स्त्रीरमणकी इच्छा और काले नख तालवादिक होते हैं । यह रक्तज गुल्म स्त्रियोंके होता है । दश महीना व्यतीत हो जांय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । कोई कहते हैं कि यह गर्भ है अथवा रक्तगुल्म है यह शंका जानकर माधवाचार्यने दश महीना व्यतीत होनेपर ऐसा कहा है । कारण इसका यह है कि नवम और दशम महीना यह प्रसूत होनेका समय है । शंका—क्योंजी ! " यः स्पंदते पिंडित एव नांगैः " इत्यादिक विशेषणोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है । क्योंकि गर्भ तो निरंतर प्रत्येक अवयवके साथ शूलरहित फडकता है और रक्तगुल्मके इससे विपरीत लक्षण हैं । फिर दश महीना व्यतीत होनेपर चिकित्सा करना चाहिये ऐसा क्यों कहा ? उत्तर—इसका कारण इस प्रकार है कि इस रोगमें जब तो दश महीना व्यतीत हो जांय तब चिकित्सा करे तो सुखसाध्य होता है । कुछ प्रसवके नियमसे नहीं कहा । क्योंकि प्रसव ग्यारह बारह महीनोंमेंभी होता है सो चरकमेंभी लिखा है । " तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं स्पष्टे यदा वर्षगणैरपि स्यात् । " जैसे जीर्णज्वर होनेपर दूध पीना और दस्तका लेना हितकारक होता है । इसीसे ग्रन्थान्तरोंमेंभी लिखा है । ' रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् । " इस रक्तगुल्मको दस महीना व्यतीत होनेपर पुरानापना होय है और जय्यटनेभी कहा है कि दश महीनोंके पहिले मर्दनादि क्रिया करनेसे गर्भाशयको विकार होता है । क्योंकि रुधिर उस ठिकानेपर जमा होय है और ग्यारहवें महीनेमें गुल्मका गोला बहुत अच्छा जम जाता है इसीसे ग्यारहवें महीनेमें स्नेहादिककरके सब शरीर मृदु ( नरम ) करनेसे भेदनक्रिया करे तो गर्भाशय भले प्रकार अच्छा रहे । अब कहते हैं कि बहुत दिनका गुल्मरोग ऐसी अवस्था होनेपर असाध्य हो जाय है उसको कहते हैं ॥

**सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ॥ कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १७ ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरतिज्वरैः ॥ तृष्णातंद्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ १८ ॥**

भाषा—क्रमक्रमसे बढा गुल्म जब सब उदर ( पेट ) में फैल जाय और धातुओंमें उसका मूल जाय पहुँचे तथा उसपर नाडियोंका जाल लिपट जाय और कछुएकी पीठके समान गुल्म ऊंचा होय तब इस रोगीके निःसत्वपना, अरुचि, सूखी रद, खांसी, वमन, अरति और ज्वर तथा प्यास, तन्द्रा और पीनस ये होंय ऐसा रोगी असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण।

गृहित्वा सज्वरः श्वासश्छर्द्यतीसारपीडिते ॥ हृन्नाभिहस्त-पादेषु शोथः क्षिपति गुल्मिनाम् ॥ १९ ॥ श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥ जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनां मरणाय वै ॥ २० ॥

भाषा–वमन और अतिसार इनसे पीडित ऐसा गुल्मरोगीका हृदय, नाभि, हाथ, पैर इन ठिकाने सूजन होय और ज्वर, दमा जिसके होय ऐसे लक्षण होनेसे रोगी बचे नहीं। श्वास, शूल, प्यास, अन्नमें अरुचि और गुलमकी गांठका एकाएकी नष्टता हो जाना और दुर्बलता ये लक्षण होनेसे जानना कि गुल्मरोगवालेकी मृत्यु समीप है। शंका–क्योंजी ! अंतर्विद्रधि और गुलमरोग इनमें क्या भेद है ? इन दोनोंके स्थान और स्वरूप तो एकसे हैं। फिर भेद क्या है ? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है अंतर्विद्रधि पचता है और गुल्म नहीं पचे है। इसका कारण यह है कि गुल्म तौ निराश्रय है सुश्रुतने कहाभी है ॥

न निबंधोऽस्ति गुल्मस्य विद्रधिः सनिबंधनः ॥
गुल्मास्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥
विद्रधिः पच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २१ ॥

भाषा–गुल्मका निर्बंध नहीं है और विद्रधिका निर्बंध है। गुल्म अपने दोषोंमें रहता है और विद्रधिका ठिकाना मांसरुधिरमें है, इसीमे विद्रधिका पाक होता है और गुलमका पाक नहीं होय। गुल्म मुट्ठीके समान बडा है और विद्रधि इससे कुछ ज्यादा बडा होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां गुल्मनिदान समाप्तम्।

# अथ हृद्रोगनिदानम्।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्ययनप्रसंगैः ॥
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

भाषा–अतिगरम, अतिभारी, अतिखट्टा, अतिकषैला, अतिकडुवा ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे, श्रम ( धनुष आदिका खैंचना, ), अभिघात ( हृदयमें चोट लगना )

और भोजनके ऊपर भोजन नित्य करनेसे, संचिंतन ( राजाके भयसे चिंता ), मल मूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, वातादिकके क्षय और सन्निपातकरके तथा कृमिसे हृदयका रोग होय है वह पांच प्रकारका है ॥

उसकी संप्राप्ति और सामान्य लक्षण ।

**दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ॥**
**हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥**

भाषा–कुपित भये दोष रसको ( हृदयमें जो रहता है ) दुष्ट करके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीडा करे उसको हृदयरोग कहते हैं ॥

वातहृद्रोगके लक्षण ।

**आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥**
**निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥**

भाषा–वातज हृदयरोगमें हृदय ईंचासरीखा, सुईसे चोटनेसरीखा, फोरनेसरीखा दो टुकडा करनेके समान, मथनेके समान, कुल्हाडीसे फारनेके समान पीडा करे है ॥

पित्तके हृद्रोगके लक्षण ।

**तृष्णोष्णदाहमोहाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ॥**
**धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥**

भाषा–पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धूंआ निकलतासा मालूम हो, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं ॥

कफके हृदयरोगके लक्षण ।

**गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तंभोऽग्निमार्दवम् ॥**
**माधुर्यमपि चास्यस्य बलासा वर्तते हृदि ॥ ५ ॥**

भाषा–कफसे हृदय व्याप्त होनेसे भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मन्दाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं ॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

**विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गम्–**

भाषा–जिसमें सब लक्षण मिलते होंय वह त्रिदोषका हृद्रोग जानना । इसमें

कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है। उस गांठसे कृमि पैदा होते हैं ऐसा चरकमें कहा है॥

कृमिज हृद्रोगके लक्षण।

**तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डु॥ उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत्॥ ६॥**

भाषा–तीव्र पीडाकरके तथा नोचनेकीसी पीडाकरके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना। उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो), थूकना, तोद (सुई चुभानेकीसी पीडा), शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड जांय और मुखशोष ये लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं। जय्यटका यह मत है कि उत्क्लेदसे लेकर तमपर्यंत त्रिदोषके लक्षण कहे हैं। जैसे तोद शूल ये वादीसे होंय। उत्क्लेद, हृल्लास और ष्ठीवन ये कफसे और तम ये पित्तसे लक्षण होते हैं। और अरुचिसे लेकर शोषपर्यन्त कृमिज हृद्रोगके लक्षण जानने। इस विषयमें प्रत्येक आचार्योंके भिन्न भिन्न मत हैं॥

सर्वोके उपद्रव।

**क्लोमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः॥**
**कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः॥ ७॥**

भाषा–क्लोम कहिये पिपासा (प्यास) स्थान उसमे ग्लानि होय, भ्रम, शोष ये सब हृद्रोगोंके उपद्रव जानने। और कफकी कृमिरोगके जो उपद्रव पिछाडी कह आये हैं वे कृमिज हृद्रोगके लक्षण होते हैं। तथा " हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम्। " इत्यादि॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां हृद्रोगनिदान समाप्तम्।

---

# अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

**व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठयानात्॥**
**आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ॥ १॥**

भाषा–व्यायाम (दंड कसरत आदि), तीक्ष्णौषध (राई आदि,), रूखा

---

१ "त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रथिस्तस्योपजायते॥ मर्मैकदेशे सक्लेद रसश्चाप्युपगच्छति। सक्लेदात्क्रमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः॥ " इति॥

पदार्थ और नित्यप्रति मद्यपान करना, निरंतर घोडेपर चढनेसे और जलसमीप रहनेवाले पक्षी ( हंस, सारस, चकवा आदि ) का मांस खानेसे और मछली, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे और कच्चे पदार्थ इत्यादिकोंके खानेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग होता है । पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेका १, मल रोकनेका १, वीर्य रोकनेका १ और पथरीका १ ये सब मिल-करके आठ भये ॥

### संप्राप्ति ।

**पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य बस्तौ ॥**
**मूत्रस्य मार्गं परिपीडयंति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥**

भाषा—अपने कारणसे कुपित भये जो वातादिक दोष अथवा सब दोष बस्तिमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीडित करें तब मनुष्यका बडे कष्टसे मूत्र उतरे ॥

### पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥**

भाषा—पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रसे पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त, अग्निके समान, वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे ॥

### वातिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**तीव्रार्तिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥**

भाषा—वातके मूत्रकृच्छ्रसे वंक्षण ( जांघ और ऊरु इनकी संधि ), मूत्राशय और इन्द्रिय इनमें पीडा होय और मूत्र वारंवार थोडा थोडा उतरे ॥

### कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**बस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥**

भाषा—कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय ॥

### सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवंति तत्कृच्छ्रतमं तु कृच्छ्रम् ॥ ४ ॥**

भाषा—सन्निपातसे सर्व लक्षण होते हैं । वह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है ॥

### शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥**

**मूत्रकृच्छ्रं तदा वाताज्जायते भृशदारुणम् ॥**
**वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्षयेत् ॥ ५ ॥**

भाषा-मूत्र वहनेवाले स्रोत ( मार्ग ) शल्य ( तीर आदि ) से बिंध जाय अथवा पीडित होय तो उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है । इसके लक्षण वातज मूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं ॥

मलके मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥**
**आध्मानं वातसंगं च मूत्रसंगं करोति च ॥ ६ ॥**

भाषा-मल ( विष्ठा ) का अवरोध होनेसे वायु विगुण ( उलटा ) होकर अफरा, वाब, शूल और मूत्र इनका नाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र ।

**अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥**

भाषा-पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥

शुक्रज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

**शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते ॥**
**सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥**

भाषा-दोषोके योगसे शुक्र ( वीर्य ) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके संग वीर्य-पतन होय ॥

अश्मरी और शर्करा इनका साम्य और अवांतर भेद ।

**अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ॥ विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्त्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ॥ विमुक्तकफसंधाना क्षरंती शर्करा मता ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ॥ तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ ११ ॥**

भाषा-अश्मरी ( पथरी ) और शर्करा इन दोनोंकी संप्राप्ति और लक्षण समान हैं परंतु इनमें थोडासा भेद है उसको कहता हूं । पित्तसे पकनेवाली और वायुसे

शुष्क होनेवाली ऐसी पथरी कफसंबंधी न होय तब मूत्रके मार्गसे रेतके समान झरने लगे उसको शर्करा कहते हैं । उस शर्करायोगसे हृदयमें पीडा, कम्प, कुखमें शूल, मंदाग्नि, मूर्च्छा और भयंकर मूत्रकृच्छ्र ये रोग होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूत्रकृच्छ्रनिदान समाप्तम् ।

# अथ मूत्राघातनिदानम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ॥
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

भाषा—मूत्रका वेग रोकनेसे, आदिशब्दने मल शुक्रादिका वेग रोकनेसे और रूक्ष भोजन आदि जानना । कुपित भये हुए दोषोंसे वातकुण्डलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघातरोग होते हैं ॥

वातकुण्डलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः ॥ मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ॥ वातकुंडलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

भाषा—रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मलमूत्रादि वेगोंके धारण करनेसे कुपित भया जो वायु सो बस्ति ( मूत्राशय ) में प्राप्त होकर पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण ( उलटा ) करके वहां आप कुण्डलके आकार ( गोलाकार ) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको वारंवार थोडा थोडा पीडाके साथ त्याग करे । इस दारुण व्याधिको वातकुण्डलिका रोग कहते हैं ॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नतम् ॥
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रमार्गावरोधिनीम् ॥ ४ ॥

भाषा—बस्ति ( मूत्राशय ) और गुदा इनमें यह वायु अफरा करे तथा गुदाकी वायुको रोककर चञ्चल और उन्नत ( ऊंची ) ऐसी अष्ठीला ( पत्थरकी पिण्डीके सदृश ) को प्रगट करे । यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है ॥

वातबस्तिके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥ निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ मूत्रसंगो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ॥ वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

भाषा—जो मनुष्य अड ( जिद्द ) से मूत्रबाधाको रोके उसके बस्ति ( मूत्राशय ) का वायु बस्तिके मुखको बन्द कर दे तब उसका मूत्र बन्द हो जाय और वह वायु बस्तिमें और कूखमें पीडा करे तब उस व्याधिको वातबस्ति ऐसा कहते हैं । यह बडे कष्टसे साध्य होता है ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ॥
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जलदी नही उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं ॥

मूत्रजठरके लक्षण ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः ॥ अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम् ॥ तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

भाषा—मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित और उदावर्त्तका कारणभूत ऐसा अपानवायु कुपित होकर पेट बहुत फूल जाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोबस्तिका रोध करनेवाले ऐसे इस रोगको मूत्रजठर ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

बस्तौ वाप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ॥
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥
स्रवच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाथ नीरुजम् ॥
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ११ ॥

भाषा—प्रवृत्त भया मूत्र बस्तिमें अथवा शिश्न ( लिंग ) में अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करेभी तौ वादीसे बस्तिको फाडकर जो

मूत्र निकले वह मंद मंद थोडा थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥

मूत्रक्षयके लक्षण।

**रूक्षस्य क्लांतदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥**
**मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥**

भाषा-रूखा भया अथवा श्रांत ( थक गया ) देह जिसका ऐसे पुरुषके बस्ति ( मूत्राशय ) में रहे जो पित्त और वायु वे मूत्रका क्षय करें और पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थिके लक्षण।

**अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ॥**
**अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥**

भाषा-बस्तिके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण।

**मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ॥**
**स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥**
**भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥**

भाषा-मूत्रबाधाको रोककर जो मनुष्य स्त्रीसङ्ग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय उसको मूत्रशुक्र ऐसा कहते हैं ॥

उष्णवातका लक्षण।

**व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलायुतम् ॥ बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथ वा सरक्तं रक्तमेव च ॥ कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जंतोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ १६ ॥**

भाषा-व्यायाम ( दंड कसरत ), अति मार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो बस्तिमें प्राप्त हो वायुसे मिल बस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हलदीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा काल ऐसा मूत्रका स्राव वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं ॥

मूत्रसादके लक्षण।

**पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥ कृच्छ्रान्मूत्रं**

**तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशंखचूर्ण-वर्णं भवेत्तु तत् ॥ शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८॥**

भाषा-पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके बिगडे हुए होंय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय और जब वह मूत्र पृथ्वीमें सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं ॥

### विड्विघातके लक्षण ।

**रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥ मूत्रस्रोतोऽनुप-द्येत विड्विसृष्टं तदा नरः ॥ विड्बंधं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्वि-घातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥**

भाषा-रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् ( मल ) जब वायुकरके प्रेरित उदावर्त्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तौ बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्विघात कहते हैं ॥

### बस्तिकुंडलरोगके लक्षण ।

**द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ॥ स्वस्थानाद्बस्ति-रुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ॥ पीडितस्तु सृजेद्धारां संरंभोद्वेष्टनार्ति-मान् ॥ २२ ॥ बस्तिकुंडलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ॥ पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥**

भाषा-जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे बस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहे, उससे शूल, कम्प और दाह ये होंय । मूतकी एक एक बुन्द गिरे । यदि बस्ति जोरसे पीडित होय तौ बडी धार पडे, बस्तिमें सूजन होय. पेटमें पीडा होय इस रोगको बस्तिकुण्डल ऐसा कहते हैं । यह शस्त्रके समान जल्दी प्राणनाशक और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाशकर्त्ता भयंकर है । इसमें प्रायः वायु प्रबल है । मन्दबुद्धिवाले वैद्योंसे इसका निवारण ( चिकित्सा ) करना कठिन है ॥

इसको अन्य दोषोंका सम्बन्ध होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको कहता हूं।

**तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥**
**श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥**

भाषा–वही बस्तिकुंडल पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्रका बुरा रंग होय और कफयुक्त होनेसे जडत्व, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा, सपेद ऐसा होय ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

**श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति ॥**
**अविभ्रांतबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥ २५ ॥**

भाषा–कफकरके जिसका मुख बन्द होय ऐसा और पित्तकरके व्याप्त भई ऐसी बस्ति साध्य नहीं होय और जिस बस्तिका मुख खुला होय तथा जो कुण्डलीकृत होय नहीं वह साध्य है ॥

कुण्डलीभूनके लक्षण ।

**स्याद्बस्तौ कुंडलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २६ ॥**

भाषा–बस्ति कुण्डलीभून होनेसे प्यास, दाह और श्वास ये लक्षण होंय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूत्राघातरोगनिदान समाप्तम् ।

---

# अथाश्मरीरोगनिदानम् ।

**वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ॥**
**प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥**

भाषा–वात, पित्त, कफ इनसे ३ चौथी शुक्रसे अश्मरीरोग ( पथरी ) होती है। यह पथरी विशेषकरके कफाश्रित है। " यमोपमाः " कहिये अच्छी चिकित्सा न होय तौ यह अवश्य प्राणनाशक है ॥

सम्प्राप्ति ।

**विशोषयेद्बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ॥**
**यदा यदाश्मर्युपजायते च क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥**

भाषा–जिन मनुष्योंका वायु बस्तिमें प्राप्त हो शुक्रयुक्त अथवा पित्तयुक्त मूत्र अथवा कफको सुखावे तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होती है। जैसे गौके पित्तमें गोरोचन जमे है, उसी प्रकार बस्तिमें वीर्यसे पथरी होय है ॥

पूर्वरूप ।

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अश्मर्याः पूर्वलक्षणम् ॥
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥
मूत्रे बस्तसगंधत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥

भाषा–सब अश्मरी ( पथरी ) एक दोषके आश्रय नहीं हैं अर्थात् अनेक दोषाश्रित हैं। बस्तिका फुलना, बस्तिके आसपास अत्यंत पीडा होनी, मूत्रमें बकरेके पेशाबकीसी दुर्गंध आवे, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, अरुचि ये पथरीके पूर्वरूप जानने ॥

पथरीके सामान्य लक्षण ।

सामान्यलिंगं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु ॥ विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥ तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥

भाषा–नाभि सेवनी ( अंडकोशके समीपका भाग ) और बस्तिका अग्रभाग इनमें शूल होय पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार फटी निकले, पथरी मूत्रमार्गके पाससे हट जाय तो मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे और स्वच्छ गोमेदमणिके समान होय, अश्मरी ( पथरी ) के योगसे बस्तिमें घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे और मूतते समय जोर करनेसे बडा क्लेश और पीडा होय ये सामान्य लक्षण जानने ॥

वातकी पथरीके लक्षण ।

तत्र वाताद्भृशं व्यार्तो दन्तान्खादति वेपते ॥ मश्नाति मेहनं नाभिं पीडयंत्यनिशं क्वणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुंचति शकृन्मुहुर्मेहति बिंदुशः ॥ श्यावा रूक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिता कंटकैरिव ॥ ७ ॥

भाषा–वायुकी पथरीसे रोगी अत्यंत पीडा करके व्यात होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुको परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपक गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होंय ॥

पित्तकी पथरीके लक्षण ।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी ॥ ८ ॥

भाषा–पित्तकी पथरीके रोगीसे बस्तिमें दाह होय और खारसे जैसा दाह होय

ऐसी वेदना होय, बस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और मिलाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय॥

कफकी पथरीके लक्षण।

**बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः॥**
**अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथ वा सिता॥ ९॥**

भाषा–कफकी पथरीसे बस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय, शीतलपना होय और पथरी बडी मुर्गीके अंडेसमान, स्वच्छ और मद्य ( दारू ) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है यह कहा है॥

**एता भवंति बालानामेषामेव च भूयसा॥**
**आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः॥ १०॥**

भाषा–पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी ( पथरी ) विशेषकरके बालकोंके होती है। कारण उनका भारी मीठा शीतल चिकना आहार है और उनकी बस्ति छोटी तथा पुष्टता थोडी होय है। इसीसे वैद्योंको उसका चीरना, फाडना, काटना, निकालना कठिन नहीं होय सो सुश्रुतनेभी कहा है॥

शुक्राश्मरीके लक्षण।

**शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्॥ स्थानाच्च्युतमयुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः॥ ११॥ शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी॥ बस्तिरुक् कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्कश्वयथुकारिणी॥ १२॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते॥ पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा॥ १३॥**

भाषा–शुक्राश्मरी शुक्र ( वीर्य ) के रोकनेसे बडे मनुष्योंकोही यह पथरी होती है। मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान हो गया जो वीर्य उस समय मैथुन न करे तब शुक्र ( वीर्य ) बाहर नहीं निकले, भीतरही रहे तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है उसीको शुक्रजाश्मरी कहते हैं। इसकरके अंडकोषोंमें सूजन, बस्तीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीडा होती है। वीर्यका नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है।

पथरीशर्कराके उपद्रव।

**अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे॥ निरेति सह मूत्रे-**

ण प्रतिलोमे विवर्ध्यते ॥ १४ ॥ मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सासक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम् ॥ पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १५ ॥

भाषा-वायुका बस्तिमें अनुलोमगतिसे प्रवेश होता है तौ वह शर्करा वायुकरके छोटे छोटे इकट्ठी होकर मूत्रके साथ बाहर निकले और यदि वायु प्रतिलोम होय तौ मूत्रमार्गको रोक दे यदि मूत्रमार्गमें प्राप्त होय तौ मूत्रके वहनेवाले छिद्रोंको रोक दे फिर इतने उपद्रवोंको प्रगट करे । दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, कूखमें शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, उष्णवात, प्यास, हृदयमें पीडा, वमन ये सब उपद्रव होय ॥

असाध्य लक्षण ।

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजान्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ १६ ॥

भाषा-जिसके नाभि और वृषण सूज जांय, मूत्र उतरे नहीं, पीडा होय ऐसे पुरुषका शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राणनाश करे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अश्मरीनिदान समाप्तम् ।

अथ

# माधवनिदानस्य उत्तरभागः ।

## तत्र प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि ॥
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

भाषा-बैठनेके सुखसे, निद्राके सुखसे अथवा स्वप्नसुख कहिये स्वप्नमें स्त्रीप्रसंग आदि सुखसे, दही, ग्रामके संचारी जीव भेड बकरी आदि, जलके संचारी जीव मच्छी कछुआ आदि, अनूप ( जलसमीप ) के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि, ऐसे प्राणियोके मांसरस, दूध, नया अन्न और नया जल तथा शर्करा आदि गुडके पदार्थ अथवा गुडके विकार ये और जितने कफकारक पदार्थ हैं वे सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति ।

**मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य ॥**
**करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ २ ॥**
**क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥**
**साध्याः कफोत्था दश पित्तजाःषट् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः॥**
**समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥**

भाषा—वस्ति ( मूत्रस्थान ) गत कफ मेद मांस और शरीरके क्लेदको बिगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करता है । उसी प्रकार गरम पदार्थसे पित्त कुपित होकर पूर्वोक्त मेद मांसको बिगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करे और वायु यह दोष क्षीण होनेसे धातु कहिये वसा मज्जादिकको ईंचकर वस्तिके मुखपर लाकर प्रमेहको प्रगट करे । कफसे प्रगट दस प्रमेह साध्य हैं । कारण इसका यह है कि कफदोष और मेद्प्रभृति दूष्य इनपर कटुतिक्तादि क्रिया समान है । इस रोगमें रोगकाही प्रभाव ऐसा है कि इसमें तुल्यदूष्यको साध्यत्व कहा है और प्रमेहके विना और रोगोंको अतुल्य ( असमान ) दूष्यत्व साध्यका हेतु होता है । पित्तके छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे याप्य होते हैं अर्थात् पित्त हरण करनेवाले जो शीत मधुर आदि द्रव्य वे मेदको बढानेवाले हैं और मेदहरणकर्त्ता उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तकर्त्ता हैं ऐसी क्रिया विषम है । वादीसे प्रगट चार प्रमेह मज्जादि गंभीर धातुओंके आकर्षण करनेसे अत्यन्त पीडाकर्त्ता हैं और इनकी विषमही क्रिया है इसीसे ये चार असाध्य हैं ॥

प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह ।

**कफः सपित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्रांबुवसालसीकाः ॥**
**मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥**

भाषा—कफ, पित्त और वादी ये दोष और मेद, रुधिर, शुक्र, जल, मांस, स्नेह ( चर्बी ), लसिका ( मांसका जल ), मज्जारस, ओज और मांस ये दूष्य जानने । इन दोष और दूष्य दोनोंसे वीस प्रकारके प्रमेह होते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ॥**
**दाहश्चिक्कणता देहतृट्श्वासश्चोपजायते ॥ ५ ॥**

भाषा—दांतोंमें आदिशब्दसे जिह्वा तालु आदिका ग्रहण है; इनमें मैला बहुत

रहे, हाथ पैरमें दाह, अंगका चिकनापना, प्यास, श्वास, चक्रारसे केशों ( बारों ) का आपसमे लिपट जाना और नखोंका बढ जाना। ये प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं॥

सामान्य लक्षण।

**सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता॥ ६॥**

भाषा–बहुत और गाढा मूत्र उतरे ये प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं॥

प्रमेहके कारण।

**दोषदूष्यविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः॥**
**मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते॥ ७॥**

भाषा–दोष और दूष्य इनके भेद न होनेसे परंतु दोष और दूष्य इनके संयोग भेदसे मूत्रवर्णादि भेद करके प्रमेहमे भेद होता है। दस छः चार इत्यादिक दोष ( वात, पित्त, कफ ) दूष्य ( मांस, मेद, मज्जादि ) जैसे सफेद, पीला, काला, तामेके रंगका और श्याम इन पांच रंगोंके संयोग करनेसे पिंगल पाटलादि अनेक वर्णभेद होते हैं। इसी प्रकार दोषादिकोंके संयोगसे नाना प्रकारके प्रमेह होते हैं। संयोगभेदकी कैसे प्रतीति हो ऐसा कोई पूछे तो उसके वास्ते कहते हैं। मूत्रके वर्णादि भेदसे समान कारणोंके भेद कल्पना करने चाहिये। जैसे घट ( घडा ) बनाने समय मृत्तिकादि कारण सामग्रीमें भेद नहीं है परन्तु कुम्भकारादि ( कुम्हार आदि ) संयोग भेदकरके घडा, सरवा आदि अनेक जातिभेद हो जाते हैं॥

कफके १० प्रमेहके लक्षण।

**अच्छं बहुसितं शीतं निर्गंधमुदकोपमम्॥ मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम्॥ ८॥ इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः॥ सांद्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति॥ ९॥ सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम्॥ संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्॥ १०॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति॥ मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्॥ ११॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्॥ शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति॥ लालातंतुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम्॥ १२॥**

भाषा–१ उदकप्रमेहकरके स्वच्छ, बहुत सपेद, शीतल, गंधरहित, पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूते है। २ इक्षुप्रमेहसे ईखके रससमान अत्यंत मीठा ऐसा मूत्र होय। ३ सांद्रप्रमेहसे रात्रिमे पात्रमें धरनेसे जैसा होवे ऐसा मूत्र होय।

४ सुराप्रमेहसे दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा ऐसा मूते। ५ पिष्टप्रमेहसे पीसे चावलोंके पानी समान सपेद और बहुत मूते तथा मूतते समय रोमांच होंय। ६ शुक्रप्रमेहसे शुक्र ( वीर्य ) के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय। ७ सिकतामेहसे मूत्रके कण और वालू रेतके समान मलके रवा गिरें। ८ शीतमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा वारंवार बहुत मूते। ९ शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मन्द मन्द मूते। १० लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है॥

पित्तके ६ प्रमेहके लक्षण।

**गंधवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षरतोयवत् ॥ १३ ॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ॥ हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहेत् ॥ १४ ॥ विस्रं मांजिष्ठमेहेन मांजिष्ठसलिलोपमम् ॥ विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ १५ ॥**

भाषा-११ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है। १२ नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते। १३ कालप्रमेहसे स्याईके समान काला मूते। १४ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण हलदीके समान और दाहयुक्त मूते। १५ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते। १६ रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त, गरम, खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे॥

वातके ४ प्रमेहके लक्षण।

**वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ कषायमधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद् बुधः ॥ हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ सालसीकं विबद्धं च हास्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥**

भाषा-१७ वसाप्रमेही वसा ( चर्बी ) युक्त अथवा वसाके समान मूते। १८ मज्जाप्रमेही मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला वारंवार मूते। १९ क्षौद्रप्रमेही कषैला, मीठा और चिकना ऐसा मूते। २० हस्तिप्रमेही मस्त हाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूते॥

कफप्रमेहके उपद्रव।

**आविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्ज्वरः कासः सपीनसः ॥
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥**

भाषा—अन्नका परिपाक न होय, अरुचि, वमन, ज्वर, खांसी, पीनस ये कफ प्रमेहके उपद्रव हैं ॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव ।

**बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ॥**
**दाहस्तृष्णाम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥**

भाषा—बस्ति और लिंग इनमें पीडा होय, अंडकोशोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूर्च्छा और पतला दस्त होय ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

वातप्रमेहके उपद्रव ।

**वातजानामुदावर्तं कंठहृदयग्रहलोलताः ॥**
**शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २० ॥**

भाषा—उदावर्त्त, गला, हृदय इनका रुकना, लोलता ( सर्वरस भक्षणेच्छा ), शूल, निद्रानाश, शोष, खखी, श्वास ये वातप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

प्रमेहके असाध्य लक्षण ।

**यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥**
**पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥**

भाषा—ऊपर कहे जो अविपाकादि उपद्रव वे सब होंय । जिसके मूत्रका स्राव बहुत हुआ होय, शराविका आदि जो पिडिका आगे कहेंगे वे होय, रोगका अंगमें प्रवेश हो गया हो ऐसे लक्षण होनेसे वह प्रमेह मनुष्यको मार डाले ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

**जातः प्रमेही मधुमेहिना यो न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् ॥**

भाषा—मधुमेही पुरुषसे उत्पन्न भया जो प्रमेहवान् पुरुषका रोग बीजदोषके कारणसे साध्य नहीं होय । इस जगह मधुमेहशब्दसे साधारण प्रमेह जानना । इस जगहभी मधुकोशटीकावालेने मधुमेहशब्दपर बहुतसा शास्त्रार्थ लिखा है ॥

कुलपरंपरागत अन्य विकारोंको असाध्यत्व कहते हैं ।

**ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् २२**

भाषा—जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार हैं वे सब असाध्य हैं । अब कहते हैं कि सर्व प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं इसको कहते हैं ॥

सर्व प्रमेहकी अपेक्षा करनेसे मधुमेह होता है ।

**सर्वे एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥**
**मधुमेहत्वमायांति तदाऽसाध्या भवंति हि ॥ २३ ॥**

भाषा-सब प्रमेह औषधके विना कालकरके मधुमेहको प्राप्त होते हैं तब वे असाध्य हो जाते हैं ॥

धातुक्षय और आवरण इनसे कुपित भये वायुको मधुमेहका संभव होता है ।

**मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा ॥**
**क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २४ ॥**

भाषा-मधुमेहमें मूत्र मधु ( सहत ) के समान होता है वह दो प्रकारका है । एक तो धातुक्षय होनेसे वायु कुपित होकर होता है और दूसरा दोषोंकरके पवनका मार्ग आवृत ( ढकने ) करके होता है ॥

आवरणके लक्षण ।

**आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ॥**
**क्षीणः क्षणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥**

भाषा-आवृत वायुसे प्रगट मधुमेह जिस पित्तादिदोषकरके आच्छादित होता है उसके लक्षण अकस्मात् दीखें, क्षणभरमें क्षीण होंय, क्षणमें पूर्ण होंय वह कष्टसाध्य जानना ॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त ।

**मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ॥**
**सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २६ ॥**

भाषा-प्रमेहोंमें रोगी प्रायशः मधु ( सहत ) के समान मीठा मूते और सब शरीरको मीठा कर दे इसीसे सर्व प्रमेहको मधुप्रमेहसंज्ञा दी है और अमृतसागरमें जो छः प्रमेह आत्रेयके मतसे लिखे हैं वे प्रमाणरहित हैं और प्रसिद्धमेंभी प्रमेह बीस प्रकारके हैं इसीसे हमने छोड दिये हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां प्रमेहनिदानं समाप्तम् ।

# अथ प्रमेहपिटिकानिदानम् ।

शराविका कच्छपिका जालनी विनताऽलजी ॥ मसूरीका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चेति पिडिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ॥ संधिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥

भाषा–प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे शराविकादि दश पिटिका संधिमर्म और मांसल ठिकानेमें होती हैं ॥

सबके लक्षण ।

अंतोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ३ ॥ क्षालनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥ महती पिटिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ रक्ता सिता स्फोटवती दारुणत्वलजी भवेत् ॥ ५ ॥ मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ६ ॥ महत्यल्पाचिता ज्ञेया पिडिका चापि पुत्रिणी ॥ विदारीकंदवद् वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ७ ॥

भाषा–१ शराविका यह पिटिका ऊपरके भागमे ऊंची और मध्यमें बैठोसी होय जैसा मट्टीका शराव होता है ऐसी होती है । २ कच्छपिका यह कछुवाके पीठके समान कुछ दाहयुक्त ऐसी होती है । ३ जालनी यह तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होती है । ४ विनता ये फुंसी पीठमें अथवा पेटमें होती है इसकी पीडा बहुत होय, ठंडी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है । ५ अलजी लाल, काली, बारीक फोडोंकरके व्याप्त भयंकर होती है । ६ मसूरिका मसूरकी दालके समान बडी होती है । ७ सर्षपिका सपेद सरसोंके समान बडी होती है । ८ पुत्रिणी यह बीचमें एक बडी फुंसी होय उसके चारों ओर छोटी २ फुंसी और होय उसको पुत्रिणी कहते हैं । ९ विदारिका यह विदारीकन्दके समान गोल और करडी होती है । १० विद्रधिका यह विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है । भोज और सुश्रुतके मतसे नौ पिडिका हैं और चरकके मतसे सातही है ॥

ये पिटिका कैसे उत्पन्न होती हैं ।

**ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ८ ॥**
**विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥**
**तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ९ ॥**

भाषा—जो प्रमेह जिस दोषकरके उल्बण होता है तिसकरके तिसी दोषके उल्बणकरके पिटिका होती है। यह पिटिका प्रमेहके विना दुष्टमेदके होनेसे प्रगट होती है। जबतक इनकी गांठ नहीं बधे तबतक नहीं दीखे। "ये यन्मयाः स्मृता मेहाः" इस पदके ऊपर मधुकोशवालेने शास्त्रार्थ लिखा है। ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखा ॥

असाध्यपिटिकालक्षण ।

**गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ॥**
**सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ १० ॥**

भाषा—गुदामें, हृदयमें, शिरमें, कंधामें, पीठमें, और मर्मस्थानमें उठी पिटिका और उपद्रवयुक्त हो तथा दुर्बलाग्नि पुरुषकी पिटिका त्याज्य है। पिटिकाके उपद्रव चरकने कहे हैं सो इस प्रकार "तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः। विसर्पमर्मसंरोधाः पिटिकानामुपद्रवाः ॥" इसका अर्थ सुगम है, इसीसे नहीं लिखा। शंका—क्योंजी! स्त्रियोंके प्रमेह क्यों नहीं होता? उत्तर—इसका कारण और ग्रंथोंमें इस प्रकार लिखा है "रजःप्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्ध्यति। कृत्स्नं शरीरदोषाश्च न प्रमेहंत्यतः स्त्रियः ॥" स्त्रियोंके महीनेके महीना रज बहा करे है इसीसे सब देह और दोष शुद्ध होते हैं इसीसे स्त्रियोंके प्रमेह नहीं होय और स्त्रियोंके प्रमेह होना कहीं नहीं देखा। यहभी एक बलवान् कारण है और सोमादिक रोग होते हैं। कदाचित् कोई कहे कि और रोगका होना असंभव है तो यह केवल झगडेका स्थान है, इसका किसीने यथार्थ निर्णय नहीं करा। प्रमेहनिवृत्तिके लक्षण सुश्रुतमें कहे हैं। यथा "प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं कटु तिक्तं च तदारोग्यं प्रचक्षते ॥" इति ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां प्रमेहमधुमेहपिटिकानिदानं समाप्तम् ।

# अथ मेदोनिदानम्।

कारण और सम्प्राप्ति।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः॥ मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते॥ १॥ मेदसा वृत्तमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्येन धातवः॥ मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्मसु॥ २॥

भाषा–दंड कसरतके न करनेसे, दिनमें सोनेसे और कफकारक पदार्थ सेवन करनेसे ऐसी रीतिसे वर्त्तनेवाले पुरुषका अन्नरस केवल मधुर कहिये आमरूप हो स्नेह करनेसे मेदको बढावे मेदकरके मार्ग बंद होनेसे अन्य धातु हाड, मज्जा, वीर्य आदि पुष्ट होती नहीं और मेद बढे तब वह पुरुष सर्व कर्म करनेको अशक्त होता है॥

मेदस्वी पुरुषके लक्षण।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः॥ युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गंध्यै-रल्पप्राणोऽल्पमैथुनः॥ ३॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वास्थिषु स्थितम्॥ अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्॥ ४॥

भाषा–"क्षुद्रश्वासः रूक्षायासोद्भवः" इत्यादिक पिछाडी कह आये सो तृषा, मोह, निद्रा, अकस्मात् श्वासका रोग, अंगग्लानि, भूख, पसीना और दुर्गंधि इन लक्षणकरके वह पुरुष युक्त होय उसकी शक्ति घट जाय और मैथुन करनेमें उत्साह न होय मेद यह सब प्राणिमात्रोंके उदर और हड्डियोंमें रहे हैं इसीसे मेदवाले पुरुषका पेट बढा करता है॥

मेदस्वीका अवस्थाविशेष।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः॥ चरन्संधुक्षयत्य-ग्निमाहारं शोषयत्यपि॥ ५॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि कांक्षति॥ विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यति-क्रमात्॥ ६॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ॥ एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा॥ ७॥

भाषा–मेदसे मार्ग रुक जानेसे कोठेमे पवनका संचार विशेष होय तब अग्निको यह पवन बढावे, भोजन करे, आहारको तुरन्त शोषण करे तब वह आहार शीघ्र पचकरके फिर जेमनेकी इच्छाको प्रगट करे और भोजन करनेमें कालका व्यतिक्रम

होनेसे भयंकर वातके रोग उत्पन्न होंय । ये अग्नि और वायु बडा उपद्रव करते हैं । जैसे दावानल ( अग्नि ) वनको जरावे है उसी प्रकार ये दोनों उस स्थूल ( मोटे ) पुरुषको जराते हैं ॥

अत्यंत मेद वढनेका परिणाम ।

**मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ॥**
**विकाशन् दारुणान् कृत्वा नाशयंत्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥**

भाषा—मेद अत्यन्त वढनेसे वायु आदि ये अकस्मात् भयंकर प्रमेह, पिटिका, ज्वर, भगंदर विद्रधि, वातरोग इत्यादि उत्पन्न करके शीघ्रही जीवका नाश करे ॥

स्थूललक्षण ।

**मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ॥**
**अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥**

भाषा—मेद और मांस ये अत्यन्त वढनेसे जिस पुरुषके कूले, पेट और स्तन ये थल थल हलें और उसके शरीरकी स्थूलता वढी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह ( होशयारी ) न रहे ऐसे मनुष्यको अतिस्थूल कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मेदोनिदान समाप्तम् ।

---

# अथ कार्श्यनिदानम् ।

प्रसंगवशसे कार्श्य ( क्षीण ) रोगका निदान ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं ।

**वातो रूक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् ॥ क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगोऽरतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता ॥ भीतिर्धनादिचिंता च कार्श्यकारणमीरितम् ॥ २ ॥ क्रोधोऽतिमैथुनं चैव शुक्रव्याधिस्तथैव च ॥ कार्श्यस्य हेतवः प्रोक्ताः समस्तैरपि तांत्रिकैः ॥ ३ ॥**

भाषा—कुपित वायु रूखा अन्न ( चना, कांगनी, सामखि आदि ), रूक्षपान (औटाया जल आदि ), लंघन, थोडा भोजन, क्रियातियोग कहिये वमन विरेचनका बहुत होना, शोक बंधुवियोगादिक, मूत्र मल आदि वेगोंका रोकना, निद्राका , नित्यही रोगी रहना, सर्वदा अरति होना, व्यायाम ( दंड, कसरत और

मार्गका चलना आदि श्रम ), अतिभय, धन आदिकी चिंता, क्रोध, अति मैथुन शुक्रव्याधि ( प्रमेहरोग आदिक ) ये सर्व कार्य क्षीण होनेके कारण वैद्य कहते हैं ॥

कृशमनुष्यके लक्षण ।

**शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः ॥**
**अस्थिशोषोऽतिकृशतः स्थूलपर्वनरो मतः ॥ ४ ॥**

भाषा-जिसके कूले, पेट, गरदन और धमनी कहिये नाडियोंका जाल ये सब सूख जांय तथा हड्डी सूख जांय और पर्व कहिये जोड मोटे होंय वह पुरुष कृश ( लटा ) कहाता है ॥

अतिकृशको वर्जनीय वस्तु ।

**व्यायाममतिसौहित्यं क्षुत्पिपासा महौषधम् ॥**
**न कृशः सहते तद्वदतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ ५ ॥**

भाषा-व्यायाम ( दंड कसरत ) का करना, अति सौहित्य ( अच्छी बात ), भूख, प्यास, उत्कट औषध तथा शीतलता, गरमी और मैथुन इनको कृश मनुष्य नहीं सह सके है इसीसे इनको त्याग दे ॥

अतिकृशके जो रोग होवे हैं उनको कहते हैं ।

**मोहः कासः क्षयः श्वासगुल्मार्शांस्युदराणि च ॥**
**भृशं कृशं प्रधावंति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः ॥ ६ ॥**

भाषा-जो मनुष्य ज्वरादि रोगसे कृश होय अथवा वातरूक्षान्नपानादिकसे कृश होय और वह कुपथ्य करे तौ इतने रोग होंय जो विदाही और अभिष्यंदी वस्तु खाय तौ प्लीह ( तापतिल्ली ) होय और खटाई खाय तौ खासी होय और अति मैथुन करे तौ क्षईका रोग होय, और व्यायाम शीतल भोजनपानादिक करे तौ श्वासरोग होय, जो रूखा अन्नपान, कडुवा, खट्टा भक्षण और शीतल भारी चिकना आदिका सेवन करे तौ गुल्म ( गोला ) होय और अर्श ( बवासीर ) कारक पदार्थ सेवनसे बवासीर होय । इसी प्रकार उदररोग संग्रहणी आदि रोग होते है । अब कहते हैं कि कोई कृशभी बलवान् होय है इसमें क्या हेतु है ॥

**आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् ॥**
**मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽपि महाबलः ॥ ७ ॥**

भाषा-गर्भ रहनेके समय शुक्रका भाग अधिक होय और मेदका भाग थोडा होय तौ मेद थोडा होनेसे तो कृश होय और शुक्राधिक्य होनेसे बलवान् होय ॥

कस्याचित् स्थूलस्यापि तादृक् बलं न दृश्यते तत्र हेतुमाह ।

**मेदसोंऽशोऽधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् ॥**
**स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ८ ॥**

भाषा–गर्भ रहते समय मेदका भाग अधिक होय और शुक्रका भाग थोडा होय तौ वह पुष्टभी होय परंतु बलहीन होता है ॥

दृष्टान्त ।

**यथा पिपीलिका स्वल्पा यथा च वरटी बलात् ॥**
**स्वतश्चतुर्गुणं भारं नीत्वा गच्छति तन्मुखम् ॥ ९ ॥**

भाषा–जैसे पिपीलिका ( चेंटी ) आप अतिकृश है और खानेकी वस्तु दाल चांवल आदि भारीभी है परंतु उनको खींचकर बिलमें ले जाती है और वरटी ( पीली मांखी ) झींगर आदि आपसे चौगुने भारीभी हैं परंतु खींचकर अपने स्थानमें ले जाती है । इसी प्रकार बलवान् पुरुष जानना ॥

असाध्यकार्श्यमाह ।

**स्वभावात् कृशकायो यः स्वभावादल्पपावकः ॥**
**स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ १० ॥**

भाषा–जिसका स्वतः स्वभावसे कृश शरीर है और जिसकी स्वभावसे मंदाग्नि है और जो स्वभावसे बलहीन है उसकी चिकित्सा नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कार्श्यनिदान समाप्तम् ।

---

# अथ उदररोगनिदानम् ।

अग्निका दुष्ट होना यही उदररोगका विशेषकरके कारण है ।

**रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ॥**
**अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥**

भाषा–अग्नि मन्द होनेसे सब रोग होते हैं और उदर तौ विशेषकरके होता है

---

१ " तेषामग्निबले हीने कुप्यंति पवनादयः । " इति । २ " तात्स्थ्यतद्धर्मताभ्यां च तत्समीपतयापि च । तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरेषा चतुर्विधा ॥ " इति ।

कारण यह है कि अग्निमांद्य यह त्रिदोषजनक है और अजीर्णसे मलिन अन्नसे ( विरुद्ध अध्यशनादिक ) और मल ( दोष तथा पुरीषादिक ) इनके संचयसे उदररोग होता है। इस जगह उदरशब्दकरके उदरस्थित रोग जानने सो ग्रन्थान्तरमें लिखा है॥

उदरकी सम्प्राप्ति।

**रुद्ध्वा स्वेदांबुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः॥**
**प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयंत्युदरं नृणाम्॥ २॥**

भाषा—वातादिदोष स्वेद ( पसीना ) वहनेवाली और जलको वहनेवाली नाडियोंके मार्गको रुद्ध ( रोक ) कर और वे दोष बढकर प्राणवायु, अग्नि और अपानवायु इनको अत्यन्त दुष्ट कर मनुष्योंके उदररोग उत्पन्न करते हैं। उदररोगका पूर्वरूप सुश्रुतमें लिखा है। " तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे तु राज्यः। जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौ रुजः पादगतश्च शोथः॥ " इति॥

उदरके सामान्यरूप।

**आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता॥**
**शोथः सदनमंगानां संगो वातपुरीषयोः॥**
**दाहस्तंद्रा च सर्वेषु जठरेषु भवंति हि॥ ३॥**

भाषा—अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता, मंदाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदरमें होते हैं॥

उदररोगसंख्या।

**पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः॥**
**संभवंत्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् शृणु॥ ४॥**

भाषा—पृथक् दोषोंसे अर्थात् वात, पित्त, कफसे, सन्निपातसे सन्निपातोदर, प्लीहोदर १ बद्धोदर १ क्षतोदर १ और जलोदर १ सब मिलाकर ८ भये। उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहते हैं॥

तिनमें वातोदरके लक्षण।

**तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु॥ ५॥ कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम्॥ शुष्ककासोऽगमर्दोऽधो गुरुता**

१ " अतिसंचितदोषाणां पापकर्म च कुर्वताम्। उदराण्युपजायंते मंदाग्नीनां विशेषतः॥ स्वेदवहाना मेदोमूलं लोमकूपश्च। " इति। २ " उदकवहानां स्रोतसां तालुमूलं क्लोम च " इति।

मलसंग्रहः ॥ ६ ॥ श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद् वृद्धिह्रास-वत् ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ ७ ॥ आध्मा-तदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥ वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

भाषा-वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि और कूख इनमें सूजन होय; संधियोंका टूटना तथा कूख, पसवाडे, पेट, कमर, पीठ इनमें पीडा; सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचेके भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा नख नेत्रादिकका काला लाल होना, पेट अकस्मात् ( निमित्तके विना ) बडा हो जाय, छोटा हो जाय, सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेट चारों तरफ बारीक काली शिराओं ( नाडियों ) से व्याप्त होय, चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय इस उदरमें वायु चारों तरफ डोलकर शूल करे तथा गूंजे ॥

पित्तोदरके लक्षण ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ॥ भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ॥ धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

भाषा-पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुवासा, भ्रम, अतिसार, त्वगादिक ( नख नेत्र ) इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीली, तांमेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे सब देहमें दाह होय, आंतोंसे धुआंसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अथवा जलोदरत्वको प्राप्त हो और उसमें घोर पीडा होय ॥

कफोदरके लक्षण ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम् ॥ निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता॥११॥उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्ल-राजीततं महत् ॥ चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शं गुरु स्थिरम्॥१२॥

भाषा-कफके उदररोगमें हाथ पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड जाय, सूजन होय, अंग भारी हो जाय, निद्रा आवे, वमन होगी ऐसा मालूम होय, अरुचि होय, श्वास, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सपेद हों, पेट निश्चल चिकना सपेद नाडियोंसे व्याप्त हो, इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेड करडा और शीतल मालूम होय तथा भारी और स्थिर होय ॥

सन्निपातोदरके लक्षण।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥
यस्मै प्रयच्छंत्यरयो गरांश्च दुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १३ ॥
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिंगम् ॥
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने वा विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १४ ॥
स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति सेवया च ॥
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव-

भाषा-खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश ( वार ). मल, मूत्र, आर्त्तव ( रजोदर्शका रुधिर ) मिला अन्नपान देय अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु ( जहरमिला, मछली तिनका पत्ता आदि औटा हुआ ऐसा जल ) और दूषीविषं[1] ( मन्दविष ) इनको सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं, वे शीतकालमें अथवा शीतल पवन चले उस समय अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेषकरके कोपको प्राप्त हो और दाह होय। इसका कारण यह है कि उस समय दूषीविषका कोप होता है। वह रोगी निरंतर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, देहका पीला वर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय तो इसको दूष्योदर[2] ऐसा कहते हैं ॥

प्लीहोदरके लक्षण।

प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥
विदाह्यभिष्यंदिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ॥
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धो प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १६ ॥
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः ॥ १७ ॥

भाषा-अब प्लीहोदरके लक्षण कहता हूं तू सून। विदाही ( वंश-करीरादि ) अर्थात् दाह करनेवाले और अभिष्यंदी ( दध्यादि ) अर्थात् स्रोत ( छिद्र ) रोकनेवाले ऐसे अन्न निरंतर सेवन करनेवाले पुरुषके अत्यंत दुष्ट भये जो रुधिर और कफ बढकर प्लीह ( तापतिल्ली ) को बढावे इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं।

---

१ यदुक्तम्-" जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निना वाऽऽतपशोषितं वा। स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ " इति। २ एतदेव सन्निपातोदरं दूष्योदरं कीर्तितं न पुनरधिकं इत्यर्थः। रक्तं दूष्य दूषयित्वा भवतीति दूष्योदरं किं वा परस्परं दूषयतीति दोषा एव दूष्यास्तैः कृतमुदरं दूष्योदरम्।

यह बांई तरफ बढता है । इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है, देहमें मंदज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हैं, बल क्षीण होय, अत्यंत पीला वर्ण होय ॥

यकृद्दाल्युदरके लक्षण ।

**सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥**

भाषा–दहने तरफ जो यकृत् कहिये कलेजा है वह दुष्ट कहिये रोगयुक्त होनेसे प्लीहोदरके समान उदर होय उसको यकृद्दाल्युदर कहते हैं । दोषोंकरके यकृत्का भेद होता है । इसीसे यकृद्दालि उदर कहते हैं ॥

इसमें दोषोंका संबंध कहते हैं ।

**उदावर्त्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ॥**
**गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥ १९ ॥**

भाषा–उदावर्त्त, शूल, अफरा इनसे वायु, मोह, प्यास, ज्वर इनसे पित्त और भारीपना, अरुचि, कठिनता इनसे कफ ऐसा क्रमपूर्वक दोषोंका संबंध जानना ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण ।

**यस्यांत्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ॥**
**संचीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥२०॥**
**निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादतिचाल्पमल्पम् ॥**
**हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २१ ॥**

भाषा–जिस पुरुषकी आंत उपलेप कहिये गाढे अन्नकरके (शाकादिक) अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडेकरके बद्ध हो जाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बढे है उसी प्रकार बढे और वह मल बडे कष्टसे गुदाद्वारा थोडा २ निकले । जब मलका निकलना बंद हो जाय तब मल दोषोंकरके गुदासे ऊपर आवे इसीसे उदर बढे है अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि होय । इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं । अथवा गुदाके ऊपर आंतोंका बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं यह चरकका मत है ॥

क्षतोदरके लक्षण ।

**शल्यं तथान्नोपहितं यदंत्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ॥**
**तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥२२॥**

१ यकृद्दालयति दोषैर्भेदयतीति यकृद्दाल्युदरम् ।

**नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ॥**
**एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टम्–**

भाषा–कांटा धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चला जाय अर्थात् पक्वाशयमें विलोम ( टेढा तिरछा ) चला जाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे अथवा जंभाई अति अशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आंत फट जाय सो चरकमें लिखाभी है। उन फटे आंतोंसे गलित पानीके समान स्राव पुनः गुदाके मार्ग होकर झरे; नाभिके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद ( चीरने ) कीसी पीडासे अत्यन्य व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रन्थांतरमें परिस्रावि उदर कहते हैं और इसीको छिद्रोदर कहते हैं यह गयदासका मत है॥

जलोदरकी उत्पत्तिसह लक्षण।

**दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २३**
**यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथ वा निरूढः ॥**
**पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि॥२४॥**
**स्नेहोपलिप्तेष्वथ वापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥**
**स्निग्धं महत्तत्परिवृद्धनाभिसमाततं पूर्णमिवांबुना च ॥**
**यथा दृतिः क्षुभ्यति कंपते च शुब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥२५॥**

भाषा–अब जलोदर कैसे होता है उसको कहते हैं। स्नेह ( घृत तैलादि ) पान करा होय अथवा अनुवासन बस्ति करी हो, वमन करा हो अथवा दस्त करा हो अथवा निरूहबस्ति करी हो ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल वहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं। वे उदक वहनेवाले स्रोत ( मार्ग ) स्नेहसे उपलिप्त ( चीकने ) होनेसे पूर्ववत् ( अर्थात् अन्नरस उपस्नेहन्यायकरके अर्थात् इनको बाहर लायकर उदरको उत्पन्न करे ) जलोदर होता है। उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय, नाभिके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पखालमे जल हले है उसी प्रकार हले, गुड्गुड् शब्द करे, कांपे इसको जलोदर अर्थात् जलंधर कहते हैं॥

साध्यासाध्यविचार।

**जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः ॥**
**बलिनस्तदजातांबु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २६ ॥**

---

१ "शर्करातृणकाष्ठास्थिकंटकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृभयात्यशनेन वा ॥ इति।

भाषा–सर्व प्रकारके उदर जन्मसेही प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं। बलवान् पुरुषके नवीन प्रगट भया हो और उसमें पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसा बडे यत्नसे साध्य होता है। पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसे उदरके लक्षण चरकमें कहे हैं॥

**अशोथमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम्॥ २७॥ सदा गुडगुडायंतं शिराजालगवाक्षितम्॥ नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति॥ २८॥ हृद्वंक्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः॥ कर्कशं सृजतो पानं नातिमन्दे च पावके॥ २९॥ लोलस्याविरमेवास्ये मूत्रेऽल्पे संहते विशि॥ अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः॥ ३०॥**

जातोदकके लक्षणभी चरकमें इस प्रकार कहे हैं सो लिखते हैं॥

यथा।

**पयःपूर्णा दृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु॥**
**अप्रव्यक्तशिरं शूनं नितान्तमुदरं महत्॥ ३१॥**
**आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृत्स्रुतम्॥**
**जातोदकस्य लिंगं स्यान्मंदोऽग्निः पांडुतापि च॥ ३२॥**

इति।

**पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा॥**
**प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रांत्रं चोदरं नृणाम्॥ ३३॥**

भाषा–बद्धगुदोदर १५ दिवसके पिछाडी असाध्य होता है, उसी प्रकार सब प्रकारके उदय ( पानी ) उत्पन्न होनेसे नाशकारक होते हैं, और छिद्रांत्रोदर यह प्रायः नाशक होता है। कदाचित् शल्य अथवा शस्त्रचिकित्सा जैसी होनी चाहिये तैसी होय तो उदक ( पानी ) प्रगट भया उदररोग छिद्रांत्र अथवा बद्धगुद साध्य होता है यह प्रायः इस पदसे सूचना करी॥

असाध्यलक्षण।

**शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्॥**
**बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत्॥ ३४॥**

भाषा–जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होय. लिंग टेढा हो गया हो, पेटकी त्वचा गीली तथा पतली हो गई होय, बल, रुधिर, मांस और अग्नि ये जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा रोगी त्याज्य है॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

**पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ॥**
**विरिक्तं चाप्युदीरणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥**

भाषा–पार्श्वभंग ( पसरियोमे पीडा ), अन्नमें अरुचि, शोथ, अतिसार इनसे पीडित और दस्त करानेसे जिसका पेट फिर पानीसे भर जाय ऐसे उदररोगीको वैद्य त्याग देय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां उदररोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ शोथरोगनिदानम् ।

शोथकी संप्राप्ति ।

**रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिःशिराः ॥**
**नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥**
**उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ १ ॥**

भाषा–कुपित भई वायु स्वकारणसे दुष्ट भये रक्तपित्तकफको बाह्य शिरा ( बाहरकी नाडियों ) में प्राप्त हो तब उनकी गति बंद करे इसीसे वह पवन त्वचा और मांस इनके आश्रयसे सूजन उत्पन्न करे । वह सूजन ऊंची और कठिन होय । इसको रक्तसहित त्रिदोषोंका संबंध है अर्थात् सन्निपातात्मक ऐसा कहते हैं । " त्वङ्मांससंश्रयम् " इस पदसे व्रणशोथ जो शोथका भेद है सो दिखाया क्योंकि व्रणका संभव आठ व्रणवस्तुओंमें होनेसे सो कहाभी है । " त्वङ्मांसशिरास्नायुअस्थिसन्धिकोष्ठ मर्माणि इति अष्टौ व्रणवस्तूनि भवंति " इति ॥

**सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥**
**दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥ २ ॥**

भाषा–वह सूजन कारणभेदसे कार्यभेद होकर नौ प्रकारकी होती है । यथा अलग अलग दोषोंसे ३, द्वंद्वज ३, सन्निपातज १, अभिघातज १ और विषसे १ ऐसे सब मिलकर नौ प्रकारका शोथरोग भया ॥

निदान ।

**शुद्धामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ॥**

दध्यामनृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ३ ॥
अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः ॥
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥४॥

भाषा–वमन आदि, ज्वरादिक, अभोजन ( विगुण भोजन ) इनसे जो कृश और बलहीन मनुष्योंके क्षारादिकका सेवन सूजनेका कारण होता है । तहां नोन, खटाई, तीखी, उष्ण, भारी वस्तुओंमें दही, अपक्व मट्टी, निषिद्ध साग, विरुद्ध ( क्षीरमत्स्यादिक ), संयोगजविषसे दूषित अन्नके सेवन करनेसे, ववासीर, दंड कसरतके न करनेसे, शोधनके योग्य दोषोंके न शोधनेसे, हृदयादि मर्मोंके दोषजन्य उपघातसे, कच्चा गर्भपात होना, विषमप्रसूति, वमनादि पंच कर्मोंका मिथ्या योग ये सर्व दोषज सूजनका कारण कहे हैं ॥

पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपं क्षवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ५ ॥

भाषा–संताप, नसोंकी तननेके समान पीडा, देह भारी ये लक्षण सूजन होनेवाले पुरुषके होते हैं ॥

सामान्यलक्षण ।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्मा च शिरातनुत्वम् ॥
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

भाषा–अंग भारी हो, चित्तमें स्वस्थता न होना, ऊंची सूजन और दाह, नसें पतली हो जांय, रोमांच और देहका रंग बदल जाय ये सूजनके सामान्य लक्षण हैं ॥

वातज शोथके लक्षण ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ॥
प्रशाम्यति प्रोन्नमतिप्रपीडितो दिवाबली स्याच्छ्वयथुःसमीरणात्॥७

भाषा–वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली हो जाय, कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा शून्य पड जाय, भिन्न भिन्न वेदना हो अथवा रोमांच और पीडा हो, कदाचित् निमित्तके विना शांत हो जाय उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे ॥

पित्तज शोथके लक्षण ।

मृदुः सगंधोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ॥
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत् स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान्॥८॥

भाषा-पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गंधयुक्त, काली, पीली और लाल होय। उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय, दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल हों, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होता है ॥

कफज शोथके लक्षण।

**गुरुः स्थिरः पांडुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमांद्यकृत् ॥**
**सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥९॥**

भाषा-कफकी सूजन भारी, स्थिर, पीली होती है। इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मन्दाग्नि ये लक्षण होंय तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमे होय, इसको दबानेसे ऊपरको नही उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता हो ॥

द्वंद्वज और संनिपातज शोथके लक्षण।

**निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्द्विदोषजः ॥**
**सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥**

भाषा-दो दोषोंके लक्षण और कारण एकत्र मिलनेसे द्वंद्वज-शोथ जानना और सन्निपातसे सूजन होय उसमें वातादिक तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

अभिघातज शोथके लक्षण।

**अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ॥**
**हिमानिलो दध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥**
**रसः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ॥**
**भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥**

भाषा-काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे फूटनेसे अथवा घावके होनेसे, आदिशब्दसे लकडी आदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलायेका तेल लग जानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय वह चारों तरफ फैल जाय, अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेषकरके इससे पित्तके लक्षण होते हैं ॥

विषज शोथके लक्षण।

**विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ॥ दंष्ट्रादंतनखाघाता-**
**दविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्र-**

**संकरात् ॥ विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ मृदुश्चलोऽवलंबी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥**

भाषा–विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे अथवा निर्विष ( विषरहित मनुष्यादि ) प्राणियोंके डाढ, दांत नख लगनेसे अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगनेसे अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे अथवा संयोगज विष अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होती है वह विषज कहलाती है । वह सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है ॥

जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करे उनको कहते हैं ।

**दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वंत्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥**
**पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः ॥**
**कृत्स्नदेहमनुप्राप्ता कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ १६ ॥**

भाषा–आमाशयस्थित दोष ऊपर ( उरःस्थानादिकोंमें ) सूजनको करें, पक्वाशयमें स्थित दोष मध्य कहिये उर और पक्वाशय इन दोनोंके वीचमें सूजन करें, मलस्थानगत दोष नीचेके स्थान ( पैर आदि ) में सूजन करें और सर्व देहमे दोष स्थित होनेसे सब देहमें सूजनको करते हैं ॥

सूजनके कृच्छ्रादिभेद ।

**यो मध्यदेशे श्वयथुः सकष्टः सर्वगश्च यः ॥**
**अर्धोऽगेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥**

भाषा–जो सूजन मध्यदेशमें तथा सब देशमें होय वह कष्टसाध्य है और सूजन नीचेके अंगमें प्रगट हो ऊपरको चढे वह असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

**श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ॥**
**यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥**

भाषा–श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर ये लक्षण होंय और जिसकी अन्नमें अरुचि होय ऐसे सूजनवाले रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

**अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ॥**
**पुरुषं हंति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥**
**नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ १९ ॥**

भाषा-अन्य रोगोंके उपद्रवसे प्रगट न भई हो ऐसी सूजन पहिले पैरोंमे उत्पन्न हो फिर मुख आदि ऊपरके स्थानोंमें प्राप्त होय उसको उलटी सूजन कहते हैं। वह पुरुषका नाश करे और जो प्रथम मुखपर होकर पीछे पैरोंपर उतरे वह सूजन स्त्रियोंकी घातक है और जो प्रथम गुदामें उत्पन्न होकर सब देहमे व्याप्त हो वह स्त्रीपुरुष दोनोंकी नाशक है । नवीन और उपद्रवरहित जो सूजन होय वह साध्य है और " अधोऽगेऽरिष्टसंभूतः " इत्यादि श्लोकमें कही हुई सूजन असाध्य है ।

शोथके उपद्रव ।

**छर्दिस्तृष्णारुचिः श्वासो ज्वरोऽतीसार एव च ॥**
**सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंग्रहः ॥ २० ॥**

भाषा-छर्दि, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ये सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरकमें लिखा है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शोथरोगनिदान समाप्तम् ।

# अथांडवृद्धिनिदानम् ।

सम्प्राप्ति ।

**क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ॥**
**मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ॥**
**प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥ १ ॥**

भाषा-कुपित भई अधोगमनशील ( नीचे विचरनेवाली ) तथा सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाली वायु कुक्षमें संचार करती हुई, अंडकोश और वंक्षण ( अंडकोश और जंघाकी संधि ) से अंडमे आयकर अंडकी वृद्धि और कोश इनके वहनेवाली धमनी ( नाडी ) को दुष्ट कर अंडकी ( दोनों अंडकी अथवा एक ओरके अंडकी ) वृद्धि करती है ॥

**दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः ॥**
**मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २ ॥**

भाषा-वह वृद्धिरोग तीनोंसे ३, रुधिरसे १, मेद १, मूत्र १ और आंतोंसे १ ऐसा सात प्रकारका है । मूत्रज और अंत्रज वृद्धि ये दोनों वायुसे होते हैं । परन्तु

इन दोनोंके निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे पृथक् ग्रहण करा है वह लिखाभी है। " मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् । " इति ॥

वात, पित्त, कफ और भेद इनसे प्रगट भई वृद्धिके लक्षण ।

**वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥**
**कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगैश्च पित्तजः ॥**
**कफवन्मेदसो वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ३ ॥**

भाषा-वातसे भरी मसक जैसी हाथसे लगनेसे मालूम होय ऐसा मालूम होय । रूक्ष और विना कारण दूखने लगे, वह वातकी अंडवृद्धि जाननी । काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते होंय उस अंडवृद्धिको पित्तकी तथा रक्तकी कहते हैं । मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु ( नरम ) तथा तालफलके समान हो अर्थात् पीले रंगकी और गोल होती है ॥

पित्तकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

**पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ४ ॥**

भाषा-पित्तकी अंडवृद्धि पके गूलरके समान होती है तथा दाह और गरमी तथा पकनेवाली होती है ॥

कफकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

**कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंडूमान्कठिनोऽल्परुक् ॥**

भाषा-कफसे अंडवृद्धि शीतल, भारी, चिकनी तथा खुजलीयुक्त, कठिन और थोडी पीडायुक्त होती है ॥

मूत्रवृद्धिके लक्षण ।

**मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स च गच्छति ॥ ५ ॥**
**अंभोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ॥**
**मूत्रकृच्छ्रमधः स्याच्च चलयन्फलकोशयोः ॥ ६ ॥**

भाषा-मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह रोग होता है । वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरी पखालके समान डबकडबक हले तथा बजे और उसमें पीडा थोडी होय, हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होंय ॥

अंत्रवृद्धिके लक्षण ।

**वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ धारणे रणभाराध्व-**

**विषमांगप्रवर्त्तने ॥ ७ ॥ क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रांत्रावयवं यदा ॥ पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ कुर्याद्वंक्षणसंधिस्थो ग्रंथ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ८ ॥**

भाषा-वातकोपकारक आहारके सेवन करनेसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे, उपस्थित मूत्रादि वेगोंके धारणसे. अप्राप्तवेग अर्थात् करनेकी इच्छा न होय उसको बलपूर्वक प्रेरणा करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा अर्थात् टेढा तिरछा अंग करके गमनादिक करनेसे, बलवान्से वैर करना, कठिन धनुषका ईंचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपित भया वायु छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको बिगाडकर अर्थात् उनका संकोच कर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे ले जाय तब वंक्षणसंधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे ॥

इसकी औषध न करनेका परिणाम ।

**उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तंभवतीं स वायुः ॥ प्रपीडितोऽतः स्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥९॥**

भाषा-जिस अंडवृद्धिसे अफरा होय, पीडा होय, जडता होय, उसकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् औषध न करनेसे तथा अंडकोशोंके दाबनेसे जो वायु कोंकों शब्द करे तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अंडोंको फुलाय दे ये लक्षण होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

**क्षुद्रांत्रावयवाञ्छ्लेष्मा मुष्कयोर्वातसंचयात् ॥**
**अंत्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥**

भाषा-छोटी आंतोंके अवयव ( अंगवाला ) कफवातके संचयसे मुष्कके विषे प्राप्त होय तथा जिसमें वातके लक्षण कहे वे सब मिलते होंय वह अंडवृद्धि असाध्य है । वध्मे अर्थात् वदरोगका निदान ग्रन्थान्तरमे लिखा है ॥

वध्मरोगनिदान ।

**अत्यभिष्यंदिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥ ११ ॥ करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणसन्धिषु ॥ ज्वरशूलांगदाहाढ्यं तं वध्ममिति निर्दिशेत् ॥ १२ ॥ यस्य पूर्वं फिरंगाख्यो रोगो भूत्वा प्रशाम्यति ॥ तस्य जंतोर्वध्मरोगमित्युक्तं सुश्रुतादिभिः ॥ १३ ॥**

**तथोष्णवातजुष्टस्य मेढ्रव्रणयुतस्य च ॥ तस्य पुंसो वध्मरोगं प्रवदन्ति भिषग्वराः ॥ १४ ॥**

भाषा–अभिष्यंदि वस्तुके खानेसे, भारी अन्नके खानेसे, कच्चे अन्नके खानेसे, वृद्धिको प्राप्त भये दोष अथवा " अत्याभिष्यंदिगुर्वाम० " इस जगह " अत्यभिष्यंदिगुर्वन्नशुष्कपूज्यामिषाशनात् । " ऐसाभी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अन्नके खानेसे तथा सूखा और पूज्य कहिये गौ आदिके मांस खानेसे दोष ( वात, पित्त, कफ ) कुपित होकर वंक्षणकी सन्धियोंमें अर्थात् वस्तिस्थानके समीप जिनको नरे कहते हैं उनमे सूजनको प्रगट करे उस सूजनके होनेसे ज्वर होय तथा सूजनमें पीडा होय, अंगोंमें अत्यंत दाह होय । जिस मनुष्यके पहिले फिरंग ( सुजाक ) का रोग होकर शांत हो गया होय उसके यह बदका रोग होता है । अथवा गरमीवाले पुरुषके लिंगमें व्रण ( घाव ) होय उसके यह बदरोग होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अंडवृद्धिनिदानं समाप्तम् ।

---

## अथ गलगंडनिदानम् ।

**निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥**
**महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगंडं तमादिशेत् ॥ १ ॥**

भाषा–जिसके गलेमें अनुबंधयुक्त बडी अथवा छोटी अंडकोशके समान सूजन होकर लटके उसको गलगंड कहते हैं ॥

गलगंडकी संप्राप्ति ।

**वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः ॥**
**कुर्वन्ति गंडं क्रमशस्त्वलिंगैः समन्वितं तं गलगंडमाहुः ॥ २ ॥**

भाषा–जिसके गलेमें दुष्ट भये वा फ और उसी प्रकार मेद गलेकी दोनों मन्यानाडियोंका आश्रय लेकर क्रमसे आप अपने लक्षणसंयुक्त गंड (गोला ) उत्पन्न करे है उसको गलगंडरोग कहते हैं । यह रोग वात, कफ और मेद इन कारणोंसे तीन प्रकारका है । यह रोग अपनेही स्वभावसे पैत्तिक नहीं होता है । जैसे चातुर्थिकज्वर अपने प्रभावसे जंघामें कफका और मस्तकमें वातका प्रथम आता है इसमेंभी पित्तका नहीं होता है । उसी प्रकार इस रोगमेंभी जानो ॥

वातिक गलगंडके लक्षण।

**तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ॥**
**पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥**
**वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥३॥**

भाषा-वातकी गलगंड काली नसोंसे व्याप्त होय और उसमें सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, उसका रंग काला और लाल होय तथा कठोर होय, बहुतकालमें बढे तथा पके नहीं और जो पके तो कदाचित् यदृच्छापूर्वक पके उस रोगीके मुखमे विरसता होय तथा तालु व गलेमें शोष होय ॥

कफज गलगंडके लक्षण।

**स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकंडूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥४॥**
**चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥**
**माधुर्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥**

भाषा-कफकी गलगंड स्थिर, त्वचाके रंगके समान वर्ण होय, भारी हो, खुजली बहुत चले, शीतल और बडी होती है। वह बहुत दिनमें बढे और बहुत कालमें पके, पीडा थोडी होय, मुखमे मिठास होय तथा गलेमें और तालुएमें कफ लिहसासा होय ॥

मेदज गलगंडके लक्षण।

**स्निग्धो गुरुः पांडुरनिष्टगंधो मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकंडूः ॥**
**प्रलंबतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥**
**स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥६॥**

भाषा-मेदसे प्रगट गलगंड चिकना होय, भारी, पीलावर्ण, दुर्गंधयुक्त, मंद पीडा करनेवाला और अत्यन्त खुजली चले, वह तूंबीफलके समान लंबा होय, उसकी जड छोटी होय और देहानुरूप क्षय और वृद्धि इनसे युक्त होय अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण हो जाय, देहके बढनेसे बढ जाय, उसका मुख तेल लगा होय ऐसा चिकना होय और बोलते समय गलेसे दो शब्द निकलें ॥

असाध्य लक्षण।

**कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रंसंवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥**
**क्षीणं च वैद्यो गलगंडजुष्टं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत्तु ॥ ७ ॥**

भाषा-बडे कष्टसे श्वास लेनेवाला, नरम शरीरवाला, जिसके गलगंड होकर वर्ष

दिन व्यतीत हो गया हो और अरुचिसे पीडित क्षीण हो गया होय और स्वरभेद-युक्त ऐसे गलगंडपीडित मनुष्यको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां गलगंडनिदानं समाप्तम् ।

# अथ गंडमालापचीनिदानम् ।

**कर्कंधुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥**
**मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैः स्याद्गंडमाला बहुभिस्तु गंडैः ॥ १ ॥**

भाषा—मेद और कफ इनसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी, मन्यानाडीमे, गलेमें और वंक्षण ( जानुमेढ्रसंधि ) इन ठिकाने छोटे वेरके बराबर, वडे वेरके समान, आमलेके समान ऐसी अनेक प्रकारकी गंड होती हैं। वे बहुत दिनमें हौले २ पकें उनको गंडमाला कहते हैं ॥

अपचीके लक्षण ।

**ते ग्रंथयः केचिदवाप्तपाका स्रवन्ति नश्यंति भवन्ति चान्ये ॥**
**कालानुबंधं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदंति केचित् ॥ २ ॥**

भाषा—अब गंडमालाका भेद अपची है उसको कहते हैं । पूर्वोक्त गंडमालाकी गांठ पके नहीं अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन उठे ऐसी पीडा बहुत दिन रहे उसको कोई अपची ऐसा कहते हैं ॥

असाध्य और साध्य लक्षण ।

**साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता न साध्या ॥३॥**

भाषा—पूर्वोक्त अपची रोग साध्य है और उसमें पीनस होय, पसवाडोंमें शूल, खांसी, ज्वर वमन ये होंय तो वह अपची असाध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां गंडमालापचीनिदानं समाप्तम् ।

# अथ ग्रंथिनिदानम् ।

**वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥**
**वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वंत्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥**

भाषा-अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष मांस, रुधिर और मेद, उसी प्रकार शिरा (नस) इनको दुष्ट कर (इस जगह दुष्टिका अर्थ वृद्धि करना चाहिये क्षयरूप न करना चाहिये कारण इसका यह है कि क्षीण विकारोंकी सामर्थ्य रोग करनेकी नही होती है।) गोल, ऊंची, गांठके समान अथवा कठिन सूजनको उत्पन्न करे उसको ग्रंथि (गांठ) ऐसा कहते हैं॥

वातज ग्रंथिके लक्षण।

**आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च॥**
**कृष्णो गुरुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम्॥२॥**

भाषा-वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, सूई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय. फोरनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण हो, नरम हो, वस्तिके चोडी होय और उसके समान चोडी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले॥

पित्तकी ग्रंथिके लक्षण।

**दंदह्यते धूम्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि॥**
**रक्तः सपीतोऽप्यथ वापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्टमतीव चास्रम्॥३॥**

भाषा-पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यन्त दाह करे, आतासे धूंआ निकलतासा मालूम हो, चूष्यते कहिये मानो सिंगी लगायके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पका मालूम हो, अग्निके समान जलीसी मालूम होय, उस गाठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले है॥

कफकी ग्रंथिके लक्षण।

**शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकंडूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः॥**
**चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम्॥४॥**

भाषा-कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (कोई किंचित् विवर्ण हो ऐसा कहते हैं), थोडी पीडा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन वडी होय और चिरकालमें वढनेवाली होय। फूटनेसे उसमेंसे सपेद गाढी राध निकले॥

मेदज ग्रंथिके लक्षण।

**शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽरुजश्च॥**
**मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः॥५॥**

भाषा–मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण हो जाय चिकनी, बडी, खुजलीयुक्त, पीडारहित होती है और जब वह फूट जाय तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले ॥

शिराज ग्रंथिके लक्षण ।

**व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ॥**
**संकुच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥६॥**

भाषा–निर्बल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊंची गांठको शीघ्र प्रगट करे ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

**ग्रंथिः शिराजः स च कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥**
**अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ ७ ॥**

भाषा–वह शिरा कहिये नसकी गांठ कृच्छ्रसाध्य है। यदि वह पीडायुक्त चंचल होय तो वह गांठ साध्य है और पीडारहित तथा निश्चय बडी और मर्मस्थानमें प्रगट भई होय तो वह असाध्य है उसको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां ग्रंथिनिदानं समाप्तम् ।

---

# अथार्बुदनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

**गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ॥**
**वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥**
**कुर्वंति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥**

भाषा–शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये दोष मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मंद, पीडायुक्त, यह ग्रंथिरोगसे बडी होय है, बडी जिसकी जड होय, बहु कालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गांठ उठे। उसको वैद्य अर्बुद ऐसा कहते हैं ॥

**वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ॥**
**तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवंति ॥ २ ॥**

भाषा–वह अर्बुदरोग वादीसे, कफसे, पित्तसे, रुधिरसे, मांससे और मेदसे ऐसा छः प्रकारका है । उसके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके सदृश होते हैं ॥

रक्तार्बुदके लक्षण ।

**दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संकुच्य संपीड्य ततोऽस्य पाकम् ॥**
**सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरैराचितमाशु वृद्धम् ॥ ३ ॥**
**करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृद्धिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ॥**
**रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥**

भाषा–दुष्ट भये दोष नसोंमे रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलेको प्रगट करे । वह यत्किंचित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है । उसमेंसे रुधिर बहा करे । यह रक्तार्बुद असाध्य है । वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरके पीडित होनेसे उसका-वर्ण पीला हो जाय ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं ॥

मांसजार्बुदकी संप्राप्ति ।

**मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽगे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥**
**अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममं प्रचाल्यम् ॥ ५ ॥**
**प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ ६ ॥**
**मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं–**

भाषा–मुक्का आदिके लगनेसे अंगमें पीडा होय । उस पीडासे दुष्ट भया मांस सो सूजन उत्पन्न करे । उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी, देहके वर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं ऐसी होती है । जिस मनुष्यका मांस बिगड जाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे उसके यह अर्बुदरोग होता है । यह मांसार्बुद असाध्य कहा है । कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते हैं ॥

साध्यमें असाध्य प्रकार ।

**साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च ॥**
**संप्रस्तुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ ७ ॥**

भाषा–साध्यमेंभी यह आगेका अर्बुदरोग वर्जित है, स्राव ( झरे ) और मर्मस्थानमें प्रगट भया हो अथवा नासा आदि स्रोत ( मार्ग ) में प्रगट भया हो और जो स्थिर होय वह असाध्य है ॥

अध्यर्बुदके लक्षण ।

**यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥**

भाषा-पहिले जिस ठिकानेपर अर्बुद भया होय उसी ठिकानेपर दूसरा अर्बुद प्रगट होय उसको अध्यर्बुद कहते हैं ॥

द्विरर्बुदके लक्षण।

**यद्द्वंद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥**

भाषा-एक कालमें दो अर्बुद अथवा एकके पिछाडी दूसरा अर्बुद क्रमसे प्रगट होय उसको द्विरर्बुद कहते हैं यह असाध्य है ॥

अर्बुद न पंकनेका कारण।

**न पाकमायाति कफादिकाद्वा मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ॥**
**दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥**

भाषा-कफ अधिक होनेसे अथवा विशेषकरके मेद अधिक होनेसे तथा दोषोंके स्थिर होनेसे अथवा दोषोंके ग्रंथिरूप होनेसे सर्व प्रकारकी अर्बुद स्वभावसेही पके नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अर्बुदनिदान समाप्तम्।

# अथ श्लीपदनिदानम्।

संप्राप्ति।

**यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ॥**
**तत् श्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥**

भाषा-जो सूजन प्रथम वंक्षण ( रोगो ) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवे और उसके साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं। यह श्लीपद हाथ कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक इनमेंभी होती है ऐसा कोई कहते हैं ॥

वातज श्लीपद।

**वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ॥**
**अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥**

भाषा-वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें तीव्र पीडा होय, विना कारणके दुखे और उसमें ज्वर बहुत होता है ॥

पित्तज श्लीपद।

**पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ॥**

भाषा-पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी, दाह और ज्वरयुक्त होय तथा नरम होती है ॥

श्लैष्मिक श्लीपद।

**श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पांडु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥**

भाषा-कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है ॥

असाध्य लक्षण।

**वल्मीकमिव संजातं कंटकैरुपचीयते ॥**

**अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥**

भाषा-सर्पकी वांबीके समान बढी भई और जिनके ऊपर कांटे होंय ऐसी एक वर्षकी हो गई हो और बडी होय उसको वैद्य त्याग दे ॥

श्लीपदमें कफको प्राधान्य अव्यभिचारकरके है उसको कहते हैं।

**त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥**

**गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥**

भाषा-ये जो पूर्वोक्त तीनों श्लीपदमें कफकी आधिक्यता है, कारण इसका यह है कि भारी और महत्त्व ये दोनों कफके विना नहीं होते ॥

श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होय है उसको कहते हैं।

**पुराणोदकभूयिष्ठः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥**

**ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥**

भाषा-वर्षाऋतुमें पानी अधिक वर्षे परंतु पृथ्वीके नीचे होनेसे सूखे नहीं इसीसे पुराने पानीका संचय ( इकट्ठा ) होय और सर्व ऋतुमें सरदी रहा करे ऐसे जे अनूप ( पूरब ) आदि देश उनमें यह श्लीपदरोग विशेषकरके होता है। जांगल देशोंमें अग्निका अधिक अंश होता है इससे उन देशोंमें जलको पुराणत्व नहीं होता है और अनूप देशमें गरमी मंद पडनेसे उष्ण ऋतुमेंभी शीतलता होती है। हाथ कान आदिमें श्लीपद रोगकी शंका होनेसे दोषोंके कोपद्वारा ज्वर करके श्लीपदको जान लेवे ॥

असाध्य लक्षण।

**यच्छ्लेष्मणाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य ॥**

**सास्रावमत्युन्नतसर्वलिंगं सकंडुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥**

भाषा-जो श्लीपद कफकारक आहार विहारसे प्रगट भया तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसे प्रगट भया होय तथा स्रावयुक्त तथा जिस दोषसे प्रगट भया होय उस दोषके लक्षण उसमें बढ गये होंय, जिसमें खुजली बहुत हो और कफयुक्त होय सो श्लीपदरोगी वैद्यकरके त्याज्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां श्लीपदरोगनिदान समाप्तम् ।

## अथ विद्रधिनिदानम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयंत्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ महाशूलं रुजावंतं वृत्तं वाप्यथ वायतम् ॥ स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥ पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥ षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

भाषा-अत्यंत बढे तथा अस्थि ( हड्डी ) का आश्रय करके रहनेवाले वातादि दोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरे धीरे भयंकर शोथ उत्पन्न करे. उसकी जड हड्डी पर्यंत पहुँच जाय, उत्पत्तिकालमें अत्यन्त पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ ( सूजन ) होय उसको विद्रधि कहते हैं । पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, क्षत ( घाव ) से १ और रुधिरसे १ ये मिलकर छः प्रकारकी विद्रधि होती है । उन छहो विद्रधिके लक्षण कहते हैं ॥

वातज विद्रधिके लक्षण ।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ॥
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

भाषा-जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी होय, अत्यन्त वेदनायुक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक ये नाना प्रकारके होंय उसको वातविद्रधि कहते हैं ॥

पित्तकी विद्रधिके लक्षण ।

पक्वोदुंबरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ॥
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

भाषा-पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा काला वर्ण होय, ज्वर, दाह करनेवाली उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय ॥

कफकी विद्रधिके लक्षण ।

**शरावसदृशः पांडुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥**
**चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ६ ॥**

भाषा-कफकी विद्रधि शराव ( मट्टीके शराव ) सदृश बडो होय, पीला वर्ण शीतल, चिकनी, अल्पपीडा होय । उसकी उत्पत्ति और पाक देरमे होता है ॥

पकनेके अनन्तर उनका स्राव ।

**तनुपीतासिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥**

भाषा-ये तीन प्रकार विद्रधि पकनेके अनन्तर होते हैं । इनसे वातादिकोंके क्रमसे थोडा पीला और सपेद राध निकले ॥

सन्निपातकी विद्रधिके लक्षण ।

**नानावर्णरुजा स्रावो घंटालो विषमो महान् ॥**
**विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ७ ॥**

भाषा-सान्निपातकी विद्रधिमे अनेक प्रकारकी पीडा ( जैसे तोद, दाह, खुजली, पीडा ) तथा अनेक प्रकारका स्राव ( जैसे पतला, पीला, सपेद स्राव ) होय । घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय. छोटी, वडी, कदाचित् पके कदाचित् नही पके ऐसी होती है ॥

आगंतुज विद्रधिकी संप्राप्ति ।

**तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः ॥ क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ८ ॥ ज्वरतृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः ॥ आगंतुर्विद्रधिर्ज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ ९ ॥**

भाषा-तिन तिन भाव कहिये लकडी पत्थर डेला आदिका अभिघात ( चोट लगना पिच जाना इत्यादि ) होनेसे अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे घाव हो जानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके विसृत ( फैला ) क्षतोष्मा ( घावकी गरमी ) और रुधिरसहित पित्तको कोप करे उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते होय इसको आगंतुज विद्रधि जाननी ॥

रक्तजा विद्रधिके लक्षण।

**कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ॥**
**पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥**

भाषा—काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा और ज्वर ये उसमें तीव्र होंय तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय उसको रक्तविद्रधि जानना ॥

अंतर्विद्रधिके लक्षण।

**पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥**
**वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वंति विद्रधिम् ॥ ११ ॥**

भाषा—कुपित भये पृथक् पृथक् अथवा मिले भये दोष शरीरमें गोलके और बांबीके समान बढी ऐसी विद्रधि उत्पन्न करते हैं ॥

विद्रधिके स्थान।

**गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि चाप्यथ ॥ १२ ॥ एषामुक्तानि लिंगानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १३ ॥ नाभ्यां हिक्का तथाटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम्॥कटि-पृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे च विद्रधौ ॥१४॥ वृक्कयोः पार्श्वसंको-चः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् ॥ सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कंपश्च जायते ॥ श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १५ ॥**

भाषा—गुदा, बस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क ( कूख, पिंडी, प्लीह ), यकृत् ( कलेजा ), हृदय, क्लोम ( प्यासका स्थान ) इन ठिकानेपर विद्रधि होती है। इसके लक्षण बाह्य विद्रधिके समान जानने। १ गुदामें विद्रधि होनेसे अधोवायुका रोध होय। २ बस्तिमें अर्थात् मूत्राशयमें होनेसे कठिनतासे थोडा २ मूते। ३ नाभिमें होनेसे हिचकी तथा पीडापूर्वक क्षोभ होय। ४ कूखमें होनेसे पवनका कोप होय। ५ वंक्षणमें होनेसे कमर और पीठका बलपूर्वक जकड जाना होय। ६ कूखके पिंडमें होनेसे पसवाडोंका संकोच होय। ७ प्लीहामें होनेसे श्वास रुक जाय। ८ हृदयमें होनेसे सब अंग जकड जांय और कंप होय। ९ कलेजेमें होनेसे श्वास और हिचकी होय। १० क्लोममें अर्थात् पिपासास्थानमें विद्रधि होनेसे वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होती है ॥

स्रावनिर्गम ।

**नाभेरुपरिजाः पक्का यांत्यूर्ध्वमितरे त्वधः ॥**
**अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १६ ॥**

भाषा–नाभिके ऊपर जो विद्रधि होय उनके पकनेसे जो स्राव कहिये राध आदिका वहना हो वह मुखके रास्ते होता है और नाभिके नीचे होनेसे जो स्राव होय गुदाके मार्गसे होता है और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधियोंका स्राव दोनों मार्गसे होय । जिनका स्राव नीचेके मार्ग हो वह रोगी जीवे और ऊपरके मार्ग जिसका स्राव होय वह रोगी बचे नही ॥

विद्रधिमें साध्यासाध्य ।

**हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ॥ जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कथंचन ॥ १७ ॥ साध्या विद्रधयः पंच विवर्ज्यः सान्निपातिकः ॥ आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥१८॥**

भाषा–हृदय, नाभि और बस्ति इन ठिकानेको छोडकर प्रगट जो विद्रधि ( अर्थात् ष्लीह क्लोम इत्यादि ठिकाने ) बाहर फूटनेसे कदाचित् पुरुष बच जाय और ठिकानेपर फूटनेसे नहीं बचे । पहिली पांच विद्रधि साध्य हैं, सन्निपातकी विद्रधि असाध्य है, इन विद्रधियोको आम, पक्क और विदग्ध ये तीन अवस्था शोथरोगके समान जाननी चाहिये ॥

असाध्य लक्षण ।

**आध्मातं बद्धनिष्यंदं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ॥**
**रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १९ ॥**

भाषा–अफरायुक्त, मूत्र रुक गया होय, हिचकी वमन और प्यास इनसे पीडित, शूल, श्वास इनकरके युक्त ऐसे मनुष्यके विद्रधि रोग असाध्य होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरभाषाटीकायां विद्रधिनिदान समाप्तम् ।

# अथ व्रणनिदानम् ।

**एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ षड्विधः स्यात्पृथक् सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥१॥ शोथाः षडेते विज्ञेया प्रागुक्तैः**

**शोथलक्षणैः ॥ विशेषः कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥ २॥**

भाषा–एक ठिकानेपर सूजन उत्पन्न होनेसे जाने कि इसके व्रण ( फोडा ) होंयगे सो व्रणरोग पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १. रुधिरसे १ और आगंतुक १ ऐसे मिलकर छः प्रकारका है। इन छहों व्रणोंमें जो प्रथम सूजन होय उनके लक्षण शोथरोगलक्षणके समान जानने। इसमें पक्व ( पकने ) अपक्व ( न पकने ) के विषयमें जो विशेषता है उसको इस जगह कहते हैं ॥

व्रणपाक।

**विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरं चिरम् ॥**
**कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागंतुसमुद्भवः ॥ ३ ॥**

भाषा–वादीसे विषम पाक होय अर्थात् कहीं पके कहीं नहीं पके, पित्तसे बहुत जल्दी पके, कफका फोडा देरमें पके और रुधिरका तथा आगंतुक फोडेका पकना पित्तके समान अर्थात् जल्दी पके है ॥

कच्चे फोडेके लक्षण।

**मंदोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ॥**
**मंदवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥**

भाषा–सूजन हाथके छूनेसे थोडी गरम लगे, थोडी सूजन होय, फोडेका स्थान करा होय, देहके रंग समान उसका रंग होय और उसमें पीडा मंद होय, ये कच्ची सूजनके लक्षण हैं ॥

पच्यमानव्रणके लक्षण।

**दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते ॥ पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥५॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दंडेनेव च ताड्यते ॥ पीड्यते पाणिनेवांतः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥ शोषश्चोषो विवर्णः स्यादंगुल्येवावपाड्यते ॥ आसने शयने स्थाने शांतिं वृश्चिकाविद्धवत् ॥७॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातब-स्तिवत् ॥ ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८॥**

भाषा–जिस समय व्रण पकनेको होय उस समय ये लक्षण होते हैं। अग्निसे भरासा फोडेका स्थान मालूम हो, खार लगानेकासा चिनमिनावे, चेंटी काटनेकीसी पीडा होय, वह दो टूक करनेके समान तथा शस्त्रसे फारनेके समान दंड आदिके मारनेके समान तथा हाथसे मीडनेके समान तथा भीतरी सुईसे छेदनेके समान

पीडा होय और उसमे अत्यंत दाह होय, अग्निसे सेकनेके समान उसमें वेदना होय, उस फोडेका रंग बदल जाय, उंगलीके लगानेसे उखारनेकीसी पीडा होय, बैठनेमें सोनेमें खडे रहनेसे बीछू काटनेकीसी घोर पीडा होय, वह पीडा कभी शांत नहीं होय, वह सूजन फूली हुई बस्ति ( मूत्रस्थान ) के सदृश तनीसी होय, उसमें ज्वर-प्यास और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वव्रणके लक्षण।

**वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ॥ प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कंडूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचः ॥ बस्ताविवांबुसंचारः स्याच्छोथेंऽगुलिपीडिते ॥ १० ॥ पूयस्य पीडयत्येकमंतमंते च पीडिते ॥ भक्ताकांक्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥**

भाषा-व्रण पकनेसे पीडा शांत हो जाय, उसकी सूजन तामेके रंगकी होय और थोडी होय, ऊंची न हो, उसमें गुजलट पडे, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, वारंवार खुजली चले, पित्तदाहादि उपद्रवोंकी शांति हो, खुजानेसे उस जगह गढेला हो जाय, त्वचा फट जाय, सूजन हाथके दबानेसे जैसे बास्तिके नीचेका पानी इधर उधर होय उसी प्रकार राध इधर उधर होय, अन्नमें इच्छा हो ॥

एक दोषसे सूजन उत्पन्न होय उसमें पकनेके समय तीनों दोषोका संबंध होता है।

**नर्तेऽनिलाद्रुग्न विना न पित्तं पाकः कफं वापि विना न पूयः ॥ तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ १२ ॥**

भाषा-वादीके विना पीडा नहीं होय, पित्तके विना दाह नहीं होय और कफके विना राध नहीं होय अर्थात् पकनेके समय तीनों दोषोंके मिलनेसे सब प्रकारकी सूजन पकती है। रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरामें कहे हैं। तथा-" कफजेषु च शोथेषु गंभीरं पाकमेत्यसृक्। पक्वं स्निग्धं ततः स्पष्टं यत्र स्यात्क्लिन्नशोफता ॥ त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शित्वमश्मवत्। रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ॥ " इसका अर्थ सुगम है ॥

राध न निकालनेसे जो परिणाम होता है उसको दृष्टांत देकर कहते हैं।

**कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य ॥ तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥ १३ ॥**

भाषा-फूंसके गंजमें लगी हुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे वह फूंसको

जलाकर खाक कर दे उसी प्रकार व्रणमेंसे राध न निकालनेसे वह राध मांस शिरा और स्नायु इनको खाय लेती है ॥

आमादि लक्षणज्ञानसे वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं ।

**आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्कं च लक्षणैः ॥**
**जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १४ ॥**

भाषा–आम ( कच्चा ) पच्यमान और जो अच्छी रीतिसे पक गया हो ऐसे व्रणके लक्षण जो वैद्य जाने है उसीको वैद्य जानना चाहिये बाकीके सब चोर हैं ॥

अपक्कका छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष ।

**यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते ॥**
**श्वपचाविव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥**

भाषा–जो अज्ञानसे कच्चे फोडेको पका समझकर फोडे और जो पके फोडेको कच्चा समझकर चीरे नहीं, ये दोनों अविचारवान् वैद्य चांडालके समान जानने ॥

व्रणनिदान ।

**द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः ॥**
**दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥**

भाषा–शरीर और आगंतुक इन भेदोंसे व्रण दो प्रकारका है । पहिला शारीर दोषोके कोपसे होता है और दूसरा शस्त्रादिककरके घावके होनेसे होता है ॥

वातिकव्रण ।

**स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ॥**
**तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥**

भाषा–वादीसे प्रगट व्रणमें जकडना तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय । इसमेंसे थोडा स्राव होय तथा पीडा बहुत होय तथा सुईके चुभानेकीसी पीडा होय और उसका रंग काला होय ॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

**तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः ॥**
**व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गंधैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ ३ ॥**

भाषा–प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, बास आवे, स्राव होय ये पित्तव्रणके लक्षण हैं ॥

कफव्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ॥
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदी चिरपाकी कफोद्भवः ॥ ४ ॥

भाषा—कफका स्राव अत्यंत गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्द पीडा, पीला रंग, थोडा स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके ॥

रक्तज द्वंद्वज व्रण ।

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ॥ ५ ॥

भाषा—जो रक्तके कोपसे व्रण होय वह रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर स्रवे, एक दोष और रुधिरके संबंधसे जो होता है वह द्वंद्वज अथवा दो दोष तथा रुधिर इनके मिलनेसे संनिपातका व्रण जानना ॥

सुखव्रणके लक्षण ।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रुतः ॥
धीमतोऽभिनवः काले सुखं साध्यः सुखव्रणः ॥ ६ ॥

भाषा—जो व्रण त्वचा और मांस तथा मर्मरहित स्थानमें उपद्रवरहित होय और जो तरुण तथा ज्ञानी पुरुषके हेमंत शिशिरकालमें प्रगट होय, उसको सुखव्रण कहते हैं वह सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण ।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयः सोऽसाध्यो निरुपक्रमः ॥ ७ ॥

भाषा—जो पूर्व श्लोकमें लक्षण कह आये उनमेंसे कुछ लक्षण थोड़े होनेसे व्रण कृच्छ्रसाध्य होता है और गुणरहित होता है, वह असाध्य है । उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥

दुष्टव्रणके लक्षण ।

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्संगी चिरस्थितिः ॥
दुष्टव्रणोऽतिगंधादिः शुद्धलिंगविपर्ययः ॥ ८ ॥

भाषा—जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और सडा भया रुधिर वहे जो ऊपर ऊंचा तथा भीतरसे पीला हो, बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं । वह शुद्धलिंगके विपरीत होता है ॥

शुद्धव्रणके लक्षण ।

**जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥**
**सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धोऽव्रण इति स्मृतः ॥ ९ ॥**

भाषा-जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोडी पीडायुत, भले प्रकारका कहिये ऊंचा आदि जो दुष्ट व्रणादिकमें लक्षण कहे वे न होंय, दोष रक्तादिस्रावरहित होय उसको शुद्ध व्रण जानना ॥

भरनेवाले व्रणके लक्षण ।

**कपोतवर्णप्रतिमा यस्यांताः क्लेदवर्जिताः ॥**
**स्थिराश्च पिटिकावंतो रोहतीति तमादिशेत् ॥ १० ॥**

भाषा-जिसका घाव कबूतरके रंग सदृश होय और जिसमें क्लेद न बहता होय और घाव स्थिर हो, जिसमें फूंसीसी मालूम हो, उसको वैद्य जाने कि यह व्रण ( घाव ) स्थिर भरनेवाला है ॥

जो व्रण भर गया हो उसके लक्षण ।

**रूढवर्त्मानमग्रंथिमशूनमरुजं व्रणम् ॥**
**त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥ ११ ॥**

भाषा-जिसका मार्ग भर गया होय, गांठ बंधी होय, सूजन और पीडा जिसमें होती नहीं, त्वचाके समान वर्ण हो गया हो, घावका गढेला भरकर बराबर हो गया हो वह व्रण उत्तम भरा जानना ॥

व्याधिविशेषकरके व्रण कृच्छ्रसाध्य होता है सो कहते हैं ।

**कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥**
**व्रणाः कृच्छ्रेण सिद्ध्यंति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ १२ ॥**

भाषा-कोढी पुरुष, विषवाला पुरुष, क्षईरोगवाला, मधुमेही पुरुष ऐसोंका व्रण बडे कष्टसे साध्य होता है और जिसके पहिले व्रणमें व्रण प्रगट होय उसके ये व्रण कष्टसाध्य होते हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

**वसा मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुंगं च यः स्रवेत् ॥**
**आगन्तुजो व्रणः सिद्ध्येन्न सिद्ध्येद्दोषसंभवः ॥ १३ ॥**

भाषा-जिस व्रणमेंसे चर्बी, मेद, मज्जा और बस्तिस्नेह ये बहें वह व्रण आगंतुज होय तो साध्य है और दोषकृत होय तो साध्य नहीं होय है ॥

असाध्यव्रणके लक्षण ।

मद्यागुर्वाज्यसुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ॥
सुगंधा दिव्यगंधाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ १४ ॥

भाषा-मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चन्दन और चंपाके फूलके समान अथवा चमत्कारी पारिजात आदि फूलकीसी गंध जिस व्रणमेसे आवे वह व्रण मरनेवाले रोगीके जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

ये च मर्मस्वसंभूता भवंत्यत्यर्थवेदनाः ॥ दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं वहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ १५ ॥ दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवंत्यंतश्च शीतलाः ॥ प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ १६ ॥ प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिद्ध्यन्ति च ये व्रणाः ॥ वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ १७ ॥

भाषा-जो व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भये हों और उनमें अत्यंत पीडा होय वह तथा जिस जिस व्रणके भीतर दाह होय और बाहर शीतल होय वे अथवा बाहर दाह होय और भीतर शीतलता होय वे तथा जिनमें बल मांस इनका क्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि इनसे अत्यंत पीडित होय ऐसे अथवा जो व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भये हों उनमेंसे राध रुधिर बहुत वहे वे अथवा जिन व्रणोंकी अच्छी चिकित्सा करनेसेभी अच्छे न होय ऐसे व्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य त्याग दे ॥

व्रणरोगमे अपथ्य ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥
तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १८ ॥

भाषा-परिश्रम करनेसे व्रणमें सूजन होती है और जागनेसे ललाई होती है और दिनमें सोनेसे सूजनपर लाली आयकर पीडा होती है और मैथुन करनेसे सूजन लाली पीडा होकर मृत्यु होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शारीरव्रणनिदानं समाप्तम् ।

# अथागंतुव्रणनिदानम् ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ॥
भवंति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥

भाषा—अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृति ( स्वरूप ) के व्रण होते हैं, उनको कहता हूं ॥

संख्यासंप्राप्ति ।

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ॥
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा—छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और छठा घृष्ट ऐसे आगंतुक व्रण छः प्रकारके होते हैं । उनके लक्षण कहता हूं ॥

छिन्नके लक्षण ।

तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वापि यो व्रणस्त्वायतो भवेत् ॥
गात्रस्य पातनं तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

भाषा—जो व्रण तिरछा, सरल ( सीधा ) अथवा लंबा होय उसको छिन्नव्रण कहते हैं ॥

भिन्नके लक्षण ।

शक्तिकुंतेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः ॥
यत्किंचित्स्रवते तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

भाषा—बर्छी, भाला, बाण, तरवारका अग्रभाग, विषाण ( दांत, सींग, ) इनसे आशय ( कोष्ठ ) को बेधकर थोडासा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्न कहते हैं ॥

कोष्ठके लक्षण ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥
हृदुंडुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

भाषा—आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, कलेजा, प्लीह, हृदय, मलाशय और फुप्फस इन स्थानोंकी कोष्ठसंज्ञा है ॥

इन भेदोंके लक्षण ।

तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते ॥ मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो

रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥ मूर्च्छा श्वासतृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च ॥ विण्मूत्रवातसंगश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥ लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गंध्यमेव च ॥ हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥

भाषा–वह कोष्ठ भिन्न होकर रुधिरसे भर जावे तब ज्वर दाह होय है, मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाक इनमेंसे रुधिर बहे; मूर्च्छा, श्वास, प्यास, पेटका फूलना, अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र, अधोवायु इनका अवरोध, पसीना बहुत आवे, नेत्रमें लाली, मुखमें लोहेकीसी वास आवे, अंगोंमें दुर्गंधि, हृदय और पसवाडोंमे शूल ये लक्षण होते हैं इनसे जो विशेष लक्षण हैं उनको मुझसे सुन ॥

आमाशयस्थित रक्तके लक्षण।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं च्छर्दयत्यपि ॥
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥

भाषा–आमाशयमें रुधिरका संचय होनेसे रुधिरकी वमन, पेट बहुत फूले और अत्यंत भयंकर शूल होय ॥

पक्वाशयस्थके लक्षण।

पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च ॥
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

भाषा–पक्वाशयमें रुधिरका संचय होनेसे शूल, देहमें भारीपना और कमरसे लेकर नीचेके भागमें शीतलता होती है ॥

विद्धव्रणके लक्षण।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदंगं त्वाशयं विना ॥
उत्तुंडितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

भाषा–बारीक अग्रभागवाले ( सुई आदि ) शस्त्रसे आशय विना जो अंग हैं उनमें वेध होनेसे तुंडित कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय, निर्गत कहिये शल्य निकल गया हो उसको विद्धव्रण कहते हैं ॥

क्षतके लक्षण।

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ॥
विषमं व्रणमंगेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

भाषा–जिसमें अंग अतिछिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और दोनोंके लक्षण मिलते हों तथा व्रण तिरछा बांका होय उसको क्षतव्रण कहते हैं ॥

पिच्चितके लक्षण ।

**प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ॥**
**सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥**

भाषा–जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किवार आदि इनके योगमे पिच जाय तथा मज्जा रुधिरकरके युक्त होय, घाव न होय उसको पिच्चितव्रण कहत हैं ॥

घृष्टके लक्षण ।

**घर्षणादभिघाताद्वा यदंगं विगतत्वचम् ॥**
**उषास्रावान्वितं तद्धि घृष्टमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥**

भाषा–कठिन वस्त्र आदिको घर्षण ( घिसने ) से चोटके लगनेसे जिस अंगकी ऊपरकी त्वचा जाती रहे तथा आगके समान गरम रुधिर चुचाय उसको घृष्ट ऐसा कहते हैं ॥

सशल्यव्रणके लक्षण ।

**श्यावं सशोथं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ॥**
**मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदंति ॥ १५ ॥**

भाषा–जो व्रण नीला, सूजनयुक्त, मरोगिनसे व्याप्त होय और वारवार इनमेंसे रुधिर वहे और नरम होकर ऊपर बबूलेके समान उठा भया जिसका मांस होय उस व्रणको सशल्य ऐसा जानना चाहिये ॥

कोष्ठभेद लक्षण ।

**त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा ॥**
**कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥**

भाषा–त्वचाकी संधि कहिये शिरा, मांस, नस, हड्डी इनकी संधियोंको वेधकर अथवा शिरा आदिको छोड जो शल्य कोष्ठमें रहे हैं उससे आगे कहे भये लक्षण होते हैं ॥

असाध्यकोष्ठभेद ।

**तत्रांतर्लोहितं पांडुशीतपादकराननम् ॥**
**शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥**

भाषा–जिसका रुधिर आंतोंमें संचित होय अर्थात् बाहर नहीं बहे और जो पीला वर्ण, जिसके हाथ पैर शीतल होंय और जो शीतल श्वासको छोडे, जिसके लाल नेत्र होंय तथा आनाह कहिये ( पेट फूलना ) ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे॥

मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इन मर्मोंमें चोट लगनेके सामान्य लक्षण।

**भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च॥**
**स्रस्तांगता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः १८॥**
**मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेंद्रियार्थोपरमस्तथैव॥**
**दशार्द्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिंगमुक्तम्॥ १९॥**

भाषा–भ्रम, अनर्थभाषण, गिरना, इन्द्रिय और मन इनको मोह, हाथ पैरका फैलाना, ग्लानि, उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका चढना, वातजन्य तीव्र पीडा, मांसके धोये हुए पानी सरीखा रुधिर बहे, सर्व इन्द्रियें विकल होंय अर्थात् सब इन्द्रियोंका व्यापार बंद हो जाय ये लक्षण मांस आदि पांच मर्मविद्ध होनेसे होते हैं॥

मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण।

**सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षणजश्च वायुः॥**
**करोति रोगान्विविधान्यथोक्ताञ्छिरासु विद्धास्वथ वाक्षतासु॥२०॥**

भाषा–शिरा कहिये ( नाडी ) विध जाय अथवा शिरामें घाव हो जाय, उसमेंसे इन्द्रगोप ( वीरवहूटी ) कीडाके समान लाल तथा पुष्कल रुधिर स्रवे तथा रक्तक्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके आक्षपकादि रोग उत्पन्न करे है॥

स्नायुविद्धके लक्षण।

**कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च॥**
**चिराद् व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् २१॥**

भाषा–कुबडापना, शरीरमें ग्लानि, काम करनेसे असामर्थ्यपना, बहुत पीडा और जिसका व्रण बहुत दिनमें भरे उसकी स्नायु विद्ध भई ऐसा जाने॥

संधिविद्धके लक्षण।

**शोथाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोथौ॥**
**क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिंगम्॥ २२॥**

भाषा–चल अथवा अचल संधियोंका वेध होनेसे सूजन बढे, पीडा बहुत होय, शक्तिका नाश होय, संधिमें भेदके समान पीडा होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे परंतु उसमें उपराम होय॥

हड्डी विध गई हो उसके लक्षण।

**घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शांतिम्॥**
**भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत्॥२३॥**

भाषा-जिस पुरुषके रात दिन घोर पीडा होय, जागृतादि तीनों अवस्थामें शांति होय नहीं उसके अस्थि (हड्डी) विधी है ऐसा श्रेष्ठ वैद्य जाने॥

मर्मरहित शिरादिकोंके विद्धलक्षण कहनेकरके शिरादि मर्मविद्ध लक्षणोंका हवाल देते हैं।

**यथास्वमेतानि विभावयेत्तु लिंगानि मर्मस्वभिताडितेषु॥**

भाषा-मर्मके ठिकाने चोटके लगनेसे ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये। तुशब्दसे लक्षण और सामान्यलक्षण होते हैं ऐसा जानना॥

मांसमर्मके लक्षण नहीं कहे उनको कहते हैं।

**पांडुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्मस्वभिताडितः स्यात्॥२४॥**

भाषा-जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है उसका पीला वर्ण देहका विवर्ण होय और स्पर्शका ज्ञान न होय॥

सर्व व्रणके उपद्रव।

**विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोपतानकः॥ मोहोन्मादव्रणरुजा ज्वरतृष्णा हनुग्रहः॥२५॥ कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः॥ षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः॥२६॥**

भाषा-विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणकी पीडा, प्यास, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप ये व्रणरोगके सोलह उपद्रव व्रणरोगके जाननेवालोंने कहे हैं॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां सद्योव्रणनिदानं समाप्तम्।

---

# अथ भग्ननिदानम्।

भग्न दो प्रकारका है एक सव्रण और दूसरा व्रणरहित, इनमें व्रणको कहकर व्रणरहितको कहते हैं।

**भग्नं समासाद्द्विविधं हुताशकांडे च संधौ च हि तत्र संधौ॥**

भाषा–अग्निवेशके मतसे कांडभंग और संधिभंग मिलकर संक्षेपसे भग्नरोग दो प्रकारका है

संधिभंगके लक्षण।

**उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यक्च विक्षिप्तमधश्च षोढा ॥ १ ॥**

भाषा–तहां संधिस्थानका भग्नरोग छः प्रकारका है उनके नाम कहते हैं। उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त और अधिक्षिप्त। भग्न नाम टूटनेका है॥

संधिभंगके सामान्य लक्षण।

**प्रसारणाकुंचनवर्तनोग्रा रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥**
**सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगं–**

भाषा–फैलाते समय, सकोरनेके समय, नीचे करनेसे घोर पीडा होय और स्पर्श सहा न जाय ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण हैं॥

**उत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ॥ विशेषतो रात्रिभवा रुजा च–**

भाषा–उत्पिष्टमें संधिके चारो ओर सूजन होय और रात्रिमें पीडा वहुत होय, संधियोंके हाड दोनों आपसमें घिसे उसको उत्पिष्ट ऐसा कहते हैं॥

**विश्लिष्टजंतौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥**

भाषा–विश्लिष्ट संधियोंमें सूजन और रात्रिमें पीडा ये होकर सर्व कालमें अत्यंत पीडा होय और उत्पिष्टकी अपेक्षा इतने लक्षण विश्लिष्टमें विशेष होते हैं अर्थात् संधि शिथिल मात्र होय। इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गलेटा हो जाता है॥

**विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः–**

भाषा–विवर्तित संधिमें दोनों तरफके हाड संधिसे पलट जांय तब अत्यंत पीडा होती है इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करे॥

**तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥**

भाषा–हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी हो जाय॥

**क्षिप्तेऽतिशूलं विषमा रुगस्थ्नो–**

भाषा–संधिहड्डी एक ऊपरको हट जाय तो अत्यन्त पीडा होय और हाडोंमें कमजास्ती पीडा होय इस जगह एक हड्डीकी क्रियासे अथवा दोनों हड्डीकी क्रिया करके दोनों हाड परस्पर समीपसे दूर हो जाते हैं॥

**क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च संधेः ॥ ३ ॥**

भाषा-संधिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय। इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होंय परंतु किंचित् नीचेको गमन करे॥

अब कांडभग्नको कहते हैं।

**कांडे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका॥**
**कांडेषु भग्नं त्वतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम्॥ ४॥**
**छिन्नं द्विधा द्वादशधापि कांडे-**

भाषा-कांडभग्न बारह प्रकारका है। १ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ विचूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिछल्लिका, ६ कांडभग्न, ७ अतिपातित, ८ मज्जागत, ९ स्फुटित, १० वक्र और दो प्रकारके छिन्न। १ कर्कटक अर्थात् हाड दोनों ओरसे दबकर बीचमें ऊंचासा होय। २ अश्वकर्ण घोडेके कानके समान जो हाड हो जाय। ३ विचूर्णित चुरकट हो गया हो वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जाना जाता है। ४ पिच्चित पिचा भया हाड। ५ अस्थिछल्लिका हाडका कोई भाग छिलकके समान उखडकर रहे है। ६ कांडभग्न हड्डीका कांड टूटना। ७ अतिपात सब हाड टूटे सो। ८ मज्जागत हड्डीसे अवयव मज्जामें प्रवेश कर मज्जाको बाहर निकाले। ९ स्फुटित जिस हड्डीके बहुत टुकडे हो जांय। १० वक्र हड्डी तिरछी हो जाय वहभी भग्नमें गिनी जाती है। ११ छिन्न बारीक २ बहुतसे टुकडे हो जांय वह और १२ दूसरा एक ओरसे टूटकर दूसरी तरफ निकले है॥

कांडभग्नके सामान्य लक्षण।

**स्रस्तांगताशोथरुजातिवृद्धिः॥**
**संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्यंदनतोदशूलाः॥ ५॥**
**सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य कांडे खलु चिह्नमेतत्॥ ६॥**

भाषा-अंगोंमे शिथिलता, सूजन, घोर पीडा, जिस स्थानकी हड्डी टूटी होय उस जगह पीडाके साथ शब्द होय, हाथके लगानेसे सहा न जाय, हड्डी फडके, सुई छेदनेकीसी पीडा होय और शूल होय, कभी चैन न पडे, कांड इस शब्दसे नलक, कपाल, वलय, तरुण और रुचक इन पांच प्रकारकी हड्डियोंका संग्रह होता है। कांडभग्नके बारह भेदोंसे अधिक भेद होते हैं उनको कहते हैं॥

**भग्नं तु कांडे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम्॥**

भाषा-कांडोंमें अनेक प्रकारके भंग होते हैं, सो जिस जिस ठिकाने जैसी आकृतिका होय उसका उसी प्रकारका नाम कहना चाहिये॥

कष्टसाध्य ।

**अल्पाशिनो नात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ॥**
**उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥ ७ ॥**

भाषा-थोडा खानेवाला और जिसकी इन्द्रिय स्वाधीन न होय, वातप्रकृतिवालेकी, ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेमे बडे कष्टसे साध्य होती है ॥

असाध्य लक्षण ।

**भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् ॥**
**जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥ ८ ॥**

भाषा-कमरकी कपाल हड्डी टूट गई हो अथवा संधिके पासकी हड्डी टूट गई हो अथवा स्थानसे छूट गई होय और जंघाकी हड्डीका चूर हो गया हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

असाध्यलक्षण ।

**असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ॥**
**भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शंखे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ ९ ॥**

भाषा-ललाटकी हड्डीके टुकडा टुकडा हो परस्पर दूर हो जांय, जुडनेके कामके न रहें अथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख ( कनपटी ) की हड्डी, मस्तककी हड्डी टूट गई हो उसको वैद्य त्याग दे ॥

सावधानता न करनेसे असाध्यता दिखाते हैं ।

**सम्यक् संधितमप्यस्ति दुर्निक्षेपनिबंधनात् ॥**
**संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १० ॥**

भाषा-हड्डी भले प्रकार जुडभी गई हो उसको अच्छी रीतिसे न रखे अथवा अच्छी रीतिसे बांधे नहीं, उसमें किसीका धक्का लगनेसे फिर जैसेका तैसा हो जाता है और यह साध्य नहीं होय इसको वैद्य त्याग दे ॥

अस्थिविशेषकरके भग्नविशेष कहते हैं ।

**तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यंते नलकानि च ॥**
**कपालानि विभज्यंते स्फुटंति रुचकानि च ॥ ११ ॥**

भाषा-तरुण हड्डी नव जाती है या टेढी हो जाय नलकी हड्डी चिर जाती है,

---

१ सुश्रुते-" जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरःसु कपालानि " इति ।

कपालास्थि फूटकर टूक टूक हो जाय, रुचकास्थि ( दंतादिक ) हड्डी टुकडा होकर गिर पडे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां भग्ननिदानं समाप्तम् ।

# अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

सम्प्राप्ति ।

यः शोथमाममतिपक्कमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ॥ अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ १ ॥

भाषा—जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे किंवा बहुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा कर दे तब वह वढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानोमें जायकर उनको भेद कर वह बहुत भीतरही पहुँच जाय, तब एक मार्ग कर उसमें वह राध नाडीके समान वहे, इसीसे इसको नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं॥

संख्यारूप संप्राप्ति ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च ॥
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ २ ॥

भाषा—पृथक् पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १ और शल्यसे १ ऐसा नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥

वातनाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥

भाषा—वादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय। इसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रिमें अधिक स्रवे ॥

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण ।

पित्तात्तु तृट्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय ॥

कफज नाडीव्रणके लक्षण।

**ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकंडुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥**

भाषा-कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत होय ॥

सन्निपातज नाडीव्रणके लक्षण।

**दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्ति विहितानि च लक्षणानि ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात् घोरामसुक्षय-करीमिव कालरात्रिम् ॥ ४ ॥**

भाषा-जिस नाडीव्रणमे दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और पूर्वोक्त लक्षण होंय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना। यह भयंकर प्राण नाश करनेवाला कालरात्रिके समान जानना ॥

शल्यज नाडी।

**नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ॥ ५ ॥**

भाषा-किसी प्रकारसे शल्य ( कंटकादि ) उक्त स्थानमें पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करे। उस नाडीव्रणमे झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध वहे तथा पीडा होंय ॥

साध्यासाध्य लक्षण।

**नाडीत्रिदोषप्रभवा न सिद्ध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥**

भाषा-त्रिदोषजन्य नाडीव्रण साध्य नहीं होय, बाकीके चार नाडीव्रण यत्न करनेसे साध्य होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां नाडीव्रणरोगनिदानं समाप्तम्।

# अथ भगंदरनिदानम् ।

**गुदस्य व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकार्तिकृत् ॥**
**भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥**

भाषा–गुदाके समीप दो अंगुल ऊंची पिछाडी एक पिटिका ( फुंसी ) होय उसमें बहुत पीडा होय वह पिटिका फूट जाय उसको भगंदररोग कहते हैं। सुश्रुतने इसकी निरुक्ति इस प्रकार करी है। तथा " गुदभगवस्तिदारणात् भगंदरः " इति । भगशब्द इस जगह गुदावाचक है सो भोजने कहाभी है । " भगं परिसमंताच्च गुदवस्तिस्तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मात् ज्ञेयो भगंदरः ॥ " इति । यह भगंदररोग पांच प्रकारका है। यह संख्या कहना केवल रक्तज द्वंद्वज भगंदर-संभावनानिवारणार्थ जानना । इसके पूर्वरूप ग्रन्थान्तरोंसे लिखते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**कटीकपालनिस्तोददाहकंडूरुजादयः ॥**
**भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगंदरे ॥ २ ॥**

भाषा–कमरमें कपालास्थिमें सुईसी चुभे, दाह होय, खुजली चले, पीडा होय ये लक्षण जब भगंदर होनहार होता है तब होते हैं। इस जगहभी कपालास्थि पूर्वोक्त जाननी अर्थात् जो नाडीव्रणमें कह आये हैं ॥

शतपोनकके लक्षण ।

**कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति या ॥**
**उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी ॥**
**तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ३ ॥**

भाषा–कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर गुदास्थानमें जो पिटिका ( फुंसी ) प्रगट करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पकें और फूट जांय तब पीडा होय । तथा लाल झाग मिली राध वहे तथा उसमें अनेक छिद्र हो जांय, उन छिद्रोंमें होकर मूत्र, मल और रेत ( शुक्र ) वहे, चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक ऐसा कहते हैं। शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है ॥

उष्ट्रशिरोधरके लक्षण ।

**प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदाश्रिताम् ॥**
**तदाशु पाकाहिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥**

भाषा-पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे, वह शीघ्र पककर उनमेंसे गरम राध बहे। ये पिटिका ( फुंसी ) ऊंटकी नाडके समान होय इसीसे इसको उष्ट्रशिरोधर कहते हैं॥

परिस्रावी भगंदरके लक्षण।

कंडूयनो घनस्रावी कठिनो मंदवेदनः॥
श्वेतावसाभः कफजः परिस्रावी भगंदरः॥ ५॥

भाषा-कफसे प्रगट भये भगंदरमें खुजली चले तथा उसमेंसे गाढी राध बहे तथा वह पिटिका कठिन होय, उसमें पीडा थोडी होय, उसका वर्ण सपेद होय, उसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं॥

शंबूकावर्त्तके लक्षण।

बहुवर्णरुजा स्रावाः पिडिका गोस्तनोपमाः॥
शंबूकावर्तवन्नाडीशंबूकावर्त्तको मतः॥ ६॥

भाषा-जिसमें गौके थनके समान अनेक पिडिका होय, उनका रंग, पीडा और स्राव अनेक प्रकारका होय और व्रण शंखके आटेके समान गोल होय, इसको शंबूकावर्त्त कहते हैं॥

उन्मार्गिभगंदरके लक्षण।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते॥
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गिभगंदरं वदेत्॥ ७॥

भाषा-गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षण ( घाव ) हो जाय, उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पड जांय, वे कृमि उस क्षतको विदारण करें, ऐसे वह घाव गुदापर्यंत वढकर पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवे इसको उन्मार्गी भगंदर कहते हैं॥

साध्यासाध्य लक्षण।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः॥
तेष्वसाध्यास्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः॥ ८॥

भाषा-सब भगंदर दुःसाध्य हैं तिसमेंभी त्रिदोषका भगंदर असाध्य है और क्षतज विशेषकरके असाध्य है॥

असाध्यके लक्षण।

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च॥
भगंदरात्प्रस्रवन्ति नाशयन्ति तमातुरम्॥ ९॥

भाषा-जिस भगंदरमेंसे अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कृमि और वीर्य वहे उस रोगीका नाश होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरानिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां भगंदरनिदान समाप्तम् ।

# अथोपदंशनिदानम् ।

कारण ।

**हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा ॥**
**योनिप्रदोषाच्च भवंति शिश्ने पंचोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥**

भाषा-हाथकी चोट लगनेसे, नखदांतके लगनेसे, अच्छी रीतिसे न धोनेसे, अत्यन्त स्त्रीसंगके करनेसे अथवा योनिके दोषसे ( अर्थात् दीर्घ करें बाल जिसके ऊपर होंय ) अथवा खारी गरम जलके धोनेसे, ब्रह्मचर्यवाली स्त्रीसे गमन करनेसे इत्यादि कारणोंसे लिंगमें उपदंश ( गर्मीका रोग ) होय है वह पांच प्रकारका है ॥

वातोपदंशके लक्षण ।

**सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥**

भाषा-लिंगेन्द्रियके ऊपर काले फोडे उठें, उनमें चोटनेकीसी पीडा होय, तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण ये लक्षण वातोपदंशके जानने ॥

पित्तोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण ।

**पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः ॥ २ ॥**

भाषा-पित्तके उपदंशकरके पीले रंगके फोडे होते हैं, उनमेंसे पानी बहुत वहे, दाह होय, रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडे होंय ॥

कफोपदंशके लक्षण ।

**सकंडुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैस्स्रावयुतैः कफेन ॥**

भाषा-कफके उपदंशकरके सपेद मोटे फोडे होंय, उनमें खुजली चले सूजन होय और गाढी राध वहे ॥

सन्निपातोपदंशके लक्षण ।

**नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥**

भाषा-जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव होय, पीडा होय यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण।

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेत्तु ॥

भाषा—जिस उपदंश करके लिंगका मांस गल गया हो और कृमि लिंगको खाय जावें, केवल अंडकोश मात्र रह जाय, उसको वैद्य त्याग दे ॥

असाध्य लक्षण।

संजातमात्रेण करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥
कालेन शोथकृमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

भाषा—उपदंशके होतेही जो मूर्ख मनुष्य विषयमें आसक्त होकर इसका उपचार नहीं करे उसके लिंगमें थोडे दिनमें सूजन और कीडे पडें और उसमें दाह पाकभी होय, पीछे वह गल जाय, ऐसा रोगी मर जाय ॥

लिंगवर्तिके लक्षण।

अंकुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः ॥ क्रमेण जायते वर्त्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ५ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगतापि वा ॥ लिंगवर्तिरिति ख्याता लिंगार्श इति चापरे ॥ ६ ॥ कुलत्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः ॥ मेढ्रसंधौ नृणां केचित्केचित्सर्वाश्रयाः स्मृताः ॥ ७ ॥ रुजा दाहार्तिबहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः ॥ स्त्रीणां पुंसां च जायंते ह्युपदंशाः सुदारुणाः ॥ ८ ॥

भाषा—मुरगेकी चोटीके समान लिंगके ऊपर मांसके अंकुर एकके ऊपर एक प्रगट होय, कोशकी भीतरकी मणिमें अथवा सर्व संधियोंमें तो इस रोगको लिंगवर्ति ऐसा कहते हैं और कोई लिंगार्श कहते हैं। यह त्रिदोषजन्य है । इसमें मांसके अंकुर कुलथीके समान और कोई पद्मदलके समान, किसीके अंडकोशकी संधिमें, किसीके सर्व आशयमें होते हैं। पीडा दाह बहुत होय, प्यास, नोचनेकीसी पीडा होय, स्त्री और पुरुषोंके यह उपदंश घोर पीडाकारक होते हैं। इसमें "कुलित्थाकृतयः" यहांसे लेकर "स्त्रीणां पुंसां च जायंते" यहांतक पाठ क्षेपक है। माधवका नहीं है और स्त्रियोंकेभी गरमीका रोग होय है यह मत सुश्रुतका है। परन्तु यह आर्ष पाठ नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां उपदंशनिदानं समाप्तम्।

# अथ फिरंगरोगनिदानम् ।

उपदंशरोगकाही भेद फिरंगरोग है उसको अन्यान्तरसे लिखते हैं ।

फिरंगशब्दकी निरुक्ति ।

**फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैष यद्भवेत् ॥**
**तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥**

भाषा–फिरंगियोंके देशमे यह रोग बहुताकरके होय है, इसीसे वैद्य इसको फिरंगरोग कहते हैं ॥

विप्रकृष्टनिदान ।

**गंधरोगफिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम् ॥ फिरंगिणेति संसर्गात् फिरंगिण्या प्रसंगतः ॥ भवेत्तं लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः ॥२॥**

भाषा–गंधरोग यह फिरंगरोग है । सो मनुष्योंके अंग्रेजोंके संसर्गसे अथवा फिरंगिणी ( मेम ) के प्रसंग करनेसे होता है । सो इसको इसके जो आगे लक्षण कहेंगे उनसे जाने ॥

रूपमाह ।

**फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा ॥**
**बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ३ ॥**

भाषा–फिरंग रोग तीन प्रकारका है एक बाहर होय, दूसरा भीतर होय है और तीसरा बाहर भीतर दोनों स्थानोंमें होता है । उनके लक्षण कहाता हूं ॥

**तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशाल्परुक् ॥**
**स्फुटितो व्रणवद्वेद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ ४ ॥**

भाषा–तहां बाहरका फिरंग रोग फोडेके समान थोडी पीडाकर्त्ता होता है और फोडेके समानही फूटे है यह सुखसाध्य है ॥

**संधिष्वाभ्यन्तरः स स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः ॥**
**कष्टदोऽतिचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्च सः ॥ ५ ॥**

भाषा–और जो फिरंग सन्धियोंके भीतर होय अथवा दोनों बाहर और भीतरकी फिरंगके लक्षण मिलते होंय वह अतिकष्ट देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाला कष्टसाध्य है ॥

फिरंगरोगके उपद्रव ।

**कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता ॥**
**अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ६ ॥**

भाषा-देह कृश हो जाय, बलनाश हो जाय, नाक बैठ जाय, अग्नि मंद हो जाय, हड्डी सूखे तथा हड्डी टेढी हो जाय ये फिरंगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य कष्टसाध्य ।

**बहिर्भवो भवेत्साध्यो नूतनो निरुपद्रवः ॥ आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥७॥ बहिरंतर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ॥ बोध्यो व्याधिरसाध्योऽयमित्यूचुर्मुनयः पुरा ॥ ८ ॥**

भाषा-जो फिरंग बाहर होय, नया और उपद्रवरहित होय वह साध्य है और भीतर होय वह कष्टसाध्य है और जो बाहर भीतर दोनों ठिकानेपर होय तथा पुराना पड गया और उपद्रवयुक्त होय वह फिरंग रोग असाध्य है। फिरंग यह रोग वातका भेद जानना चाहिये। यह सुजाक नामसे प्रसिद्ध है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां फिरंगरोगनिदान समाप्तम् ।

## अथ शूकरोगनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

**अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ॥**
**व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥**

भाषा-जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिंगको मोटा करा चाहे वा विषक्रामिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिका कहा उनका साधन करे उसके १८ प्रकारके शूकज रोग होते हैं ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

**गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भग्नहेतुका ॥**
**पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका च सा ॥ २ ॥**

भाषा-दुष्ट जलजंतुओंका दुष्ट रीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सपेद सरसोंके समान जो पिटिका (फुंसी) होय उसको सर्षपिका कहते हैं ॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

**कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिका भवेत् ॥**

भाषा–अप्रसक्त शूकोंके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिटिका होय और विषम कहे कोई छोटी और कोई बडी और भुग्न कहे टेढे ऐसे शूक कहिये मांसांकुरोंसे व्याप्त होय उसको अष्ठीला कहते हैं ॥

ग्रंथितके लक्षण ।

**शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रंथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥**

भाषा–निरंतर शूकलेप करनेसे लिंगेन्द्रियके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रंथित कहते हैं ॥

कुंभिकाके लक्षण ।

**कुंभिका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुभा ॥**

भाषा–रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय उसको कुंभिका ऐसा कहते हैं ॥

अलजीके लक्षण ।

**तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथा प्रोक्तं विचक्षणैः ॥ ४ ॥**

भाषा–यह पिटिका प्रमेहापिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय तथा उसके लक्षण पूर्वोक्त पिटिकाकेसे होते हैं ॥

मृदितके लक्षण ।

**मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥**

भाषा–शूकपीडा होनेके अनंतर लिंगको हाथोंसे मीडनेसे अथवा दाबनेसे वायुके कोपसे लिंग सूज जाता है ॥

संमूढपिटिकाके लक्षण ।

**पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिटिका भवेत् ॥ ५ ॥**

भाषा–लेप करनेसे अनंतर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजावे, तब एक मूढ ( विना मुखकी ) पिटिका होय उसको संमूढापिटिका कहते हैं ॥

अवमंथके लक्षण ।

**दीर्घा बह्व्यश्च पिटिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ॥**
**सोऽवमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥**

भाषा–कफरक्तसे लंबी और अनेक तथा बीच बीचमें फूटी भई ऐसी जो पीटिका लिंगमें होय, उसके होनेसे रोमांच और पीडा होय इस रोगको अवमंथ ऐसा कहते हैं॥

पुष्करिकाके लक्षण।

पित्तशोणितसंभूता पिटिका पिडिकाचिता॥
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा॥ ७॥

भाषा–पित्तरक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारो तरफ अनेक छोटी छोटी फुंसी होय और कमलके भीतरकी केसरके समान सब फुंसी होय उसको पुष्करिका ऐसा कहते हैं॥

स्पर्शहानिके लक्षण।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम्॥

भाषा–शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे है॥

उत्तमाके लक्षण।

मुद्गमाषोद्गमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवाश्च याः॥
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः॥ ८॥

भाषा–शूकका वारंवार लेप करनेसे रक्तपित्त कुपित होकर मूंग उरदके समान लाल फुंसी लिंगेंद्रियपर होय उसको उत्तमा कहते हैं। यह अजीर्णके कारणसे होती है॥

शतपोनकके लक्षण।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चितं यस्य समंततः॥
वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः॥ ९॥

भाषा–जिस पुरुषके लिंगमें अनेक बारीक छिद्र हो जांय वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है इसको शतपोनक कहते हैं॥

त्वक्पाकके लक्षण।

वातपित्तकृतो यस्तु त्वक्पाको ज्वरदाहवान्॥ १०॥

भाषा–वातपित्तसे लिंगकी त्वचा पक जाय और उसमें ज्वर दाह होता है॥

शोणितार्बुदके लक्षण।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम्॥
यस्य वास्तुरुजा चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम्॥ ११॥

भाषा–जिस पुरुषकी लिंगेन्द्रियके ऊपर काले लाल फोडे उत्पन्न होंय तथा उनमें पीडा होय उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥

मांसार्बुदके लक्षण ।

**मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥**

भाषा–मांस दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है ॥

मांसपाकके लक्षण ।

**शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ॥**
**विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १२ ॥**

भाषा–जिसकी इन्द्रियका मांस गल जाय और अनेक प्रकारकी पीडा होय, ( यह व्याधि त्रिदोषज है ) इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं ॥

विद्रधिके लक्षण ।

**विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥**

भाषा–विद्रधिनिदानमे जो सन्निपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं वेही यहां विद्रधिशूलके लक्षण जानने ॥

तिलकालकके लक्षण ।

**कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि तु ॥**
**पातितानि पचंत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १४ ॥**
**कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः ॥**
**सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥**

भाषा–काले अथवा चित्रविचित्र रंगकेसे विषशूकोंका लेप करनेसे तत्काल सर्व लिंग पक जाय तथा सब मांस तिलके सदृश काला होकर गल जाय इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक ऐसा कहते हैं ॥

असाध्य शूकदोषके लक्षण ।

**तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥**
**विद्रधिश्च न सिद्ध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥**

भाषा–जिस शूकदोषमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शूकरोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ कुष्ठनिदानम् ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ॥ भजतामागतां च्छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममतिसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् ॥ शीतोष्णलंघनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥ २ ॥ घर्मश्रमभयार्त्तानां द्रुतं शीतांबुसेविनाम् ॥ अजीर्णाध्यशनानां च पंचकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् ॥ माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ॥ विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमंबु च ॥ दूषयंति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥ अतः कुष्ठानि जायंते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

भाषा–विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, रद्दके वेगको रोकनेसे और अन्य वेग कहिये मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, भोजन करके अत्यंत व्यायाम ( दंड कसरत ) अथवा अतिसंताप ( सूर्यका ताप ) सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनका उक्त क्रम छोडकर सेवन करनेसे पसीना श्रम और भय इनसे पीडित होय और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारणसे, अजीर्ण अन्न भक्षण करनेसे तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे; वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे; नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा, पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, मूरी, मिष्टान्न ( लड्डू, खजला, फेनी आदि ), तिल, दूध, गुड इनके खानेसे; अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे तथा दिनमें सोनेसे; ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसे; पापकर्मके आचरण करनेसे ऐसे पुरुषोंके वातादिक तीनों दोष त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग ( कोढ ) उत्पन्न करे । कुष्ठ होनेके वातादि तीनों दोष और त्वचादि दूष्य ये सात पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं । इनसेही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं । तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ हैं ॥

कुष्ठोंको त्रिदोषजत्वभी होनेसे दोषाधिक्यसे वे सात प्रकारके हैं सो कहते हैं ।

**कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वंद्वैः समागतैः ॥**
**सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिको मतः ॥ ७ ॥**

भाषा–पृथक् पृथक् दोषोंकरके ३, द्वंद्वज ३ और सान्निपातसे १ सब मिलकर सात कुष्ठ भये । सब कुष्ठ त्रिदोष होनेपरभी जो दोष अधिक होय, उसीमें व्यवहार करना चाहिये अर्थात् जिस दोषके लक्षण मिलें उसको उसी दोषका कुष्ठ जानना जैसे " वातेन कुष्ठं कापालं " अर्थात् वाताधिक्य होनेसे कापाल कुष्ठ होता है ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

**अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदाविवर्णता ॥ ८ ॥ दाहः कंडूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः क्लमः ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ ९ ॥ रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥ रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥**

भाषा–जिस ठिकाने कुष्ठ होनहार हो उस जगह हाथोंसे चिकना मालूम होय अथवा खरदरा मालूम होय, उस ठिकाने पसीना आवे अथवा नहीं आवे तथा उस ठिकानेका वर्ण पलट जाय, दाह होय, खुजली चले, त्वचाका स्पर्श मालूम न होय, नोचनेकीसी पीडा होय, विषैली माखीके काटनेके सदृश चकत्ता उठे, परिश्रम करे विना देहमें श्रम होय, व्रणमें पीडा अधिक होय, उन फोडोंकी उत्पत्ति शीघ्र होकर बहुत दिवसपर्यंत रहे, जब फोडा भरनेको होय तब रूखे रहें, उनका थोडा निमित्त होनेसे कोप होय, रोमांच होय और रुधिर काला पड जाय ये कुष्ठ होनेके पूर्वरूप होते हैं ॥

सप्त महाकुष्ठोंके लक्षण ।

**कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥**
**कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ ११ ॥**

भाषा–कापालकुष्ठ जो काले तथा लाल खीपडेके सदृश, रूखे, कठोर, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोंचनेकीसी पीडायुक्त होय वे दुश्चिकित्स्य हैं अर्थात् वे चिकित्सा करनेमें कठिन हैं । इसको कापालकुष्ठ कहते हैं ॥

औदुंबरकुष्ठके लक्षण ।

**रुग्दाहरागकंडूभिः परीतं लोमपिंजरम् ॥**
**उदुंबरफलाभासं कुष्ठमौदुंबरं वदेत् ॥ १२ ॥**

भाषा–औदुंबरकुष्ठ यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय इसमें बाल कपिल वर्णके होय तथा ये गूलरफलके समान होते हैं ॥

मंडलकुष्ठके लक्षण।

**श्वेतरक्तं स्थिरस्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमंडलम् ॥**
**कृच्छ्रमन्येन संयुक्तं कुष्ठं मंडलमुच्यते ॥ १३ ॥**

भाषा–मंडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिसका आकार मंडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसे मिला होय ऐसा यह मंडलकुष्ठ कष्टसाध्य है ॥

ऋष्यजिह्वकुष्ठलक्षण।

**कर्कशं रक्तपर्यंतमन्तःश्यावं सवेदनम् ॥**
**यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १४ ॥**

भाषा–ऋष्यजिह्वकुष्ठ कठोर, अंतविषे लाल होय, बीचमे काला होय, पीडा करे तथा रीछकी जीभके समान होता है ॥

पुंडरीककुष्ठके लक्षण।

**सश्वेतं रक्तपर्यंतं पुंडरीकदलोपमम् ॥**
**सोत्सेधं च सरागं च पुंडरीकं प्रचक्षते ॥ १५ ॥**

भाषा–पुंडरीककुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक ( कमल ) पत्रके समान सफेद होय और उसके अंतभाग लाल होय, यत्किंचित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होता है ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण।

**श्वेतं ताम्रं च तनु यद्रजो घृष्टं विमुंचति ॥**
**प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १६ ॥**

भाषा–सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला, खुजानेसे भूसीसी उडे यह विशेषकरके छातीमें होता है और घीयाके फूलके आकार होता है ॥

काकणकुष्ठके लक्षण।

**यत्काकणंतिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥**
**त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिद्ध्यति ॥ १७ ॥**

भाषा–काकणकुष्ठ जो चिरमिटीके समान लाल अर्थात् बीचमे काला होय और ओरपास लाल होय अथवा बीचमें लाल होय और ओरपास काला होय, किंचित् पका, तीव्र पीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हो यह कुष्ठ अच्छा नही होता है ॥

ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण ।

**अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥**
**तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ १८ ॥**

भाषा–चर्मकुष्ठ पसीनारहित, मोटी जगह व्यापनेवाला, मछलीकी त्वचासमान अर्थात् अभ्रकके पत्रसमान गोल गोल होय और जिसका चर्म हाथीके चर्मसमान मोटा और कठोर होय उसको चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥

किटिभकुष्ठके लक्षण ।

**श्यावं किनखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥**

भाषा–किटिभकुष्ठ नीलवर्ण, व्रणकी चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और परुष कहिये रूक्ष होय ॥

वैपादिककुष्ठके लक्षण ।

**वैपादिकं पाणिपादस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ १९ ॥**

भाषा–वैपादिक जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फट जांय और पीडा बहुत होय, इस विपादिकाको बिवाई नहीं जानना । क्योंकि बिवाई केवल पैरमेंही होती है और बिवाईको शास्त्रमें पाददारी कहते हैं और विपादिकामें हाथ पैरोंमें फुंसी श्यामरंगकी होती हैं और वे फुंसी चुचाती हैं तथा खुजाती हैं. इसीसे पाद-दारी भिन्न और विपादिका भिन्न है ॥

अलसकुष्ठके लक्षण ।

**कंडूमद्भिः सरागैश्च गंडैरलसकं चितम् ॥**

भाषा–अलसकुष्ठ, इस कुष्ठमे पीडा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तके समान बहुत होंय और लाल होंय । इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तीकी शंका करते हैं ॥

दद्रूमंडलकुष्ठके लक्षण ।

**सकंडू रागपिटिकं दद्रूमंडलमुद्गतम् ॥ २० ॥**

भाषा–दद्रूमंडलकुष्ठ इसमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय और ये ऊंचे उठ आवें, मंडलके आकार रोग उत्पन्न होंय इसीसे इसको दद्रूमंडल कहते हैं ॥

चर्मदलकुष्ठके लक्षण ।

**रक्तं सशूलं कंडूमत्स्फोटं यद्दलयत्यपि ॥**
**तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शासहमुच्यते ॥ २१ ॥**

भाषा–चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय, इसमें त्वचा फट जाय ॥

पामाकुष्ठके लक्षण।

**सूक्ष्मा बह्व्यः पीडिकाः स्रावयत्यः पामेत्युक्ताः कंडुमत्यः सदाहाः॥**

भाषा-पामाकुष्ठ जो पिटिका छोटी और बहुत होंय, उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा ( खाज ) कहते हैं॥

कच्छुकुष्ठके लक्षण।

**सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च॥२२॥**

भाषा-कच्छुकुष्ठ वोही पामा मोटे फोडोंकरके तथा तीव्रदाहयुक्त होय और हाथोंमें होय उसको कच्छू कहते हैं। उग्रा यह कमरमें होती है॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण।

**स्फोटा श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः॥**

भाषा-विस्फोटक जो फोडे काले वा लाल रंगके होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कहते हैं॥

शतारुकुष्ठके लक्षण।

**रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारु स्याद्बहुव्रणम्॥ २३॥**

भाषा-शतारु लाल हो, श्याम होय, जलन होय, शूल हो तथा जिसमें अनेक फोडे होय उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं॥

विचर्चिकाके लक्षण।

**सकंडूः पिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका॥**

भाषा-विचर्चिका खुजलीयुक्त, काले रंगकी जो फुंसी ( माताके समान ) होंय तथा उनमेंसे स्राव बहुत होय उसको विचर्चिका कहते हैं॥

चर्मकुष्ठसे लेकर विचर्चिका कुष्ठपर्यन्त १२ कुष्ठ होते हैं और पीछे क्षुद्र कुष्ठ ११ कहे हैं ऐसी कोई शंका करे उसके निमित्त कहते हैं। विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकर अर्थात् विपादिका होती है ऐसा कहनेसे संख्या नहीं बढती है इस विषयमें भोजका यह मत है॥

वातजादि कुष्ठोंके लक्षण।

**खरं श्यावारुणं रूक्षं वातात्कुष्ठं सवेदनम्॥**
**पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं स्मृतम्॥ २४॥**
**कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकंडु शैत्यगौरवम्॥**
**द्विलिंगं द्वंद्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम्॥ २५॥**

भाषा–वायुके योगसे कुष्ठ खरदरा, काले रंगका अथवा लालवर्ण, रूखा और पीडायुक्त ऐसा होता है । पित्तके योगसे कुपित कुष्ठमें दाह, लाल और स्रावयुक्त होता है । कफके योगसे क्लेदयुक्त, सघन, चिकना, खुजली, शीतलतायुक्त और भारी ऐसा होता है । द्वंद्वज कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं । सान्निपातिक कुष्ठमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

रसादि सप्तधातुगत कुष्ठोंके क्रमसे लक्षण ।

**त्वक्स्थे वैवर्ण्यमंगेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ॥**
**त्वक्पाको रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ २६ ॥**

भाषा–रसधातुगत कुष्ठ होनेसे अंगका वर्ण पलट जाय है, अंग रूखा होय, त्वचा शून्य होय, रोमांच हों और पसीना वहुत आवे ॥

रक्तगत कुष्ठके लक्षण ।

**कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ २७ ॥**

भाषा–कुष्ठ रक्तगत होनेसे खुजली और राध वहुत होय ॥

मांसगत कुष्ठके लक्षण ।

**बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः ॥**
**तोदः स्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २८ ॥**

भाषा–मांसगत कुष्ठ होनेसे मुख वहुत सूखे, अंगमे कर्कशपना होय, देहमें फुंसी पैदा होंय सुई नोचनेकीसी पीडा होय, फोडा होय वे वहुत दिन रहें ॥

मेदोगत कुष्ठके लक्षण ।

**कौण्यं गतिक्षयोऽगानां संभेदः क्षतसर्पणम् ॥**
**मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २९ ॥**

भाषा–कौण्य कहे हाथ गिर पडे, चलनेकी शक्ति मारी जाय, हडफूटन होय, घाव फैल जाय और पूर्वोक्त लक्षण ( रसरक्तमांगत कुष्ठके लक्षण ) होंय ॥

अस्थिमज्जागत कुष्ठके लक्षण ।

**नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसंभवः ॥**
**स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३० ॥**

भाषा–अस्थि ( हड्डी ) और मज्जागत कुष्ठ होनेसे नाक गिर पडे, नेत्र लाल होंय, घावमें कीडा पड जांय, स्वर बैठ जाय ये लक्षण होते हैं ॥

शुक्रार्त्तवगत कुष्ठके लक्षण ।

दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ॥
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

भाषा–जिस स्त्रीपुरुषके रुधिर शुक्र कुष्ठाधिक्यसे दुष्ट होंय, उस दुष्ट भये वीर्य और रजसे प्रगट भई जो संतान सोभी कोढी होती है । इस जगह दुष्ट भया शुक्र और आर्तव सर्वथा बीजत्व नष्ट न होनेसे संतानके करनेवाले होते हैं और जीव संक्रमण कालमें कदाचित् बीज दुष्ट होय तो विषके कीडाके न्यायकरके संतान प्रगट होती है अर्थात् जैसे विष प्राणियोंके प्राणका नाशक है परंतु उसमेंभी विषका कीडा प्रगट होता है और वह उससे नही मरता है यह वाग्भटका मत है ॥

साध्यादि भेद ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ॥ मेदसि द्वंद्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३२ ॥ कृमिहृल्लासमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ॥ प्रभिन्नं प्रसृतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ पंचकर्मगुणातीतं कुष्ठं हंतीह कुष्ठिनम् ॥ ३३ ॥

भाषा–रस, रुधिर, मांस इन धातुओंके पर्यन्त गये जो कुष्ठ वे साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होंय वहभी साध्य है और मेदोधातुगत कुष्ठ तथा द्वंद्वज कुष्ठ याप्य जानना मज्जा, अस्थि इन दोनों धातुओंमें कुष्ठ पहुँच गया हो तथा जो शुक्रगत हो वह कुष्ठ असाध्य है । तथा जिस कुष्ठमें कृमि, वमन मन्दाग्नि इन करके युक्त होय तथा त्रिदोषज होय वह असाध्य है । जो कुष्ठ फूटकर बहने लगे तथा जिस कुष्ठसे रोगीके नेत्र लाल होंय अथवा स्वर बैठ गया होय और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके होंय नही ऐसा रोगी मर जाय ॥

कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुंबरं कफात् ॥ ३४ ॥ मंडलाख्यं विचर्चीं च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ॥ चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः ॥ ३५ ॥ वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुः शतारुषी ॥ पुंडरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ ३६ ॥ सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रूः सकाकणा ॥ पुंडरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३७ ॥

भाषा-वादीसे कपालकुष्ठ, पित्तसे औदुंबर, कफसे मंडल और विचर्चिका; वात पित्तसे ऋष्यजिह्व, वातकफसे चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका; कफपित्तसे दद्रू, शतारु, पुंडरीक विस्फोटक, पामा, चर्मदल, त्रिदोषसे काकण-कुष्ठ होता है। पहिले तीन (कपाल, उदुंबर और मंडल), दद्रु, काकण, पुंडरीक और ऋष्याजिह्व ये सात महाकुष्ठ जानने ॥

किलासनिदान।

**कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् ॥**
**निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३८ ॥**

भाषा-कुष्ठ होनेके जो कारण (विरुद्ध भोजन पापकर्मादि) कहे हैं उन्हीं कारणोंसे श्वित्र (सपेद कोढ) और किलास (लाल कोढ) ये होते हैं। इनमें स्राव नहीं होय तथा ये तीन धातुओंका आश्रय करके रहते हैं अर्थात् तीन दोष और रुधिर, मांस तथा मेद इनका आश्रय करके रहते हैं ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण।

**वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ॥ सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥३९॥ सकंडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत् ॥ वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥**

भाषा-वादीसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसे कमलपत्रके समान लाल होय और उसमें दाह होय। उसके ऊपरके बाल गिर पडें। कफके योगसे वह कोढ सपेद, गाढा और भारी होय उसमें खुजली चले। इसी क्रमसे रुधिर, मांस और मेद-काभी ठिकाना जानना अर्थात् दोष रक्ताश्रित होनेसे लाल, मांसाश्रित होनेसे तामेके रंग और मेदाश्रित होनेसे सपेद किलास होता है ॥

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण।

**अशुक्लरोमा बहलमसंश्लिष्टमथो नवम् ॥**
**अनाग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥**

भाषा-जिस श्वित्र कोढके ऊपरके बाल सपेद न भये हों तथा जो पतले होकर आपसमें मिले नहीं तथा नवीन हों तथा अग्निदग्ध न हों वह श्वित्रकोढ साध्य जानना। इससे विपरीत असाध्य जानना ॥

किलासके असाध्य लक्षण।

**गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरंतनम् ॥**
**वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४२ ॥**

भाषा-गुदास्थानमें, हाथोंमे, पैरोंके तलुओंमे, होठोंमे प्रगट भया किलास कुष्ठ थोडे दिनका होय तौभी यश मिलनेकी इच्छावाला वैद्य छोड दे ॥

सांसर्गिकरोग।

**प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ॥ सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४३ ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ॥ औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४४ ॥**

भाषा-मैथुनादि प्रसंगसे अथवा शरीरके स्पर्शसे, श्वासके लगनेसे, साथ बैठकर एक पात्रमें भोजन करनेसे, एक साथ एक शय्या ( पलंग ) पर सोनेसे तथा एक साथ मिलकर बैठनेसे, पास रहनेसे, धारण करे वस्त्रको धारण करनेसे, सूंघे पुष्पको सूंघनेसे अथवा पहरी हुई मालाको धारण करनेसे, लगाये हुए चंदनके लगानेसे, कोढ, ज्वर, धातुशोप अर्थात् क्षईका रोग, नेत्ररोग ( आंख दूखना ) और औपसर्गिक रोग कहिये शीतलादिक और भूतोपसर्गादिक ये संक्रामिक रोग एक पुरुषसे उडकर दूसरे मनुष्यके हो जाते हैं। इसीसे पूर्वोक्त रोगियोंका प्रसंगादिक न करे ॥

यथा

**म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवे ॥**
**नातो निंद्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ४५ ॥**

भाषा-कुष्ठरोगी मरे तौ फिर उसके दूसरे जन्ममें यह दुष्ट रोग होता है इसीसे इस कुष्ठरोगके समान और दूसरा निंद्य रोग नहीं है। कुष्ठरोगकी निरुक्ति " कुत्सितं तिष्ठतीति कुष्ठम्। कुष्ठं भेषजरोगयोरिति हैमः " ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां कुष्ठरोगनिदानं समाप्तम्।

## अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्।

शीतपित्तनिदानसंप्राप्ति।

**शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ॥**
**पित्तेन सह संभूय बहिरंतर्विसर्पतः ॥ १ ॥**

भाषा-शीतल पवनके लगनेसे कफ वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर ( रक्तादिकोंमें ) और बाहर त्वचामें विचरे ॥

पूर्वरूप ।

**पिपासारुचिहृल्लासमोहसादांगगौरवम् ॥**
**रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥**

भाषा-प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये पूर्वरूप शीतपित्तके जानने ॥

उदर्दके लक्षण ।

**वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः ॥**
**सकंडूस्तोदबहुलच्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥**
**उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ॥ ३ ॥**

भाषा-वरटी ( ततैया ) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ता हो जाय उनमें खुजली चले और सुई चुभानेकीसी पीडा होय । इसके संयोगसे वमन, संताप और दाह होय, इस रोगको उदर्द कहते हैं । कोई इसको शीतपित्त कहते हैं । इसको लौकिकमें पित्ती कहते हैं इसमें खुजली होय है सो कफसे जानना । चोटनी वादीसे होय है और ओकारी संताप और दाह ये पित्तसे होते हैं ऐसा जानना ॥

**वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥**

भाषा-शीतपित्तमें वात प्रधान तथा उदर्द कफप्रधान जानना ॥

उदर्दका दूसरा धर्म ।

**सोत्संगैश्च सरागैश्च कंडूमद्भिश्च मंडलैः ॥**
**शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥**

भाषा-सरदीसे कफका कोप होकर अंगके ऊपर लाल लाल चकत्ता उठे, उनमें खुजली बहुत चले और वे मंडलके साकार गोल हों वीचमें कुछ नीचे ओरपास ऊंचे होंय इस रोगको उदर्द कहते हैं ॥

कोठके लक्षण ।

**असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ॥**
**मंडलानि सकंडूनि रागवंति बहूनि च ॥**
**उत्कोठः सानुबंधश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥**

भाषा-वमनकारक औषध सेवन करनेसे, अच्छी रीतिसे वमन न होनेसे, पित्त और कफ कुपित होनेसे अथवा स्वतः वमनके वेग आय भयेको रोकनेसे

देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठें, उनमें खुजली चले इस रोगको उत्कोठ कहते हैं और वारंवार होय और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश हो जाय उसको कोठ कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शीतपित्तोदर्दकोठनिदानं समाप्तम् ।

# अथाम्लपित्तनिदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप ।

**विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपि पानान्नभुजो विदग्धम् ॥**
**पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥ १ ॥**

भाषा–विरुद्ध ( क्षीरमत्स्यादि ) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसे अन्नपानको सेवन करनेसे वर्षादि ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचित भया पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥

अम्लपित्तके लक्षण ।

**अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥**
**हृत्कंठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥**

भाषा–अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी, तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त वैद्य जाने ॥

अम्लपित्त दो प्रकारका एक ऊर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत उसमें प्रथम अधोगतके लक्षण ।

**तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारी प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ॥**
**हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥**

भाषा–अम्लपित्त अधोगत होनेसे प्यास, दाह, मोह ( इन्द्रियमनोमोह ), मूर्च्छा भ्रम, मोह, सूखी रद, मंदाग्नि, कोठ कानमें पसीना, देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काला लाल दुर्गंधियुक्त अनेक वर्णका पित्त गिरे ॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण ।

**वांतं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्तो भवतीव चास्रम् ॥**
**मांसोदकाभं त्वतिपिच्छलाच्छश्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥**

**भक्ते विदग्धे त्वथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित् ॥**
**उद्गारमेवंविधमेव कंठे हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥ ५ ॥**

भाषा–ऊर्ध्वगत पित्तसे हरे, पीले, नीले काले तामेके रंगके, लाल, अत्यंत खट्टे, मांस धोये हुए जलके समान, अत्यंत गाढा, स्वच्छ, कफमिश्रित, खारी, कषैला आदि संयुक्त ऐसे पित्त गिरें। कभी कभी भोजन करा अन्न विदग्धावस्थाको प्राप्त होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कडुई खट्टी ऐसी वमन होय तथा ऐसीही डकारें आवें, कंठ, कूख और हृदय इनमें दाह होय, माथा दूखे ॥

कफपित्तजन्य अम्लपित्तके लक्षण ।

**करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ॥**
**जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥**

भाषा–हाथ पैरोंमें दाह, अंगोंमें गरमी, अन्नमे अरुचि, ज्वर कंडू ( खुजली ) रुधिरके बिगडनेसे देहमें मंडल हों, सैकडों पिटिका और अविपाकादि अनेक उपद्रव ये लक्षण कफपित्तसे होते हैं ॥

साध्यासाध्य विचार ।

**रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ॥**
**चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥ ७ ॥**

भाषा–यह अम्लपित्तरोग नया होय तो यत्न करनेसे साध्य होय और बहुत दिनका होय तो याप्य जानना और जो अपथ्य सेवन करनेवाला पुरुष है उसके यह अम्लपित्तरोग कृच्छ्रसाध्य होता है ॥

अम्लपित्तमें केवल वायुका और वातकफका संसर्ग होता है सो कहते हैं ।

**सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् ॥**
**दोषलिंगेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हितम् ॥ ८ ॥**

भाषा–वातयुक्त अम्लपित्त वातकफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त ऐसे तीन प्रकारके अम्लपित्त बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने। इसका कारण यह है कि ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें छर्दि ( रद ) रोगका भास होता है और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होती है, इसीसे वैद्यको मोह होता है। इसीसे वैद्यको इस रोगकी सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

**कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ॥**
**तमसो दर्शनविभ्रमविमोहहर्षाश्च वातयुते ॥ ९ ॥**

भाषा-वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा ( चींटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान ), देहग्लानि, पेट दूखना नेत्रोंके आगे अंधकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्रियमनको मोह, रोमांच खडे हों ये लक्षण होते हैं ॥

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

**कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः ॥**
**दहनबलसादकंडूर्निद्रा चिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥**

भाषा-कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेला गिरें, शरीरका अत्यंत जडपना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुखसे, कफसे लिहसा रहे, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं ॥

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

**उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥**

भाषा-वातयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं ॥

कफपित्तके लक्षण ।

**भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजः ॥**
**प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥**

भाषा-भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकपीडा, मुखसे पानी वहन मुखमें मिठास ये कफपित्तयुक्त अम्लपित्तके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां अम्लपित्तनिदान समाप्तम् ।

# अथ विसर्पनिदानम् ।

इसकी निदानपूर्वक संख्यारूप संप्राप्ति और निरुक्ति ।

**लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः ॥**
**विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥**

भाषा-खारी, खट्टा, कडुवा, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प रोग होता है वह सर्वत्र फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं सो चरकमें लिखाभी है[1] ॥

---

१ " त्रिविध सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः । परिसर्पोऽथ वा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥ " इति ।

सर्व प्रकारके विसर्प रक्तादिक चार दूष्य और वातादि तीन दोष इनसे होते हैं सो कहते हैं।

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ २ ॥

भाषा-रुधिर, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वातादि तीन दोष ये सात धातु विसर्पके उत्पन्न होनेके कारण हैं ॥

वातविसर्पके लक्षण।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमाकृतिः ॥
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदपामार्त्तिहर्षवान् ॥ ३ ॥

भाषा-वादीसे विसर्प जो होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों तथा वह विसर्प लंबा होता है ॥

पित्तविसर्पके लक्षण।

पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥

भाषा-पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैल जाय यथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यंत लाल हो ॥

कफविसर्पके लक्षण।

कफात्कंडूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ४ ॥

भाषा-कफकी विसर्पमें खुजली बहुत होय तथा चिकनी होय और उसमें कफज्वरकीसी पीडा करे ॥

सन्निपातविसर्पके लक्षण।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥

भाषा-सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे हैं वे सब होते हैं ॥

अग्निविसर्पके लक्षण।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ॥ ५ ॥ अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकीर्णवत् ॥ ६ ॥ यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेच्च सः ॥ शांतांगारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशूपचीयते ॥ ७ ॥ अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोतिब-

लस्ततः ॥ ८ ॥ व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ हिक्कां च सततोऽवस्थामीदृशीं लभते नरः ॥९॥ क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहस्मुद्भवाम् ॥ दुर्बोधामश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥१०॥

भाषा—वातपित्तसे प्रगट विसर्प, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भौंर, हडफूटन, मंदाग्नि, अंधकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय इसके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोंसे भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्निरहित अंगारके समान काला, नीला, लाल होकर शीघ्र सूजे, आगसे फूंकेके समान ऊपर, फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्र गति होनेसे जल्दी हृदयमें जाकर मर्मानुसारी विसर्प होय अथवा वह अत्यन्त बलवान् होय अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश बढावे तथा हिचकी उत्पन्न करे ऐसी मनुष्यकी अवस्था होय। यवस्था होनेके कारण धरती, सेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख होता नहीं, हलने चलनेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा ( मरणरूपी निद्रा ) को प्राप्त होय इस रोगको अग्निविसर्प ऐसा कहते हैं ॥

### ग्रंथिविसर्पके लक्षण।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ ११ ॥ रक्तं च वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ १२ ॥ ग्रंथीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥ १३ ॥ मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभंगाग्निसदनैर्युतम् ॥ इत्ययं ग्रंथिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १४ ॥

भाषा—स्वहेतुसे कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा बढे भये रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, नाडी और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्ट कर लंबी, छोटी, गोल, मोटी, खरदरी, लाल गांठोंकी माला प्रगट करे। उन गांठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खासी, अतिसार, मुखमें पपडी परे, हिचकी, वमन, भ्रमता, मोह वर्णका पलटना, मूर्च्छा अंगोंका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होवे हैं। इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं। यह कफवायुके कोपसे उत्पन्न होता है। इसको सुश्रुत अपची कहते हैं ॥

### कर्दमविसर्पके लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तंभो निद्रा तंद्रा शिरोरुजः ॥ अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥१५॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥१६॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ पिंडकैरिव कीर्णोऽतिपीतलोहितपांडुरैः ॥ १७ ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान् गुरुः ॥ गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ १८ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥ शवगंधि च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशांति तम् ॥ १९ ॥

भाषा—कफपित्तसे ज्वर, अंगोंका जकडना, निद्रा तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथ पैरोंका पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रियोंका जकडना, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों ( छिद्रों ) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं। तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमें पीडा थोडी होय, उसमें सर्वत्र पीली, तामेके रंगकी, सपेद रंगकी पिंडिका होय तथा वह विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो। उसमें घोर दाह हो और वह दवानेसे तत्क्षण गीली हो जाय तथा वह फट जाय तथा कीचके समान होकर उसका मांस गल जाय। उसमें शिरा नाडी ( नस ) दीखने लगे, उसमें मुर्देकीसी वास आवे, इस विसर्पको कर्दम कहते हैं ॥

### क्षतज विसर्पके लक्षण ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलित्थसदृशैश्चितम् ॥ २० ॥
स्फोटैः शोथज्वररुजा दाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २१ ॥

भाषा—बाह्यकारण करके क्षत ( घाव ) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिरसहित पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे। उसमें कुलथीके समान श्यामवर्णके फोडे होते हैं, सूजन हो, ज्वर हो और दाह होय। उसका रुधिर काला निकले इस विसर्पको पित्तविसर्पके अन्तर्गत जाननेसे संख्यामें विरुद्ध नहीं पडे अन्यथा संख्या बढ जाती है यह भोजका मत है ॥

उपद्रव।

ज्वरातिसारवमथुस्तृण्मांसदरणं क्रमः ॥
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २२ ॥

भाषा—ज्वर, अतिसार, वमन, प्यास, मांसका गलना, अनायास श्रम, अरुचि, अन्न न पचना ये विसर्प रोगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण।

सिध्यंति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः कफकृतश्च न सिद्धिमेति ॥ पित्तात्मकोऽजनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवंति हि सर्व एव ॥ २३ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे प्रगट जो विसर्प वह साध्य होता है। सन्निपातज और क्षतज विसर्प साध्य नहीं होता है। पित्तसे प्रगट भया विसर्प जिसका काजलके समान अंग होय वह असाध्य और जो विसर्प मर्म ठिकानेपर होय वे सब कष्टसाध्य होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विसर्परोगनिदान समाप्तम्।

# अथ विस्फोटनिदानम्।

लक्षण।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ॥
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यंति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ॥
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

भाषा—कडुआ, खट्टा, तीखा ( मरिचादि ), गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय ( ऋतुका पलटना ) इन कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक ( फोडा ) उत्पन्न करें। उनके प्रगट होनेसे पूर्व घोर ज्वर होता है ॥

विस्फोटस्वरूप ।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ॥
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

भाषा–रक्तपित्तसे प्रगट भये ऐसे अग्निकरके जरेके समान, फोडा अंगमें किसी एक ठिकाने अथवा सब देहमें होय हैं उनके होनेसे ज्वर होय उनको विस्फोटक ऐसा कहते हैं इस रोगमेंभी वातका अनुबंध होता है सो भोजने कहा है ॥

वातविस्फोटके लक्षण ।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ॥
सुकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा–मस्तकमे पीडा शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधियोंमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटके लक्षण हैं ॥

पित्तविस्फोटके लक्षण ।

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ॥
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

भाषा–ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीली हो अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटके लक्षण हैं ॥

कफविस्फोटके लक्षण ।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कंडूकाठिन्यपांडुताः ॥
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

भाषा–वमन, अरुचि, जडता तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले और उनमें पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें यह विस्फोट कफका लक्षण जानना ॥

कफपित्तात्मक विस्फोट ।

कंडूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ॥

भाषा–खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोट जानना ॥

वातपित्तात्मकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्य कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

भाषा–वातपित्तके विस्फोटमें तीव्र पीडा होती है ॥

---

१ यदाह भोजः–"यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि । अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुतः सर्वदेहगान् ॥ सज्वरान् सपरीदाहान् विद्याद्विस्फोटकास्तु तान् ।" इति ।

कफवातात्मकके लक्षण।

**कंडूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥**

भाषा–खुजली, गीलापना, भारीपना इन लक्षणोंसे कफवातका विस्फोट जानना ॥

सन्निपातविस्फोटके लक्षण।

**मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रकोपवान् ॥**
**दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ॥**
**प्रलापो वेपथुस्तंद्रा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ९ ॥**

भाषा–जो फोडा बीचमें नीचे होय और आसपाससे ऊंचा होय, कठिन, कुछ पका होय है। तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तन्द्रा ये लक्षण होते हैं वह सन्निपातका विस्फोट असाध्य है ॥

रक्तज विस्फोटके लक्षण।

**रक्ता रक्तसमुत्थाना गुंजाफलनिभास्तथा ॥**
**वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥**
**न ते सिद्धिं समायांति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १० ॥**

भाषा–रुधिरसे प्रगट भया विस्फोट तामेके रंगका, गुंजा (चिरमिटी) के समान लाल, वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है। इसमें सैकडों अनुभव करी औषधके करनेसेभी साध्य नहीं होते ॥

साध्यासाध्यविचार।

**एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषतः ॥**
**सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥**

भाषा–एक दोषसे प्रगट भया जो विस्फोट वह साध्य है। द्विदोषका कष्टसाध्य है और सर्व लक्षणयुक्त होय सो भयंकर तथा जिसमें उपद्रव बहुत होय वह विस्फोट असाध्य है ॥

उपद्रव।

**हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा अंगसादो हृदि व्यथा ॥**
**विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १२ ॥**

भाषा-हिचकी, श्वास, अरुचि, प्यास, अंगग्लानि, हृदयमें पीडा, विसर्परोग, ज्वर, वमन ये विस्फोटके उपद्रव जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विस्फोटनिदानं समाप्तम् ।

# अथ मसूरिकानिदानम् ।

कारण और संप्राप्ति ।

**कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ॥ दुष्टनिष्पावशाकादिप्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥ क्रुद्धग्रहेक्षणाच्चापि देहे दोषाः समुद्धताः ॥ जनयंति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥ मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥**

भाषा-कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्ध भोजन, अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ) दुष्ट अन्न, निष्पाव ( शिंबीबीज, उरद, मूंग ) आदि, शाक, विषैले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना इन सब कारणोंकरके शरीरमें वातादि दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करे, उनको मसूरिका ( माता ) ऐसा कहते हैं । " दुष्टरक्तेन संगता " इस पदके धरनेसे रुधिरका कटु अम्लादि हेतुकरके विशेष कोप दिखाया । इसीसे ग्रंथांतरोंमें लिखाभी है ॥

मसूरिकाके पूर्वरूप ।

**तासां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभंगोऽरुचिर्भ्रमः ॥
त्वचि शोफः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥**

भाषा-तिस माता ( शीतला ) के पूर्व ज्वर होता है, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि. भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होंय ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ॥

वातकी मसूरिकाके लक्षण ।

**स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः ॥
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवंत्यनिलसंभवाः ॥ ४ ॥**

---

१ " पित्त शोणितसंसृष्ट यदा दूषयति त्वचम् । तदा करोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम् ॥ मसूरमुद्गमाषाणां तुल्याः कालोपमा इति । मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ताधिका बुधैः ॥ " इति ।

**संध्यास्थिपर्वणां भेदः कासः कंपोऽरतिः क्रमः ॥**
**शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥**

भाषा—वातमसूरिकाके फोडा काले, लाल और रूक्ष होते हैं । उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होय, शीघ्र पके नहीं, इसके योगसे संधे, हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खांसी, कंप, चित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ, होंठ और जीभ ये सूजने लगें, प्यास अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण ।

**रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥**
**भवंत्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥**
**विड्भेदश्चांगमर्दश्च दाहतृष्णाऽरुचिस्तथा ॥**
**मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीक्ष्णः सुदारुणः ॥ ७ ॥**

भाषा—पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सफेद होय है । उसमे दाह तथा पीडा बहुत होय और ये शीतला शीघ्र पकें । इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होते हैं ॥

रक्तज मसूरिकाके लक्षण ।

**रक्तजायां भवंत्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥**

भाषा—रक्तज मसूरिकामें पित्तज मसूरिकाके लक्षण होते हैं ॥

कफज मसूरिकाके लक्षण ।

**कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥**
**हृल्लासः सारुचिर्निद्रा तंद्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥**
**श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कंडूरा मंदवेदनाः ॥**
**मसूरिका कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥**

भाषा—कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय अंगमें आर्द्रता तथा भारीपना, मस्तकमे शूल, वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य ये होंय । और फोडा सफेद, चिकने, अत्यंत मोटे होंय । इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय और वे बहुत दिनमें पकें ॥

त्रिदोषज मसूरिकाके लक्षण ।

**नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः ॥**
**चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ११ ॥**

भाषा–त्रिदोषज मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होते हैं उनमें पीडा अत्यंत होय तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमेंसे दुर्गंधयुक्त स्राव होय वे फोडे सर्व दोषके बहुत होते हैं ॥

चर्मपिडिका ।

**कंठरोधोऽरुचिस्तंद्राप्रलापारतिसंयुता ॥**
**दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥**

भाषा–जिस फोडके होनेसे कंठ रुक जाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप चैन न पडना ये लक्षण होते हैं। जिनकी औषधि नहीं हो सके ऐसी चर्मसंज्ञक पिडिका जाननी ॥

रोमांतिक ।

**रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ॥**
**कासारोचकसंयुक्ता रोमांत्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥**

भाषा–कफपित्तसे केशों ( बालों ) के छिद्रके समान बारीक और लाल ऐसी मसूरिका होय । इनके होनेसे खांसी अरुचि होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय । इनको रोमांच ( कसूमीमाता ) ऐसा कहते हैं ॥

## रसादि सप्त धातु ।

रसगत मसूरिकाओंके लक्षण ।

**तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः ॥**
**स्वल्पदोषाः प्रजायंते भिन्नास्तोयं स्रवंति च ॥ १४ ॥**

भाषा–रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हों, इनके फूटनेसे पानी बहे यह त्वग्गत मसूरिका है । कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है ॥

रक्तगत मसूरिकाके लक्षण ।

**रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ॥**
**साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवंति च ॥ १५ ॥**

भाषा–रुधिरगत मसूरिका तामेके रंगकी, जल्दी पकनेवाली होती है । उनके ऊपरली त्वचा पतली होती है । यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं होय और इसके फूटनेसे इसमेंसे रुधिर निकले ॥

मांसगतके लक्षण ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ॥
गात्रशूलोऽरतिः कंडूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ १६ ॥

भाषा-मांसस्थ मसूरिका कठिन, चिकनी होती है। ये बहुत दिनमे पकें तथा इसकी त्वचा पतली होय, अंगोमें शूल होय चैन पडे नही, खुजली चले, मूर्च्छा दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं ॥

मेदोगतके लक्षण ।

मेदोजा मंडलकारा मृदवः किंचिदुन्नताः ॥
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः कृष्णाः सवेदनाः ॥
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १७ ॥

भाषा-मेदोगत मसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती है। इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्रिय मनको मोह, पित्तका अस्थिर होना, संताप ये लक्षण होते हैं। इस मसूरिकासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा। इसमें यह दिखाया कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है ॥

अस्थिमज्जागतके लक्षण ।

अस्थिगात्रसमारूढाश्चिपिटाः किंचिदुन्नताः ॥ मज्जोत्था भृशसं-
मोहवेदनारतिसंयुताः ॥ १८ ॥ छिंदंति मर्मधामानि प्राणाना-
शु हरंति ताः ॥ भ्रमरेणेव विद्धानि भवंत्यस्थीनि सर्वतः ॥ १९ ॥

भाषा-अस्थिमज्जागत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होती है, अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये लक्षण होते हैं। तिन मर्मस्थानोंमें भेदकरके शीघ्र प्राण हरण करे। इसके होनेसे सर्व हड्डियोंमे भौंरेके काटनेके समान पीडा होती है ॥

शुक्रगतके लक्षण ।

पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः ॥
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ २० ॥
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवंति च ॥
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते नतु जीवितम् ॥ २१ ॥

भाषा-शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी, अलग अलग होती हैं। इनमें अत्यंत पीडा होय, इनके होनेसे गीलापना, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद

ये लक्षण होते हैं। रोगी बचे ऐसा इसमें कोई लक्षण नहीं दीखे, इसीसे इसको असाध्य जानना ॥

सप्तधातुगत मसूरिकाके दोषके संबंधसे लक्षण कहते हैं।

**दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥**

भाषा—ये सप्तधातुगत मसूरिका वातादिकोंके लक्षणोंकरके तीन दोषों करके मिश्रित प्रगट भई जाननी ॥

धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौन साध्य हैं सो कहते हैं।

**त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ॥ २२ ॥**
**पित्तश्लेष्मकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ॥**
**एता विनापि क्रियया प्रशाम्यंति शरीरिणाम् ॥ २३ ॥**

भाषा—रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य हैं। ये औषधके विनाभी शांत होती हैं ॥

कष्टसाध्य।

**वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः ॥**
**कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २४ ॥**

भाषा—वातज, वातपित्तज, वातकफज मसूरिका कष्टसाध्य हैं। इनकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करे ॥

असाध्य मसूरिकाके लक्षण।

**असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥**
**प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जंबूफलोपमाः ॥ २५ ॥**
**लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः ॥**
**आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २६ ॥**

भाषा—सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं उनके लक्षण कहता हूं। कोई मूंगाके समान लाल होय, कोई जामनके समान और कोई लोहजालके समान तथा अलसीके बीजके समान होती हैं। दोषोंके भेदकरके इनके अनेक प्रकारके रंग होते हैं ॥

सर्वमसूरिकाके अवस्थाविशेषकरके लक्षण।

**कासो हिक्काथ मोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ २७ ॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा**

**घ्राणेन चक्षुषा ॥ कंठे घुघुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ २८ ॥ मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत् ॥ स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः ॥ २९ ॥**

भाषा–खासी, हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, असंतोष, मूर्च्छा, प्यास, दाह, नेत्र टेढे, तिरछे, बांके, फटेसे ये लक्षण होते हैं। मुख, नाक और नेत्र इनके मार्ग होकर रुधिर गिरे, कंठमे घरघर शब्द होय और भयंकर श्वास ले । जो मसूरिकापीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय वह पुरुष वायु और तृषा इनसे पीडित होता हुआ तत्काल प्राण त्याग करे ॥

मसूरिकाके उपद्रव ।

**मसूरिकांते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबंधके ॥**
**तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३० ॥**

भाषा–मसूरिका ( शीतला ) के अंतमें कूर्परपर पहुँचा तथा कंधा इनमें सूजन होय । इसको व्यवहारमें गुरु ऐसा कहते हैं । यह चिकित्सा करनेमें कठिन है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मसूरिकानिदान समाप्तम् ।

# अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अजगल्लिका ।

**स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ॥**
**कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥**

भाषा–बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णके समान वर्ण होय, गांठसी बंधी, रुजा ( पीडा ) रहित तथा मूंगाके सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं ॥

यवप्रख्याके लक्षण ।

**यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ॥**
**पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति चोच्यते ॥ २ ॥**

भाषा–कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गांठके सदृश, मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते है । भोजके मतसे इसको अंत्रालजी कहते हैं॥

१ " श्लेष्मानिलौ श्रितौ स्नायु पिडिकां पित्तमडलम् । दुष्टौ जनयतो वक्रामल्पपूयामकण्डुराम् ॥ आमो दुस्तरसकाशा विद्यादन्त्रालजीं तु ताम् ॥ " इति ।

अंधालजी ।

**घनामवक्त्रां पिटिकामुन्नतां परिमंडलम् ॥**
**अंधालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥**

भाषा—कफवातसे प्रगट, काठिन, जिसमें मुख न हो तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय । तथा जिसके चारों ओर मंडलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय उसको अंधालजी ऐसा कहते हैं ॥

विवृतापिडिकाके लक्षण ।

**विवृतास्यां महादाहां पक्कोदुंबरसन्निभाम् ॥**
**परिमंडलां पित्तकृतां विवृतां नाम तां विदुः ॥ ४ ॥**

भाषा—पित्तके योगसे फटे मुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान चारों ओर बल पडी हुई जो पिडिका होय उसको विवृता ऐसा कहते हैं ॥

कच्छपिकाके लक्षण ।

**ग्रथिताः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ॥**
**कफानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥**

भाषा—कफवायुसे प्रगट गांठ बंधी, पांच अथवा छः कठिन कछुएके पीठके समान ऊंची जो पिडिका होय उनको कच्छपिका ऐसा कहते हैं ॥

वल्मीकपिडिकाके लक्षण ।

**ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ॥**
**ग्रंथिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ६ ॥**
**मुखैरनेकैः श्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ॥**
**वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ७ ॥**

भाषा—कंठ, कंधा, कूख, हाथ, पैर, संधि, गला इन ठिकाने तीनों दोषोंसे सर्पकी बांबीके समान गाठ होय उसका उपाय न करे तब वह धीरे धीरे बढे, उसमें अनेक मुख हो जांय, उनमेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीक ऐसा कहते हैं । इसके ऊपर औषधी उपचार नहीं चले और पुराना होनेसे विशेष असाध्य जानना ॥

इन्द्रवृद्धाके लक्षण।

**पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् ॥**
**इंद्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥**

भाषा–कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसी होंय उसको इन्द्रवृद्धा ऐसा कहते हैं। यह वातपित्तसे उत्पन्न होती है॥

गर्दभिकाके लक्षण।

**मंडलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिटिकाचितम् ॥**
**रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥**

भाषा–वातपित्तसे प्रगट एक गोल, ऊंचा तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय वह बहुत दूखे उसको गर्दभिका ऐसा कहते हैं॥

पाषाणगर्दभलक्षण।

**वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ॥**
**स्थिरो मंदरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ १० ॥**

भाषा–वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन, मन्द पीडा करनेवाली, चिकनी ऐसी सूजन होय उसको पाषाणगर्दभ ऐसा कहते हैं॥

पनसिका।

**कर्णस्याभ्यंतरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम् ॥**
**स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥**

भाषा–कानके भीतर वात, पित्त, कफसे जो फुंसी उग्रवेदनासहित प्रगट होती है और वह स्थिर होय, उसको पनसिका कहते हैं॥

जालगर्दभ लक्षण।

**विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ॥**
**दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥**

भाषा–पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय उसमें दाह होय और ज्वर होय इसको जालगर्दभ कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि इसमें पक्कता नहीं होती यथा॥

---

१ "कफवातौ प्रकुपितौ मांसमाश्रित्य कर्णयोः। समन्ततः परिस्तब्धां कुरुतः पिडिकां स्थिराम् ॥ विषमां दाहसयुक्तां विद्यात्पनसिका तु ताम्।" इति। २ "पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयति त्वगाश्रिताः। श्याव रक्त तनु शोथमपाक बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम्। विसर्पमाहुस्त व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥" इति।

इरिवेल्लिकाके लक्षण ।

**पिडिकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ॥**
**सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १३ ॥**

भाषा–त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको इरिवेल्लिका कहते हैं ॥

कक्षा ( कखलाई ) के लक्षण ।

**बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥**
**पित्तकोपसमुद्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥**

भाषा–बाहु ( भुजा ) की जड, कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका हो उसको कक्षा वा कखलाई कहते हैं ॥

गंधनाम्नीके लक्षण ।

**एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम् ॥**
**त्वग्गतां पित्तकोपेन गंधनाम्नीं प्रचक्षते ॥ १५ ॥**

भाषा–पित्तके कोपसे जो एक पिडिका फोडाके समान वडी त्वचाके भीतर होय उसको गंधनाम्नी ऐसा कहते हैं ॥

अग्निरोहिणी ( काली फुंसी ) के लक्षण ।

**कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायंते मांसदारुणाः ॥ अंतर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वा द्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हंति मानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ १७ ॥**

भाषा–कांखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं तिसकरके अंतर्दाह होय तथा ज्वर होय । वे फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय, इन फोडाओंमे वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिकसे बारह दिन और कफाधिकसे ५ दिनमे रोगी मरे । यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है यह कठिन है ॥

चिप्यके लक्षण ।

**नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् ॥**
**कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥**
**तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखं परुषं वदेत् ॥ १८ ॥**

भाषा-वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह और पापको करे इस रोगको चिप्य ऐसा कहते हैं। यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं ॥

अनुशयके लक्षण।

**गंभीरामल्पसंरंभां सवर्णामुपरिस्थिताम् ॥**
**पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादंतःप्रपाकिनीम् ॥ १९ ॥**

भाषा-पैरोंमे त्वचाके समान वर्ण, यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी ऐसा कहते हैं ॥

विदारिकाके लक्षण।

**विदारीकंदवद्वृत्ता कक्षावंक्षणसंधिषु ॥**
**विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २० ॥**

भाषा-विदारीकंदके समान गोल, काखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तामेके रंगकीसी होय उसको विदारिका ऐसा कहते हैं। यह सन्निपातसे होती है अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

शर्करा।

**प्राप्य मांसं शिरा स्नायुः श्लेष्मा मेदस्तथानिलः ॥**
**ग्रंथिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २१ ॥**
**स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ॥**
**मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २२ ॥**

भाषा-कफ, मेद और वायु ये मास, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गाठ बांधते हैं जब वह फटे तब उसमें सहत, घृत, चर्वी इनके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः वढकर मासको सुखाय उसकी वारीक खीचीसी गांठ करे उसको शर्करा कहते हैं ॥

शर्करार्बुदके लक्षण।

**दुर्गंधि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥**
**स्रवंति रक्तं सहसा तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २३ ॥**

भाषा-शर्करा होनेके अनन्तर नाडियोंसे दुर्गंध, क्लेदयुक्त, अनेक प्रकारके वर्णका ( घृत, मेद और वसा इनके वर्णका ) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं। परंतु भोजने शर्करार्बुदको शर्करारोगके अंतर्गत कहा है ॥

---

१ " तमेव भिन्नदुर्गंधं घृतमेदोनिभं शिराः। स्रवति स्रावमनिशं सदा स्याच्छर्करार्बुदम् ॥ " इति।

पाददारीके लक्षण ।

**परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ॥**
**पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ २४ ॥**

भाषा-जिस पुरुषको बहुत चलना पडे है उसके पैर वायुके योगसे अत्यंत रूक्ष होकर पैरोंके तलुओंको विदीर्ण कर दे ( फाड दे ) उसको पाददारी कहते हैं अर्थात् बिवाई कहते हैं । विपादिका कुष्ठ फटे नहीं है फूट निकले है यह इनमें भेद जानना ॥

कदर ( ठेक ) के लक्षण ।

**शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ॥**
**ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥ २५ ॥**

भाषा-पैरोंमें कंकर छिदनेसे अथवा कांटा लगनेसे बेरके समान ऊंची गांठ प्रगट होय, उसको कदर अर्थात् ठेक कहते हैं । अथवा " ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो " इस जगह " ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो " ऐसाभी पाठ है । अर्थात् कीलके समान जो गांठ होय उसको कदर कहते हैं । यह कदररोग हाथोंमेभी होता है सो भोजने लिखाभी है ॥

अलस ( खारुआ ) के लक्षण ।

**क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कंडूदाहरुजान्वितौ ॥**
**दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २६ ॥**

भाषा-दुष्ट कीचमें डोलनेसे ( वर्षा आदिका पानी और सड़ी कीचमें डोलनेसे ), पैरोंकी ऊंगली गीली रहनेसे, उंगलियोंके बीचमें सपेद २ चकत्ता हो जांय, उनमें खुजली, दाह और गीलापना होय तथा पीडा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं यह कफरक्तके दोषसे होता है ॥

इंद्रलुप्त ( चाई ) के लक्षण ।

**रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ॥ प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ २७ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्ये- षामसंभवः ॥ तदिंद्रलुप्तं खालित्यं प्राहुश्चाचेति चापरे ॥ २८ ॥**

भाषा-पित्त वादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमे अर्थात् वालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो तब मस्तक अथवा अन्य स्थानके वाल झडने लगें पीछे कफ और रुधिर

---

१ " हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगत स्थिरम् । मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमारुतौ ॥ सशल्यमिव त देश मन्यंते तेन पीडितम् । शर्कराकदरं केचिन्मन्यन्ते वातकंटकम् ॥ " इति ।

रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोक दे, उससे फिर बाल नहीं ऊगें इस रोगको इन्द्रलुप्त, खालित्य, चाचा ( चाई ) कहते हैं । यह रोग स्त्रियोंके नहीं होता है, कारण इसका यह है कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलता रहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नहीं रोके है । सो विदेहाचार्यने लिखाभी है और इसी रोगको खालित्य और रुह्या कहते हैं सो भोजने लिखा है । परंतु कार्तिकाचार्य कहते हैं कि इन्द्रलुप्त रोग मूछ, डाढीमें होता है और खालित्यरोग शिरमें होता है और रुह्यारोग पीडासहित होता है ॥

दारुणकके लक्षण ।

**दारुणा कंडुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपच्यते ॥**
**कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ २९ ॥**

भाषा–कफवायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होय तथा बारीक फुंसी होकर पकै उसको दारुणक ऐसा कहते हैं । कफवातके कोपसे यह रोग होता है । इसका कारण यह है कि विना पित्तके पाक नहीं होय सो विदेहने कहाभी है ॥

अरूंषिकाके लक्षण ।

**अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्धनि ॥**
**कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३० ॥**

भाषा–रुधिर, कफ और कृमि इनके कोपसे माथेमें बहुत फुंसी हो जांय, उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेदयुक्त होंय इन फुंसियोंको अथवा व्रणोंको अरूंषिका कहते हैं ॥

पलित ( सपेद बाल ) के लक्षण ।

**क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥**
**पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३१ ॥**

भाषा–क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे उत्पन्न भई जो शरीरउष्मा ( गरमी ) और पित्त सो मस्तकमें जाकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सपेद कर दे । उसकरके यह पलितरोग होता है । पलित रोगपर मधुकोशटीकाकारने तथा भावप्रकाशने शास्त्रार्थ लिखा है ॥

---

१ " अत्यतसुकुमाराणां रजो दुष्ट स्रवात च । अव्यायामवता यस्मात्तस्मान्न खलातः स्त्रियाः ॥ " इति । २ " यदत्र पल्लाभासं सरजस्कं शिरस्त्वचि । परुष जायते जंतोस्तस्य रूप विशेषतः ॥ तोदैः समान्वित वातसकण्डु गौरव कफात् । सपिपास सदाहार्तिरागं पित्तास्रज तथा ॥ " इति ।

मुखदूषिकाके लक्षण।

**शाल्मलीकंटकप्रख्याः कफमारुतकोपजाः ॥**
**जायंते पिडिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३२ ॥**

भाषा—कफवायुके कोपसे सेमरके कांटेके समान तरुण ( जवान ) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुंसी होंय उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं। इनके होनेसे मुख बुरा हो जाता है ॥

पद्मिनीकंटकके लक्षण।

**कंटकैराचितं वृत्तं मंडलं पाण्डु कण्डुरम् ॥**
**पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३३ ॥**

भाषा—कमलके कांटेके समान कांटे चारों ओर युक्त हों; गोल, पीले रंगका, खुजली जिसमें चलती होय ऐसा एक मंडल होय उसको पद्मिनीकंटक ऐसा कहते हैं। यह कफवायुसे होता है ॥

जंतुमणि ( लहसन ) के लक्षण।

**सममुत्सन्नमरुजं मंडलं कफरक्तजम् ॥**
**सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जंतुमणिः स्मृतः ॥ ३४ ॥**

भाषा—कफरक्तसे जन्मसेही प्रगट भई समान तथा कुछ ऊंचा, जिसमे पीडा होती नहीं ऐसा गोल मंडलके समान देहमे चिह्न होय उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसा कहते हैं। यह स्त्रीपुरुषोंके अंगभेदकरके शुभाशुभ फलदायक है ॥

माष ( मस्सा ) के लक्षण।

**अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते ॥**
**माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३५ ॥**

भाषा—वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान, काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय उसको माष ( मस्सा ) ऐसा कहते हैं। इस श्लोकमें जो चकार है उससे कफमेदसेभी मस्से होते हैं यह दिखाया। सो भोजने कहाभी है[1]॥

तिलकालक ( तिल ) के लक्षण।

**कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥**
**वातपित्तकफोत्सेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३६ ॥**

---

१ "वातेरिते त्वाचि यदा दूष्येते कफमेदसी। श्लक्ष्णं मृदु सवर्णं च कुरुते माषकं वदेत् ॥" इति।

भाषा-वात पित्त कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित त्वचासे मिले ऐसे अंगमें दाग होंय उनको तिलकालक ( तिल ) कहते हैं। " वातपित्तकफोत्सेकात् " इस पाठमें वात पित्त हेतुकरके कफका शोष होता है उसीसे तिल होते हैं। परन्तु चरकके मतसे पित्त रुधिरके शोष होनेसे तिल होते हैं। " यस्य पित्तं प्रकुपितं शोणितं प्राप्य शुष्यति। तिलकः पिप्लवका व्यंगा नीलिका चास्य जायते "॥ इस वचनसे वातभी रुधिरको शोषण करता है। अन्य ग्रंथोंमें वात, पित्त, कफ ये तीनों रुधिरको शोषण करते हैं॥

यथा।

**मारुतः पित्तमादाय कफरक्तसमाश्रितः॥**
**चिनोति तिलमात्राणि त्वचि ते तिलकालकाः॥ ३७॥**

न्यच्छके लक्षण।

**महद्वा यदि वाऽल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्॥**
**नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते॥ ३८॥**

भाषा-मुखके विना अन्य स्थानमें शरीरके ऊपर बडा अथवा छोटा, काला अथवा सपेद और पीडारहित दाग होय उसको न्यच्छ कहते हैं। यहभी व्यंगका भेद है॥

व्यंग ( झाई ) के लक्षण।

**क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः॥**
**मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः॥ ३९॥**
**नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत्॥ ४०॥**

भाषा-क्रोध और श्रम इनसे कुपित भया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे, वह दूखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्ण होय उसको व्यंग ऐसा कहते हैं॥

नीलिकाके लक्षण।

**कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः॥ ४१॥**

भाषा-पूर्वोक्त व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय अथवा मुखपर होय उसको नीलिका कहते हैं। भोजने इस जगह नीलिकागात्र ऐसा कहा है अर्थात् सर्व देह नीली होती है॥

---

१ " मारुतः क्रोधहर्षाभ्यामूर्ध्वगो मुखमाश्रितः। पित्तेन सह संयुक्तः करोति वेदन त्वचि॥ नीरुज तनुक श्याव व्यग तमिति निर्दिशेत। कृष्णामेव त्वच गात्र नीलिका ता विनिर्दिशेत्॥ " इति।

परिवर्तिकाके लक्षण।

**मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः॥ मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्॥४२॥ तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्त्तते॥ मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते॥ ४३॥ सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित॥ परिवर्तिकेति तां विद्यात्सरुजां वातसंभवाम्॥ सकंडूः कठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता॥४४॥**

भाषा–लिंगको मर्दन करनेसे अथवा रगडनेसे उसी प्रकार लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे व्यानवायु कुपित होकर उसके चर्ममें प्रवेश कर सर्वत्र विचरे उस समय वातसंस्पर्श हेतु करके लिंगकी चर्म पृथक् हो जाय और शिश्नका कोश सूजकर मणिके नीचे गांठके समान होकर लटके उसमें पीडा होय, दाह होय और कभी कभी वह पक जाय इस पीडाको परिवर्तिका कहते हैं। यह वातसे होती है और जो कफसे होती तो उसमें खुजली तथा कठिनता होती है॥

अवपाटिकाके लक्षण।

**अल्पीयसीं यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः॥**
**हस्ताभिघातादथ वा चर्मण्युद्वातते बलात्॥ ४५॥**
**मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविधानतः॥**
**यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम्॥ ४६॥**

भाषा–जिसकी योनिका छिद्र बारीक होय ऐसी स्त्रीसे बलपूर्वक मैथुन करनेसे अथवा हाथके अभिघात (चोट) से, बलसे लिंगके चामको उलटनेसे अथवा मीडनेसे अथवा जोरपूर्वक दाबनेसे अथवा शुक्रके वेगको धारण करनेसे उस पुरुषके लिंगकी चाम फट जाय इस पीडाको अवपाटिका कहते हैं। इस अवपाटिका रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण पृथक् पृथक् होते हैं यह मत भोजका है॥

निरुद्धप्रकाशके लक्षण।

**वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम्॥ ४७॥ मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥ निरुद्धप्रकाशे तस्मिन् मंद-**

---

१ "मर्दनादभिघाताद्वा कन्यायोनिप्रपीडनात्। लक्ष्यते यदि मेढ्रस्य वर्णभेदैर्विवक्षितम्॥ अवपाटिकेति तां विद्यात् पृथग्दोषैः समन्विताम्। वाताम्लायरुर (?) जक्षाशूलानस्तोदकारणी॥ पित्तात्सदाहा रक्ताद्वा दाहपक्वकी कठिना स्निग्धा कण्डूनत्यन्तवेदनी (?)" इति। २ "मेढ्रान्ते चर्मणि यदा मारुतः कुपितो भृशम्। द्वार निरुणद्धि शनैः प्रकाशं च मुहुर्भवेत्॥ शूलं मूत्रं यत्र कृच्छ्रात्प्रकाशं तु यदा भवेत्। वातोपसृष्टमेढ्रं च मणिर्न च विदीर्यते॥ निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधि विद्यात् सुदारुणम्।" इति।

धारमवेदनम् ॥ ४८ ॥ मूत्रं प्रवर्तते जंतोर्मणिर्विव्रियते न च ॥ निरुद्धप्रकाशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ४९ ॥

भाषा—वायुके योगसे लिंग पीडित होनेसे चामडी सूजकर मणिभागमें प्राप्त होय। वह मणि चर्मके संकोच होनेसे मूत्रके मार्गको रोके तब मूत्रका रोध होय तब उस पुरुषका मूत्र ठहर ठहरकर निकले, परंतु पीडा नहीं होय और मणि बाहर नहीं निकले, इस रोगयुक्त वातजन्य पीडाको निरुद्धप्रकाश कहते हैं। चर्मके संकोच होनेको निरुद्ध कहते हैं और मूत्रकी धार मन्द निकलनेको प्रकाश कहते हैं। "अवेदनम्" यह जो मूलमें पाठ है इस जगह कोई "सवेदनम्" ऐसा कहते हैं भोज आचार्यका मत भोजसंहितामें लिखाभी है ॥

सन्निरुद्धगुदके लक्षण।

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः ॥ निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५० ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥ सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ५१ ॥

भाषा—मलमूत्रादिकोंका वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर स्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे, पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं। इस रोगमेंभी निरुद्धप्रकाशके समान चर्मका संकोच होनेसे सन्निरुद्धगुद होता है अर्थात् अपानवायुके रुकनेसे पुरीष (मल) का अनिर्गम होता है ॥

अहिपूतनाके लक्षण।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्ने वा स्नाप्यमाने वा कंडू रक्तकफोद्भवा ॥ ५२ ॥ ततः कंडूयनात्क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५३ ॥

भाषा—बालकके मल मूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनन्तर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय, तदनन्तर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होंय और उनसे स्राव होय पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे। इसे अहिपूतना कहते हैं। यह रोग बहुधा बाल लोम (छोटे छोटे रोम) में होता है। भोज[1] कहता है कि यह रोग दुष्टस्तन्यपान अर्थात् माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है ॥

१ "दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च। कण्डूदाहरुजावद्भिः पीडकैश्च समाचिता। अपूिहतना समवाति यथादोषं च दारुणा॥" इति।

वृषणकच्छूके लक्षण ।

**स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ॥ यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कंडूः संजायते तदा ॥ ५४ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥५५॥**

भाषा-जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नहीं धोवे उस पुरुषका मल अंडकोशोंमें संचित होय पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडा होय । पीछे वे फोडा स्रवकर आपसमें मिल जाते हैं । कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं ॥

गुदभ्रंशके लक्षण ।

**प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ॥**
**रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ ५६ ॥**

भाषा-जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय उस पुरुषके प्रवाहन ( कुन्थन ) तथा अतिसार हेतुकरके गुदा बाहर निकल आवे अर्थात् कांच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं । इस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होता है ॥

सूकरदंष्ट्रके लक्षण ।

**सदाहो रक्तपर्यंतस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ॥**
**कण्डूमान् ज्वरकारी च सः स्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥ ५७ ॥**

भाषा-दाहयुक्त चारों ओर लाल होय, जिसकी त्वचा पकनेवाली होय, तीव्र पीडायुक्त, खुजलीसंयुक्त तथा ज्वर करनेवाली ऐसी सूजन अथवा व्रण होय उसको सूकरदंष्ट्र अर्थात् वराहडाढ कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम् ।

## अथ मुखरोगनिदानम् ।

संख्या ।

**दंतेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पंच च ॥ नव तालुनि जिह्वायां पंच सप्तदशामयाः ॥ कंठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिचतुःपरे ॥ १ ॥**

भाषा-दंतरोग ८, होठोंके रोग ८, दंतमूलके रोग १९, तालुएके रोग ९, जिह्वाके ५, कंठके रोग १७ और सर्वसर ३ ऐसे सब मिलकर पैंसठ मुखरोग हैं। ये श्लोक माधवके नहीं हैं भोजसंहिताके हैं॥

तिनमें ८ होठोंके रोगोंकी संप्राप्ति।

**अनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात्॥**
**मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः॥ २॥**

भाषा-जलसंचारी प्राणियोंके मांस, दूध, दही, उरद आदि पदार्थके सेवन करनेसे कुपित भये कफादिक दोष मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं॥

वातिक ओष्ठरोगके लक्षण।

**कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ॥**
**दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः॥ ३॥**

भाषा-वादीके कोपसे होंठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होते हैं। उनमें तीव्र पीडा होय, वह दो टुकडोंके समान हो जाय तथा होंठकी त्वचा किंचित् फट जाय॥

पैत्तिकके लक्षण।

**चीयते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समंततः॥**
**सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः॥ ४॥**

भाषा-पित्तसे होंठमें चारों ओर फुंसियोंसे प्राप्त हो, उनमें पीडा होय तथा पक जावें और पीलेसे दीखें। इसमें जो दाह और पाक कहे हैं वे विशेषताके सूचक हैं॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

**सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ॥**
**भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू॥ ५॥**

भाषा-कफसे होंठ त्वचाके समान वर्णवाले फुंसियोंसे व्याप्त होंय, कुछ दूखें तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी होंय॥

सान्निपातिकके लक्षण।

**सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च॥**
**सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ॥ ६॥**

भाषा-सन्निपातसे होंठ कभी काले, कभी पीले उसी प्रकार कभी सफेद तथा अनेक प्रकारकी फुंसियोंसे व्याप्त होते हैं॥

रक्तजके लक्षण ।

खर्जूरीफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ ॥
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७ ॥

भाषा–रुधिरसे होंठोंमें खजूरफलके वर्णकी फुंसी होंय, उनमेंसे रुधिर गिरे तथा वे होंठ रुधिरके समान लाल होंय ॥

मांसजके लक्षण ।

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ॥
जन्तवश्चात्र मूर्च्छंति नरस्योभयतोमुखम् ॥ ८ ॥

भाषा–मांस दुष्ट होनेसे होंठ जड ( भारी ) मोटे होते हैं, मांसपिंडके समान ऊंचे होंय, इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होंठोंमें अथवा होंठोंके प्रांतभागमें कीडे पड जावें ॥

मेदोजके लक्षण ।

सर्पिर्मंडप्रतीकाशौ मेदसा कंडुरौ गुरू ॥
स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ॥ ९ ॥

भाषा–मेदसे होंठ घृतके झागसमान, खुजलीसंयुक्त तथा भारी होंय तथा उनमेंसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय, इसमें भया व्रण भरे नहीं है तथा उसमें मृदुता नहीं रहै ॥

अभिघातजके लक्षण ।

ओष्ठौ पर्यवदीर्येते पीड्येते चाभिघाततः ॥
ग्रथितौ च तदा स्यातां कंडूक्लेदसमन्वितौ ॥ १० ॥

भाषा–अभिघातसे ( चोट लगनेसे ) होंठ सर्वत्र चिर जाय, पीडा होय, उसमें गांठ हो जाय तथा उनमें खुजली चलते समय पीव वहे । कोई कहते हैं कि अभिघातके ओष्ठरोगमें केवल ऊपरका होंठ फटता है इस रोगमेंभी कफ पित्त सहायक जानने । सो भोजने कहामी है ॥

## दंतमूलगत १५ रोग ।

शीतादके लक्षण ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गन्धीनि सकृष्णा-

---

१ "क्षतावभिहतौ चाभि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूषितौ ॥" इति । वातजः केवलः स्वकारणकुपितः अत्र तु वायुः अभिघाताल्लभ्यते ॥

नि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ ११ ॥ दंतमांसानि जीर्यन्ते पचंति
च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥१२

भाषा-जिसके मसूढोंमेंसे अकस्मात् रुधिर वहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त, काला पीवसहित तथा नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे वह दूसरे मसूढेको पकावे यह कफरुधिरसे प्रगट व्याधिको शीताद नाम कहते हैं ॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण ।

दंतयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ॥
दंतपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ १३ ॥

भाषा-जिसके दो अथवा तीन दांतकी जडमें महान् सूजन होय उसको दंतपुप्पुट नाम कहते हैं । यह व्याधि कफरक्तसे होती है परन्तु आगे जो सौषिर रोग कहेंगे उससे यह भिन्न है ॥

दंतवेष्टके लक्षण ।

स्रवंति पूयं रुधिरं चला दंता भवन्ति च ॥
दंतवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १४ ॥

भाषा-रुधिर दुष्ट होनेसे दांतोंमेंसे रुधिर तथा राध वहे तथा दांत हलने लगे उसको दंतवेष्टरोग कहते हैं ॥

सौषिरके लक्षण ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः ॥
लालास्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः ॥ १५ ॥

भाषा-कफ रुधिरसे दांतोंकी जडमें सूजन होय उसमें पीडा होय और स्राव होय उसको सौषिर रोग कहते हैं । पूर्वोक्त दंतपुप्पुटमें पीडा होय और स्राव नहीं होता है इसीसे यह पृथक् है ॥

महासौषिरके लक्षण ।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥
यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ १६ ॥

भाषा-इस त्रिदोष व्याधिकरके मसूढेके समीपके दांत हलें और तालुएमें छिद्र पड जाय, चकारसे दांत और होंठभी फट जाय उसको महासौषिररोग कहते हैं । यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार डालता है सो भोजने कहाभी है । परन्तु

---

१ " सदाहो दंतमूलेषु शोथः पित्त कफानिलात् । जातः कफ क्षपयति क्षिणे तस्मिन्सशोणितम् ॥ विवृद्धमनिश दंतांस्ताल्वोष्ठमपि दारयेत् । महासौषिरमित्येतत्सप्तरात्रान्निहंत्यसून् ॥ " इति ।

गदाधर कहता है कि सौषिरमें जो भोजने लक्षण कहे हैं सो होंय तो उसीको महा-सौषिर कहते हैं ॥

परिदरके लक्षण ।

दंतमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीव्यति चाप्यसृक्‌ ॥
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १७ ॥

भाषा—इस रोगकरके दांतोंका मांस बिखर जाय और थूकनेसे रुधिर गिरे इस व्याधिको परिदर कहते हैं । यह रोग पित्तरुधिरकफसे होता है ॥

उपकुशके लक्षण ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलंति च ॥ अवाकृताः प्रस्रवं-ति शोणितं मन्दवेदनाः ॥ १८ ॥ आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखे पू-तिश्च जायते ॥ यस्मिन्नुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः १९ ॥

भाषा—जिसके मसूढोंमें दाह होकर पाक और दांत हलने लगे, मसूढोंके घिसनेसे रुधिर मंद पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूल आवें और मुखमें बास आवे इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान्‌ ॥
भवंति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ २० ॥

भाषा—मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दांत हलने लगें उसको वैदर्भरोग कहते हैं । यह रोग चोटके लगनेसे होता है ॥

खल्लीवर्धनके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ॥
खल्लीवर्द्धनसंज्ञो वै जाते रुक्‌ च प्रशाम्यति ॥ २१ ॥

भाषा—वादीके योगसे दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे उस समय पीडा होय । जब वह दांत ऊग आवे तब पीडा शांत होय उसको खल्लीवर्धन कहते हैं ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ॥
करालान्विकटान्दंतान्करालो न च सिद्ध्यति ॥ २२ ॥

भाषा—वादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करें, उसको करालरोग कहते हैं । यह रोग साध्य नहीं होता ॥

अधिमांसकके लक्षण।

**हानव्ये पश्चिमे दंते महाञ्छोथो महारुजः ॥**
**लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्यधिमांसकः ॥ २३ ॥**

भाषा–जिसके पीछेकी डाढके नीचे अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन हो और घोर पीडा होय तथा लार बहुत बहे उसको अधिमांसक कहते हैं। यह कफके कोपसे होता है ॥

नाडीव्रणके लक्षण।

**दन्तमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥ २४ ॥**

भाषा–नाडीव्रणनिदानमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगंतुज ऐसे पाच प्रकारके जो नाडीव्रण कहे हैं वे दंतमूल ( मसूढोंमें ) होते हैं। पहिले ११ और ५ नाडीव्रण ऐसे मिलकर १६ दंतमूल ( मसूढे ) के रोग होते हैं। परन्तु करालरोग सुश्रुतके मतसे अधिक है तथापि संग्रहकारने अपने ग्रंथमें लिखा है, इसीसे हमनेभी यहां लिख दिया है। ये पांच नाडीव्रण शालाक्यसिद्धान्तके मतसे संख्यापूरणार्थ माधवाचार्यने लिखे हैं ॥

## दंतरोग ८ लिखते हैं।

दालनके लक्षण।

**दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ॥**
**दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ २५ ॥**

भाषा–जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय उसको दालनरोग कहते हैं। यह रोग वादीसे होता है ॥

कृमिदंतके लक्षण।

**कृष्णश्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः ॥**
**अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ २६ ॥**

भाषा–वादीके योगसे दातोमे काले छिद्र पड जांय तथा हलने लगें, उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त, पीडा होनेवाला और कारण विना दूखनेवाला ऐसा है उसको कृमिदन्तरोग कहते हैं। यहा दांतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्ट रुधिरसे कृमि ( कीडा ) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं ॥

भंजनकके लक्षण।

**वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभंगश्च जायते ॥**

**कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकसंज्ञितः ॥ २७ ॥**

भाषा-जिस व्याधिकरके मुख टेढा होकर दांत फूटने लगें, यह व्याधि कफवात करके होता है । दांत भंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा हो जाता है ॥

दंतहर्षके लक्षण ।

**शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ॥**
**पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २८ ॥**

भाषा-दांत शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो नहीं सह सके उसको दंतहर्ष कहते हैं । यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है । इस रोगको वातज होनेपरभी उष्ण ( गरम ) को नहीं सह सके । यह व्याधिका स्वभाव है इस जगह दूसरा पाठान्तर है वह नीचे लिखते हैं ॥

दंतशर्कराके लक्षण ।

**मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः ॥**
**शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २९ ॥**

भाषा-दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय उस रोगको दंतशर्करा ऐसा कहते हैं । इस श्लोकमें " सा दंतानां गुणहरा " ऐसाभी पाठ है । इसका यह अर्थ हुआ कि दांतोंके गुण शुक्ल और दृढादि उनको दूर करे ॥

कपालिकाके लक्षण ।

**कपालेष्विव दीर्णेषु दन्तानां सैव शर्करा ॥**
**कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दंतविनाशिनी ॥ ३० ॥**

भाषा-कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होते ऐसे दांत मलकरके सहित हो जांय तो उसी पूर्वोक्त दंतशर्कराको कपालिका ऐसा कहते हैं । यह रोग सदा नाशकर्त्ता है ॥

श्यावदंतके लक्षण ।

**योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषतः ॥**
**श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥ ३१ ॥**

भाषा-जो दांत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले हो जांय उनको श्यावदंत कहते हैं ॥

---

१ " शीतमुष्णं च दशनाः सहंते स्पर्शन न च । यस्य दत च हर्षे तु विद्यात् पित्तसमीरणात् ॥ " इति ।

हनुमोक्षके लक्षण।

**वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ॥**
**हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३२ ॥**

भाषा–वादीके योगसे तिस अभिघातादिक करके हनुसंधि ( ठोडी ) में चोट लगनेसे दांत चलायमान हो जांय उसको हनुमोक्ष कहते हैं। इसके लक्षण अर्दितरोग जो वातव्याधिमें कह आये हैं उस प्रकारके होंय। सुश्रुतने इस रोगको दांतोंके समीप होनेसे दंतरोग कहा है परंतु संग्रहकारने लिखा मुख्य दंतरोग न होनेसे नहीं लिखा। इसको संग्रहकारने भोजके कहे अनुसार वातव्याधिमें लिखा है इसीसे हनुमोक्षरोगका पाठ किसी पुस्तकमें लिखा है और किसीमें नहीं लिखा है ॥

## जिह्वागत ५ रोग।

वातजके लक्षण।

**जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥**

भाषा–वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त ( रसका ज्ञान जाता रहे ) और पर्वतीवृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदरी हो ॥

पित्तजके लक्षण।

**पित्तेन पीता परिदह्यते च दीर्घैः सरक्तैरपि कंटकैश्च ॥ ३३ ॥**

भाषा–पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह होय, उसमे लंबे लंबे तामेके समान कांटे होंय इस रोगको लौकिकमें जाली कहते हैं अथवा जोडी कहते हैं ॥

कफजके लक्षण।

**कफेन गुर्वी बहला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकंटकाभैः ॥३४॥**

भाषा–कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमरके कांटेके समान मांसके अंकुर होंय ॥

अलासके लक्षण।

**जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलासस़ंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥**
**जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम्॥३५॥**

भाषा–जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अलास कहते हैं। उसके बढनेसे स्तंभ होय तथा जीभके मूलमें सूजन होंय। यह रोग असाध्य है ॥

उपजिह्वाके लक्षण।

**जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः स जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूर्तिः ॥**
**लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ३६**

भाषा-कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान ( जैसा जीभका आगेका भाग होता है ) ऐसी सूजन जीभको नीचे दवायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत वहै और उसमें खुजली चले तथा दाह होय, रक्तपित्तका कारण पित्त है उससे दाह होता है। इस रोगको वैद्य उपजिह्वा ऐसा कहते हैं ॥

## तालुगत ९ रोग ।

### कंठशुंडीके लक्षण ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः ॥
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कंठशुंडीति नाम्ना ॥ ३७ ॥

भाषा-कफरुधिरसे तालुके मूलमें फूली बस्तिके समान भारी सूजन होय इसके प्रभावसे प्यास, खांसी, श्वास ये होते हैं । इस रोगको वैद्य कंठशुंडी कहते हैं ॥

### तुंडकेरीके लक्षण ।

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥

भाषा-कफरक्तसे तालुएमें बनकपासके फल समान सूजन होय और उसमें पीडा, सुईके छेदनेकासा दुःख और दाह होकर पके उसको तुंडिकेरी कहते हैं ॥

### अध्रुवके लक्षण ।

शोथः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुवो रुग्ज्वरश्च ३८

भाषा-रुधिरसे तालुएमें लाल, स्तब्ध ( कठर ) ऐसी सूजन होय उसमें पीडा और ज्वर होय उसको अध्रुव ऐसा कहते हैं ॥

### कच्छपके लक्षण ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा ॥

भाषा-कफसे तालुएमें कछुएकी पीठके समान ऊंची सूजन होय, उसमें पीडा थोडी होय, वह शीघ्र बढे नही उसको कच्छपरोग कहते हैं ॥

### अर्बुदके लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिंगम् ॥ ३९ ॥

भाषा-रुधिरसे तालुएमे कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय, इसके लक्षण अर्बुदनिदानमें जो रक्तार्बुदके कहे हैं उसके प्रमाण जानने ॥

### मांससंघातके लक्षण ।

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांससंघातमाहुः ॥

भाषा-कफकरके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं उसको मांससंघात कहते हैं ॥

तालुपुप्पुटके लक्षण।

**नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ४०॥**

भाषा–मेदयुक्त कफकरके तालुएमें पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय उसको तालुपुप्पुट ऐसा कहते है॥

तालुशोषके लक्षण।

**शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च॥**

भाषा–वादीसे तालु अत्यंत सूखकर फट जाय तथा भयंकर श्वास होय उसको तालुशोष कहते हैं॥

तालुपाकके लक्षण।

**पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदंति॥ ४१॥**

भाषा–पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यत भयंकर पाक (पकी फुंसी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहत हैं॥

## कंठगत १७ रोग।

तिनमें पांच रोहिणीकी सामान्य संप्राप्ति।

**गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्॥**
**गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्व्याधिरयं हि रोहिणी॥ ४२॥**

भाषा–गलेमें वायु, पित्त और कफ ये दुष्ट होकर मांसको तथा रुधिरको दूषित कर गलेमें अंकुर (कांटे) उत्पन्न करे हैं, उनसे गला रुक जाय यह रोहिणीनाम व्याधि प्राणनाशक है। सब रोहिणी सन्निपातसे प्रगट होती हैं। उत्कर्षके वास्ते वात आदिका व्यपदेश है। इन सबका असाध्यत्व योजने पृथक् २ लिखा है॥

वातजाके लक्षण।

**जिह्वासमन्तादृशवेदनास्तु मांसांकुराः कंठनिरोधनाय॥**
**सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता॥ ४३॥**

भाषा–जीभके चारों ओर अत्यंत वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय उनमे कंठका अवरोध होय तथा कंप, विनाम, स्तभादि वातके उपद्रव होय॥

पित्तजाके लक्षण।

**क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता॥**

भाषा–पित्तसे प्रगट भई रोहिणी शीघ्र बढे तथा शीघ्रही पके उसके योगसे तीव्र ज्वर होता है॥

---

१ "सद्यस्त्रिदोषजा हंति त्र्यहात् श्लेष्मसमुद्भवा। पचाहात्पित्तसभूता सप्ताहात्पवनोत्थिता॥" इति।

कफजाके लक्षण ।

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका स्थिरांकुरा या कफसंभवा सा ४४॥

भाषा–जो रोहिणी कंठके मार्गको रोध करे ( रोक दे ) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन हों वह कफजन्य जाननी ॥

त्रिदोषजाके लक्षण ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रितयोत्थिता सा ॥

भाषा–त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी जिसमें राध बहुत होय तिसमें औषधीका प्रभाव नहीं चले और तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंका हरण करे ॥

रक्तजाके लक्षण ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिंगा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मका तु ॥४५

भाषा–रुधिरकी रोहिणी पित्तरोहिणीके समान जाननी तथा फोडोंसे व्याप्त होय यह साध्य है ॥

कंठशालूकके लक्षण ।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रंथिर्गले कंटकशूकभूतः ॥

खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति ब्रुवन्ति ४६

भाषा–कफसे गलेमें बेरकी गुठलीके समान गांठ होय, उसमें बारीक कांटे होंय तथा खरदरी और कठिन होय, यह रोग शस्त्रोंसे साध्य होय । इस रोगको कंठशालूकरोग कहते हैं ॥

अधिजिह्वके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ॥

ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४७ ॥

भाषा–रक्तमिश्रित कफसे जीभके अग्रभागसदृश जीभमें सूजन होय इसको अधिजिह्व कहते हैं । यह पकनेसे असाध्य जानना ॥

वलयके लक्षण ।

बलास एवायतमुन्नतं च ग्रंथिं करोत्यन्नगतिं निवार्य ॥

तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ४८ ॥

भाषा–कफसे ऊंची और लंबी ऐसी गांठ कंठमें उत्पन्न होय उसके योगसे कंठमें ग्रास ( गस्सा ) उतरे नहीं तथा उसमें कोई उपाय नहीं चले इस रोगको वलय कहते हैं । इसको वैद्य त्याग देय ॥

बलासके लक्षण।

**गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ॥**
**मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ४९ ॥**

भाषा–कुपित भये जो कफ वायु सो गलेमें सूजन उत्पन्न करे उससे श्वास होय तथा कंठ दूखे इस मर्मभेद करनेवाली दुस्तर व्याधिको वैद्य बलास ऐसा कहते हैं ॥

एकवृंदके लक्षण।

**वृत्तोन्नतोऽतः श्वयथुः सदाहः सकंडुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥**
**नाम्नैकवृंदः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५० ॥**

भाषा–गलेमें गोल, ऊंची, किंचित् दाहयुक्त, खुजानेवाली ऐसी सूजन होय वह किंचित् पके और कुछ नरम होय तथा भारी होय इसका नाम एकवृन्द है। यह व्याधि कफरक्तसे होती है ॥

वृन्दके लक्षण।

**समुन्नतं वृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृंदमुदाहरंति ॥**
**तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५१ ॥**

भाषा–गलेमें ऊंची, गोल, तीव्रदाह तथा ज्वरयुक्त जो सूजन होय उसको वृन्द कहते हैं। यहभी रक्तपित्तके कोपसे होती है। इसमें वायुके संबंध होनेसे सुईके चोटनेकीसी पीडा होय। शंका–क्योजी! कंठके १७ रोग कहे हैं और वृन्दको मिलायकर अठारह रोग हुए तो कहिये कि सत्रहकी संख्यामें भेद हुआ। उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परंतु तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकवृन्दकाही भेद वृन्दरोग जानना। ऐसा माननेसे संख्यामें विरोध नहीं पडे। यद्यपि एकवृन्द कफरक्तज है और वृन्दरोग पित्तरक्तज कहा है तथापि जैसे वृन्दका चोटनी हानेसे वातात्मकत्व कहा है, तौभी एकवृन्दकी अवस्था विशेष होनेसे वृन्दको एकवृन्दके साथ ग्रहण करा है। जैसे कामलाके लक्षणसे भिन्नभी है तथापि हलीमक कामलाकाही भेद जानना और भोजनेभी इसको एकवृन्दकाही भेद कहा है। गदाधर कहता है कि छंदानुरोधके निमित्त एकवृन्द शब्दके एक शब्दका लोपकर वृंदशब्दही मूलमें धरा है इससे वृन्द और एकवृन्द ये दोनों एकही हैं ॥

शतघ्नीके लक्षण।

**वर्तिर्घना कंठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥**
**अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषा ज्ञेया शतघ्नी तु शतघ्निरूपा ॥ ५२ ॥**

---

१ "श्लेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्द विभावयेत्। तुल्यस्थानकृतिर्वृन्दो वृन्दजो रक्तपित्तजः ॥" इति।

भाषा–कंठमें लंबी और कठिन सूजन होय, उससे कंठ रुक जाय और उस सूजनके ऊपर मांसके अंकुर बहुत होंय तथा उसमें तोद ( चोटनी ), दाह, खुजली आदि अनेक वेदना होय, यह प्राण हरनेवाली सूजनको शतघ्नी ( लंबे तथा कांटे लंबे जिसमे होंय ऐसे शस्त्र ) के समान होय इसीसे इस रोगको यह संज्ञा दी है ॥

गिलायुके लक्षण ।

**ग्रंथिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः ॥**
**संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ ५३॥**

भाषा–कफरक्तके कोपसे गलेमें आंवलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न होवे, वह गांठ कठिन मंदपीडावाली हो, इसके होनेसे अन्न गलेमें अटकतासा मालूम होवे, यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रके काटनेसे साध्य होवे इसको गिलायु कहते हैं ॥

गलविद्रधिके लक्षण ।

**सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः संति च यत्र सर्वाः ॥**
**स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५४ ॥**

भाषा–जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे तथा जिसमें सर्व प्रकारकी पीडा होय वह विद्रधि निदानमें जो त्रिदोषकी विद्रधि कही है उसके समान गलविद्रधिके लक्षण जानने ॥

गलौघके लक्षण ।

**शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ॥**
**कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥५५॥**

भाषा–रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसे कंठमें अन्न जलका अवरोध ( रुकावट ) होय तथा वायुका संचार होय नहीं इसको वैद्य गलौघ कहते हैं ॥

स्वरघ्नके लक्षण ।

**यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकंठः ॥**
**कफोपदिग्धेष्वनिलायतेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५६॥**

भाषा–वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वार वार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे अथवा मूर्च्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसको भिन्न स्वर होय, कंठ सूखे और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन न हो अर्थात् थोडाभी अन्न खाया हो तथापि कंठसे नीचे न उतरे, इस वातजरोगको स्वरघ्न कहते हैं ॥

मांसतानके लक्षण।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥
स मांसतानेति बिभर्ति संज्ञां प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ५७ ॥

भाषा—जो सूजन गलेमें उत्पन्न होकर क्रमसे फैलकर गलेको रोक ले तव बहुत कष्ट हो इस त्रिदोष विकारको मांसतान कहते हैं। यह विकराल रोग प्राणोंका नाश करनेवाला है ॥

विदारीके लक्षण।

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ॥
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ५८ ॥

भाषा—पित्तसे गलेमें सूजन होवे तिसकरके दाह होय, चवक होय तथा दुर्गंधियुक्त सडा मांस गिरे और रोगी जिस करवट सोवे उसी तर्फ वह रोग होता है। मांसके विदारण करनेसे विदारी कहलाता है ॥

## मुखपाक।

सर्वसर ( मुखपाक मुख आना ) तीन प्रकारका है इसमें वातजके लक्षण।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥

भाषा—वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले हो जांय और वह चिनामिनावे, मुख, जिह्वा, गला, होंठ, मसूडे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्ति होनेसे इस रोगको सर्वसर कहते हैं ॥

पित्तजके लक्षण।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं चापि सपित्तकोपात् ५९॥

भाषा—पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे ॥

कफजके लक्षण।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन ॥ ६० ॥

भाषा—कफसे मुखमें मंद पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय ॥

असाध्यमुखरोगके लक्षण।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः ॥ दंतमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥६१॥ दंतेषु न च सिध्यन्ति श्यावदालनभंजनाः ॥ जिह्वातलेऽलसश्च ताल्व्येष्वर्बुदं तथा ॥ ६२ ॥

**स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासश्च विदारिका ॥ गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ६३॥ असाध्या कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ॥ तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥६४॥**

भाषा–ओष्ठरोग ( होंठके रोगोंमें ) मांसज, रक्तज और त्रिदोषज असाध्य हैं। मसूडोंके रोगोंमें सन्निपात, नाडी और सौषिर और दांतोंके रोगोंमें श्याव, दालन और भंजन, जिह्वाके रोगोंमें अलास और तालुएके रोगोंमें अर्बुद तथा गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, वलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये उन्नीस रोग असाध्य हैं। इनपर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको प्रत्याख्यान औषधि न देनी चाहिये। यह तौ मृत्यु निश्चय करे और देवे तौ कदाचित् बचभी जाता है ऐसा विचार कर औषधी देनी चाहिये॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामामाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मुखरोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ कर्णरोगनिदानम् ।

### कर्णशूलके लक्षण ।

**समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समंततः शूलमतीव कर्णयोः ॥ करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥१॥**

भाषा–कानमें वायु दोषोंकरके ( कफ, पित्त, रुधिरसे ) आवृत होकर कानोंमें उलटी फिरे तब अत्यंत शूल ( दरद ) होय इस रोगको कर्णशूल कहते हैं। यह रोग कष्टसाध्य है। कर्णशूलके उपद्रव विदेहने इस प्रकार लिखे हैं। " मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः क्लमोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवंत्येते भविष्यतः ॥ " इसका अर्थ सुगम है॥

### कर्णनादके लक्षण ।

**कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ॥ भेरीमृदंगशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥**

भाषा–वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके दब्द सुनाई देवे इस रोगको कर्णनाद कहते हैं॥

बाधिर्य ( बहरा ) के लक्षण।

**यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ॥**
**शुद्धश्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥**

भाषा-जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहानेवाली नाडियोंमें स्थित होय तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देय अर्थात् बहरा हो जाता है ॥

कर्णक्ष्वेडके लक्षण।

**वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् ॥**
**करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥**

भाषा-पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायु कानोंमें वेणु ( वंसी ) का शब्द सुनाई देता है उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं ॥

कर्णस्रावके लक्षण।

**शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतां जले प्रपाकादथ वापि विद्रधेः ॥**
**स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः॥५॥**

भाषा-शिरमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानोंसे राध बहे उसको कर्णस्राव कहते हैं।

कर्णकंडूके लक्षण।

**मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकंडूं करोति च ॥**

भाषा-कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है ॥

कर्णगूथके लक्षण।

**पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥ ६ ॥**

भाषा-पित्तकी गरमीसे कफ सूखकर कानमें मैल जमे उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥

कर्णप्रतिनाहके लक्षण।

**स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ॥**
**तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥७॥**

भाषा-वही कानका मैल पतला होनेसे अथवा स्नेह स्वेदादिकोंकरके पतला होकर मुख और नाकमें प्राप्त होय तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं। इस रोगसे अर्द्धशिर ( आधासीसी ) का विकार होता है ॥

कृमिकर्णके लक्षण ।

**यदा तु मूर्च्छां त्वथ वापि जंतवः सृजन्त्यपत्यान्यथ वापि मक्षिकाः ॥ तदंजनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ८ ॥**

भाषा-जिस समय कानमें कीडे पड जांय अथवा मक्खी अंडा धरें तब कृमि लक्षणकरके इस रोगको कृमिकर्ण कहते हैं ॥

कानमें पतंगादि कीडा धसनेके लक्षण ।

**पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ॥ अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ ९ ॥ कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते ॥ कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥**

भाषा-पतंग, कनखजूरा, गिजाई आदि कानमें धसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय, कानमें पीडा होय, कानमें नोचनेकीसी पीडा होय, वह कीडा कानके भीतर फडके, फिरे, उस समय घोर पीडा होय और जब वह बन्द हो तब पीडा बन्द होवे ॥

द्विविध कर्णविद्रधिके लक्षण ।

**क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ॥ सरक्तपीतारुणरक्तमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥**

भाषा-कानमें खुजानेसे व्रण हो जाय अथवा चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होती है । जब वह फूटे तब उसमेंसे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होवे, धुआंसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे, चूसनेकीसी पीडा होवे ॥

कर्णपाकके लक्षण ।

**कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥ कर्णे विद्रधिपाकाद्वा जायते चांबुपूरणात् ॥ १२ ॥**

भाषा-पित्तसे अथवा कान पकनेसे अथवा कानमें पानी जानेसे कर्णपाकरोग होवे उसकरके कान सड जावे और गीला रहे ॥

पूतिकर्णके लक्षण ।

**पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥**

भाषा-जिसके कानमेंसे राध निकले वा वास आवे उसको पूतिकर्ण कहते हैं ॥

कर्णशोथ कर्णार्बुद कर्णार्शका हवाल देते हैं ।

**कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥**

भाषा-कानकी सूजन, कानका अर्बुद और कानकी अर्श ( ववासीर ) ये रोग होंय तो इनके लक्षण उसी २ निदानके द्वारा जानने। कुछ थोडेसे यहां लिखभी देते हैं। कर्णशोथ चार प्रकारका है। वात, पित्त, कफ, रक्तजके भेदसे इसीप्रकार कर्णार्श कानकी ववासीरभी चारही प्रकारकी है। चारसे विशेष शोथ अर्शका होना असंभव है इससे चारही हैं ॥

कर्णार्बुदरोग सात प्रकारका है वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदा और शिरा इनके भेदसे। अब कहते हैं कि कर्णरोग सुश्रुतके मतसे २८ प्रकारका है परन्तु चरकके मतसे चारही हैं उनको कहते हैं ॥

वातजके लक्षण ।

**नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ॥**

भाषा-वादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा हो जाय ॥

पित्तजके लक्षण ।

**शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥ १४ ॥**

भाषा-पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा हो जाय तथा किंचित् पीला दुर्गंधियुक्त स्राव होय ॥

कफजके लक्षण ।

**वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ला स्निग्धा स्रुतिः श्लेष्मभवेति रुक् च ॥**

भाषा-कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना स्राव होय ॥

सन्निपातजके लक्षण ।

**सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥**

भाषा-सन्निपातसे सब लक्षण होय, स्राव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्राव होय ॥

## कर्णपालीके रोग ।

कर्णशोथके लक्षण ।

**सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसापि प्रवर्धिते ॥**
**कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥ १६ ॥**

भाषा-सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढावे तौ कानकी पाली ( लौर ) मे सूजन होकर फूल जावे और दुखे ।

परिपोटके लक्षण ।

**कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ १७ ॥**

भाषा–वादीसे काला, लाल और कठिन ऐसा फूल जाय उसको परिपोटक कहते हैं ॥

उत्पातके लक्षण ।

**गुर्वाभरणसंयोगात्ताण्डवाद्धर्षणादपि ॥**
**शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥**
**रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ १८ ॥**

भाषा–कानमें भारी आभरण ( गहना ) पहननेसे अथवा चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालीमें हरी, नीली, अथवा लाल सूजन होय । उसमें दाह होवे, पीडा होवे और रक्त वहे इस रोगको उत्पात कहते हैं ॥

उन्मंथकके लक्षण ।

**कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ १९ ॥**
**स कफं गृह्य कुरुते सशोफं स्तब्धवेदनम् ॥**
**उन्मंथकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २० ॥**

भाषा–कानको बलपूर्वक वढानेसे पाली ( लौर ) में वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मंद पीडायुक्त सूजनको प्रगट करे । उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको उन्मंथक कहते हैं ॥

दुःखवर्द्धनके लक्षण ।

**संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥**
**शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २१ ॥**

भाषा–दुष्टरीति करके कानको छेदनेसे तथा वढानेसे खुजली, दाह, पीडायुक्त ऐसी सूजन होय वह पक जाय उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं ॥

परिलेहीके लक्षण ।

**कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः ॥**
**लिहेच्च शष्कुलीं पालिं परिलेहीत्यसौ स्मृतः ॥ २२ ॥**

भाषा-कफ रक्त कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली ऐसी जो सूजन कानकी पालीमें होय वह कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया कर्णरोगनिदान समाप्तम्।

# अथ नासारोगनिदानम्।

### पीनसके लक्षण।

**आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चैव नासा ॥**
**न वेत्ति यो गंधरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ॥**
**तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ १ ॥**

भाषा-जिसकी नाक रुक जाय, वात शोषित कफसे नाक भीतरसे सूखीसी रहे, गीली रहे, धुआंसा निकले, जिसकी नाकमें सुगंधि दुर्गंध मिष्ट रसादिककी गंधि मालूम न हो, उसके पीनस प्रगट भई जाननी इस वातजन्य विकारको प्रतिश्याय (पीनस) कहते हैं ॥

### पूतिनस्यके लक्षण।

**दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु ॥**
**निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदंति रोगम् ॥ २ ॥**

भाषा-गले और तालुवेमें दुष्ट भया पित्तरक्तादि दोषकरके वायु मिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गोंसे दुर्गंधि निकले इस रोगको पूतिनस्य कहते हैं ॥

### नासापाकके लक्षण।

**घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ॥**
**तन्नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वापि यत्र ॥ ३ ॥**

भाषा-जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुंसी प्रगट करे और नाक भीतरसे पक जाय उसको नासिकापाक कहते हैं। इसमें नाकसे राध बहे ॥

### पूयरक्तके लक्षण।

**दोषैर्विदग्धैरथ वापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ॥**
**नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥**

भाषा–दोष दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राध वहे और रुधिर वहे इस रोगको पूयरक्त कहते हैं ॥

क्षवथु ( छींक ) के लक्षण।

**घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ॥**
**कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दं तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ ५ ॥**

भाषा–नासिकाश्रित मर्म ( शृंगाटक मर्म ) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले उसको क्षवथु ( छींक ) कहते हैं ॥

आगंतुज क्षवथुके लक्षण।

**तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ॥**
**सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यक्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥**

भाषा–तीखे राइ आदि पदार्थ खानेसे अथवा कडुवा खानेसे, मिरच आदि तीखे वस्तुओंके सूंघनेसे, सूर्यके देखनेसे अथवा कपडेकी वत्ती वनाकर नाकमें तरुणास्थि मर्म ( फणामर्म ) में लगानेसे, आगंतुज क्षवथु ( छींक ) आती है। आगंतुज और दोषज छींक एकही है ॥

भ्रंशथुके लक्षण।

**प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सांद्रो विदग्धो लवणः कफश्च ॥**
**प्राक्संचितो मूर्द्धनि सूर्यतप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥**

भाषा–सूर्यकी गरमीकरके मस्तक तप्त होनेसे पूर्वसंचित भया विदग्ध, गाढा, खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं ॥

दीप्तके लक्षण।

**घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिश्चरेद्धूम इवेह वायुः ॥**
**नासा प्रदीप्तेव च यस्य जंतोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥**

भाषा–नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुआंके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त होवे इस रोगको दीप्त कहते हैं ॥

प्रतिनाहके लक्षण।

**उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥**

भाषा–वायुसहित कफ श्वासके मार्गको वंद करे तव नाकका स्वर अच्छी रीतिसे चले नहीं इसको प्रतिनाह कहते हैं ॥

नासास्रावके लक्षण।

**घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥**

भाषा–नाकसे गाढा, पीला अथवा सपेद पतला दोष (कफ) स्रवे उसको स्राव कहते हैं ॥

नासापरिशोथके लक्षण ।

**घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च ॥**
**कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जंतुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १० ॥**

भाषा–वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूख जाय तब मनुष्य वडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं ॥

चिकित्साभेदार्थ पीनसके आमपक्कके लक्षण ।

**शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः ॥ क्षामः ष्ठीवेत्तथाऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥ आमलिंगान्वितः श्लेष्मा घनश्चाप्सु निमज्जति ॥ स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥**

भाषा–शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, नासिकासे गरम गरम जलका झरना, आवाज कुछ मन्दी हो और शरीरका कृश होना, वारंवार थूकना ये आम (कच्चे) पीनसके लक्षण हैं और जिसमें इसी पूर्वोक्त आम पीनसकेभी लक्षण हों और कफ गाढा हो गया हो और जलमें गेरनेसे डूब जाय और मुखसे साफ आवाज निकले और मुखका रंग (रूहानी) अच्छा होय तो जानना कि यह पीनस पक गया है ॥

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति ।

**संधारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोभितापैः ॥**
**प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतो मैथुनबाष्पशोषैः ॥ १३ ॥**
**संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च ॥ १४ ॥**

भाषा–वेगोंके रोकनेसे, अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे, रज (धूल) के नासिकाके भीतर जानेसे, अत्यंत भाषण (अत्यंत पढने) से और अत्यंत गुस्सा करनेसे तथा ऋतुविपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होनेसे, शिरोभिताप अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें शिरसे अत्यन्त धूप सेवन करनेसे, रात्रिमें जागनेसे, दिनमें विशेष सोनेसे और शीत पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे, इसी तरह कोहरके खानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, पसीना अथवा आंसुओंके रुकनेसे, शिरमें दोष इकट्ठे हों फिर वायु वृद्धिगत होकर प्रतिश्याय रोग पीनस उत्पन्न करे ये कारण सद्योजनक अर्थात् तत्काल पीनस करनेवाले हैं ॥

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान ।

**चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ॥**

**प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति ॥१५॥**

भाषा–मस्तकमें पृथक् वातादि दोष तथा सर्व दोष उसी प्रकार रुधिर संचय होकर अनेक प्रकारके कारणोंसे ( बलवान्से वैर करना दिवास्वापादि ) कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करें ॥

पूर्वरूपके लक्षण ।

**क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ॥**
**उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसरा स्मृताः १६॥**

भाषा–छींकका आना, मस्तकका भारी होना, अंगोंका जकड जाना तथा अंगोंका टूटना, रोमांच अवमंथसे आदि ले और धूमादिक तत्काल होनेवाले उपद्रव होंय, जब पीनस होनहार होती है तब ये लक्षण होते हैं ॥

वातिक प्रतिश्यायके लक्षण ।

**आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ॥**
**गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोरपि ॥**
**भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मजे ॥ १७ ॥**

भाषा–जिसकी नाकका मार्ग रुक जाय, आच्छादित हो जाय और उसमेंसे पतला पानी निकले, गला तालु होंठ ये सूख जांय और कनपटी दूखे, गला बैठ जाय ये वातके पीनसके लक्षण हैं ॥

पैत्तिक प्रतिश्यायके लक्षण ।

**उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके ॥ १८ ॥**
**कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥**
**सधूममग्निं सहसा वमतीव च नासया ॥ १९ ॥**

भाषा–जिसकी नाकसे दाह[1] और पीला स्राव होवे, वह मनुष्य कृश और पीला हो जाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धुआं निकले यह पित्तकी पीनसके लक्षण हैं ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

**घ्राणात्कफः कफकृते श्वेतः पीतः स्रवेद्बहुः ॥**
**शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥**
**कंठताल्वोष्ठशिरसां कंडूभिरभिपीडितः ॥ २० ॥**

---

१ " पूर्वरूपाणि दृश्यते प्रतिश्याये भविष्यति । घ्राणधूमायन मंथक्षवथुस्तालुदारुणम् । कण्ठे ध्वंसो मुखस्रावः शिरस्यापूरण तथा ॥ " इति ॥

भाषा–नाकसे सफेद पीला वहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद हो जाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय, मस्तक भारी रहे और गला, तालु, होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले ये कफकी पीनसके लक्षण हैं॥

सन्निपातके लक्षण।

**भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्त्तते॥**
**स पक्को वाप्यपक्को वा स तु सर्वभवः स्मृतः॥ २१॥**

भाषा–जिसकी नाकमें पूर्वोक्त कहे सो सर्व लक्षण मिलें तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट हो जाय, उसको सन्निपातकी पीनस कहते हैं। यह विदेह[1] आचार्यके मतसे असाध्य है॥

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण।

**प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति॥ पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रीयते तथा॥ २२॥ निश्वासो वाति दुर्गंधो नरो गंधं न वेत्ति च॥ एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम्॥ २३॥**

भाषा–वारंवार जिसकी नाक झडा करे और सूख जाय और नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय, श्वास लेनेमे वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान जाता रहे ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं। यह कष्टसे साध्य होता है। यह पीनस पांच पीनसोंके अन्तर्गत जाननी इनकाही भेद है यह छठी नहीं है॥

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण।

**रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते॥ ताम्राक्षश्च भवेज्जंतुरुरोघातप्रपीडितः॥ २४॥ दुर्गंधाच्छ्वासवदनो गंधानपि न वेत्ति सः॥२५॥**

भाषा–रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय, उरःक्षतके[2] लक्षण ग्रन्थांतरमें लिखे हैं सो जानने। किसी पुस्तकमें "पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिंगैश्चापि समन्वितः।" ऐसा पाठ है इसका अर्थ यह है कि जिसमें पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हैं॥

असाध्य लक्षण।

**सर्वे एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः॥ दुष्टतां यान्ति काले-**

---

१ "नृणां दुष्टप्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिध्यति।" इति विदेहः। २ "उरःक्षतं गुरुः स्तब्धः पूतिकर्णकफो रसः। सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघातः सपीनसः॥" अत्र पित्तप्रतिश्यायलिंगान्यपि बोद्धव्यानि तुल्यात् पित्तरक्तयोः।

न तदाऽसाध्यां भवंति च ॥ २६ ॥ मूर्च्छंति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ॥ कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् २७

भाषा–सर्व पीनस औषधी न करनेसे असाध्य होते हैं। इसमें नाकमें कीडा पड जांय, वे कृमि सफेद चिकने और बारीक होते हैं। कृमिज शिरोरोगके सदृश लक्षण होंय, कृमिज शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आये हैं ॥

प्रतिश्याय और विकारोंकोभी करता है उनको कहते हैं।

बाधिर्यमांध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ॥
शोथाग्निसादकासादीन् वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ २८ ॥

भाषा–पीनस बढनेसे बहरा हो जाय, मन्द दीखे, वास आवे नहीं, भयंकर नेत्ररोग होय; सूजन, मंदाग्नि, खांसी इत्यादि विकार होते हैं । सुश्रुतमें नासिकाके ३१ रोग कहे हैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १९ रोग कहे हैं । बाकी १६ रोगोंको संख्यापूर्तिके वास्ते लिखते हैं ॥

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ॥
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ २९ ॥

भाषा–सात प्रकारके अर्बुद रोग, चार प्रकारके शोथ ( सूजन ), चार प्रकारके अर्श और चार प्रकारके रक्तपित्त ये पूर्वोक्त कहे रोग सोलह होते हैं। वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदकरके छः हुए और सातवां शालाक्यसिद्धांतके मतसे सन्निपातका ऐसे सात प्रकारके अर्बुदरोग हुए । वात, पित्त, कफ, सन्निपातके भेदसे चार प्रकारकी सूजन भई तथा वात, पित्त, कफ सन्निपातके भेदसे चारही प्रकारकी अर्श ( बवासीर ) और चारही प्रकारका रक्त, रक्तपित्तकी समानतासे एकही जानना । पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यंत १९ भये और अर्बुदादि १६ हुए ऐसे सब मिलकर नासिकारोग ३१ हुए ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां नासिकारोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ नेत्ररोगनिदानम् ।

कारण ।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्दैर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥

द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ॥
प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ॥
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयंति दोषाः ॥ ३ ॥

भाषा-गरमीसे तप्त होकर जलमें प्रवेश ( स्नानादि करना ऐसा करनेसे शीतलतामें शरीर व्याप्त होकर शरीरकी गरमी ऊपर चढकर नेत्रके तेजको पराभव करनेसे नेत्ररोग उत्पन्न होता है ) दूरकी वस्तुको देखनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे, नेत्रमें पसीना जानेसे, वाफ लगनेसे, नेत्रोंमें धूल जानेसे, धुआ जानेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, वहुत वमन ( रद्द ) होनेसे, पतले अन्नपानके अत्यंत सेवन करनेसे, विष्ठा मूत्र और अधोवायु इनके वेगको धीरे धीरे निग्रह कहिये वेग धारण करनेसे, निरंतर रुदन करनेसे, शोकसे, मस्तकमें चोट लगनेसे, अति मद्यपान करनेसे, उसी प्रकार ऋतुके विपर्यय अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें शीतकाल होनेसे, क्लेश कहिये कामादिक दुःख उससे अभिघात कहिये दुःख होनेसे, अति मैथुन करनेसे, अश्रुपातका वेग धारण करने और सूक्ष्म पदार्थका अवलोकन करनेसे वातादि दोष नेत्रोंमें रोग पैदा करते हैं । सुश्रुतमें नेत्ररोगकी संप्राप्ति इस प्रकार लिखी है ॥

यथा ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः ॥
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ४ ॥

भाषा-कुपित हुए वातादि दोष नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्त हो नेत्रोंका भाग व्याप्त करनेसे उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होता है । ये वात, पित्त, कफ, रुधिर, सन्निपात और आगंतुक इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग हैं ॥

नेत्ररोगमें प्रायः अभिष्यंद ( नेत्र आना ) होता है
इसीसे प्रथम उसको कहते हैं ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ॥
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ५ ॥

भाषा-वात, पित्त, कफ और रुधिर इनसे चार प्रकारका अभिष्यंद रोग होता है, इसकी पीडा नष्ट नहीं होय, तथा यह अभिष्यंदरोग सर्व नेत्ररोगोंका ( अभिमंथादिक ) का उत्पत्तिस्थान जानना सो सुश्रुतमें लिखा है । इस रोगको भाषामें नेत्र दूखना कहते हैं अथवा आंख आई कहते हैं ॥

वाताभिष्यंदके लक्षण ।

**निस्तोदनस्तंभनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ॥**
**विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥**

भाषा-वादीसे नेत्र दूखने आये होंय, उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो, नेत्रोंका स्तम्भन ( ठहर जाना ), रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटकें तथा रूक्ष होंय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल हो ॥

पित्ताभिष्यंदके लक्षण ।

**दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ॥**
**उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥**

भाषा-पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जांय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले अथवा नेत्रोंमें धुआं जानेकीसी पीडा हो तथा नेत्रोंसे अश्रु ( आंसू ) बहुत पडें और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पडे ॥

कफजाभिष्यंदके लक्षण ।

**उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च ॥**
**स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥**

भाषा-कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो अर्थात् नेत्रोंमेंसे कसा मालूम हो तथा नेत्र भारी होंय, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हों और शीतल हों उनमेंसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय ॥

रक्तजाभिष्यंदके लक्षण ।

**ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समंतादतिलोहिताश्च ॥**
**पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवंति ॥ ९ ॥**

भाषा-रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंमें आसपास रेखासी लाल लाल दीखें और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमें होवें ॥

अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति होती है सो कहते हैं ।

**वृद्धैरेतैरभिष्यंदैर्नराणामक्रियावताम् ॥**
**तावंतस्त्वधिमंथाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ १० ॥**

भाषा–इस अभिष्यंदमें औषधोपचार न करनेसे यह बढकर उतनेही ( चार ) अभिष्यंदरोग नेत्रोंमें प्रगट होंय इससे नेत्रोंमें तीव्र पीडा होय ये अभिमंथके सामान्य लक्षण हैं । वेदनाशब्द इस जगह व्यथामात्रका वाचक है । इससे यह प्रगट हुआ कि वातके अभिष्यंदसे वातिक अभिमंथ प्रगट होय । उसमें तीव्र वातज सर्व निस्तोदादि पीडायुक्त होय । इसी प्रकार पित्तकेसे, कफकेसे, रुधिरकेसे पित्तकफरुधिरके अभिमंथ स्वलक्षणकरके जानने ॥

दूसरे सामान्य लक्षण ।

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ॥
शिरसोऽर्द्धं च तं विद्यादधिमंथं स्वलक्षणैः ॥ ११ ॥

भाषा–आधे शिरमें उपाडनेकीसी पीडा होय अथवा तोडनेकी तथा मथनेकीसी पीडा हो, व्याधिके प्रभावसे आधे शिरमें पीडा हो इसे अधिमंथ कहते हैं । इनके लक्षण वातज अभिष्यंदके समान जानने ॥

दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण ।

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमंथो रक्तजः पंचरात्रात् ॥
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव १२

भाषा–कफका अधिमंथ सात दिनमे दृष्टिका नाश करे, रक्तज अधिमंथ पाच दिनमे, वातिक अधिमंथ छः दिनमें और पैत्तिक अधिमंथ मिथ्योपचारसे तत्काल ( तीन दिनमें ) दृष्टिका नाश करे अर्थात् आख जाती रहे इस जगह जो कालकी अवधि कही है सो व्याधिके स्वभावसे तथा लंघन प्रलेपादि क्रियाकरके तथा अंजननिषेधके निमित्त कहा है ॥

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण ।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम् ॥
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १३ ॥

भाषा–जिस नेत्ररोगमें पीडा विशेष होय, लाली बहुत होकर चमका चले तथा उसमें घर्ष ( रेत गिरनेसे जैसी पीडा होती है वैसी ) की पीडा होय, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, शूलसा चले और स्रावयुक्त होवे, उन नेत्रोंको आमयुक्त जानना । अंजन लगानेस तथा हलका अन्न खानेसे ये लक्षण कहे हैं ॥

निरामके लक्षण ।

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दोषमादिशेत् ॥ १४ ॥

भाषा–नेत्रोंमें पीडा कम होवे, खुजली चले, सूजन मंद होय. आंसुओंका गिरना बन्द होय, नेत्रोंका वर्ण स्वच्छ होय ये दोष पक्क होनेके लक्षण हैं ॥

शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण ।

**कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्कोदुंबरसन्निभः ॥**
**संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोफजः ॥**
**शोथहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १५ ॥**

भाषा–नेत्रोंमें सूजन आकर पक जाय, उनमें आसूं वहे और [१]के गूलरके समान लाल होंय ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं और शोथ (सूजन) के विना जो नेत्रपाक होय उसमें शोथको छोडकर सब लक्षण होंय यह व्याधि त्रिदोषजन्य जाननी ॥

हताधिमंथके लक्षण ।

**उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमंथो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ॥**
**रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमंथः खलु नेत्ररोगः ॥ १६ ॥**

भाषा–वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद ( सुईके चुभानेकीसी पीडा ) दाहादि भारी पीडा होय, यह हतादिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है इसी रोगको विदेह दृष्ट्युत्क्षेपण[२] कहता है अथवा दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोषभी जानना यही सुश्रुतकाभी मत है । इस रोगसे नेत्र सूखे कमलके समान हो जाते हैं ॥

वातपर्ययके लक्षण ।

**वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ॥**
**रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १७ ॥**

भाषा–वायु क्रमसे कभी कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातपर्यय कहते हैं ॥

शुष्काभिपाकके लक्षण ।

**यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनं च ॥**
**सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥१८॥**

---

१ " अतर्गतः शिराणां तु यदा तिष्ठति मारुतः । स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति ॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मथन्निव मारुतः । नयनं निर्वमत्याशु शूलतोदादिमंथनैः ॥ " इति । २ " अंतःशिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन् । हताधिमंथं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ विदेहः–अथवा शोषयेदक्ष्णोः क्षीणात्तेजोबलादयम् । तत्पद्मभिव संशुष्कं स वदेदिति कोप्चनम् ॥ " इति ।

भाषा-जो नेत्र खुले नहीं अर्थात संकुचित हो जांय, जिनकी वाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिन नेत्रोंमें दाह विशेष होय यथार्थ दीखे नहीं, जो खोलनेमें बहुत दुःख होय उन नेत्रोंको शुष्काभिपाक नामक रोगसे पीडित जानना। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है सो करालाचार्यने लिखा है॥

अन्यतोवातके लक्षण।

**यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा॥**
**कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरंति॥ १९॥**

भाषा-घाटी (घार), कान, मस्तक, ठोडी, मन्या नाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे इस रोगको अन्यतोवातरोग कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवातरोग कहते हैं सो विदेहका मतभी है॥

अम्लाध्युषितके लक्षण।

**श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते॥**
**सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः॥ २०॥**

भाषा-मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आस पास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पक जांय और उनमें पीले रंगकी फुंसी होंय, उनमें दाह होकर सूजन होय तथा नेत्रोंसे पानी झरे। यह रोग अम्ल (खटाई) आदि खानेसे होता है। सुश्रुतके मतसे यह रोग पित्तसे होता है। इसको अम्लाध्युषित कहते हैं॥

शिरोत्पातके लक्षण।

**अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवंति ताम्राः॥**
**मुहुर्विरज्यंति च याः सदा हग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः॥२१॥**

भाषा-जिसके नेत्रकी नसें पीडासहित अथवा पीडारहित, तांबेके समान लाल रंगकी हो जांय और वे बराबर अधिकाधिक (जियादासे जियादा) लाल हो जांय इस रोगको शिरोत्पात (सबलवायु) कहते हैं। यह रोग रक्तजन्य है॥

शिराहर्षके लक्षण।

**मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः॥**
**ताम्राक्षमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च॥ २२॥**

---

१ "कुणितः खरवर्त्मासिक्तरुक्षोन्मीलातिलक्षणम्। सदाहमसृजो वाताच्छुष्कपाकान्वितं वदेत्॥" इति। २ "मन्यानामन्तरे वायुरास्थितः पृष्ठतोऽपि वा। करोति भेदं निस्तोदं शंखं चाक्ष्णोः स्वरस्तथा। तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः॥" इति।

भाषा-अज्ञानकरके शिरोत्पात ( सबल ) वायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिराप्रहर्षरोग होता है। उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखलाई न देवे ॥

अब नेत्रोंके काले रंगमें होनेवाले रोग कहते हैं।

सव्रणशुक्रलक्षण।

**निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ॥**
**स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरंति ॥ २३ ॥**

भाषा-नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलसा हो जाय और वह भीतरसे गडासा हो जाय, उसमें सुई चुभानेकीसी पीडा होवे तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे इस रोगको सव्रणशुक्र कहते हैं। इसमें पीडा बहुत होती है। क्षतमें पीडा होना ठीकही है और नेत्रसरीखे सुकुमार ठिकानेपर तो विशेष पीडा होती है ऐसा भोजविदेहादिकोंका मत है ॥

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण।

**दृष्टेः समीपेन भवेत्तु यत्तु न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ॥**
**अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २४ ॥**

भाषा-जो शुक्र ( फूल ) दृष्टिके समीप होय नहीं और एक त्वचामें होय, बहुत स्रवे ( झरे ) नहीं, जिसमें पीडा न होय और एकही स्थानमें दो बूंद ( फूल ) न होंय ऐसा शुक्र कदाचित् अच्छाभी हो जाय परन्तु इनसे विपरीत लक्षण दृष्टिके समीप होना, दूसरी त्वचामें होय, बहुत स्रवे, पीडा होय, एक स्थानमें दो बूंद होंय यह शुक्र अच्छा नहीं होता है ॥

अव्रणशुक्रलक्षण।

**स्यन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ॥**
**वैहायसाभ्रप्रतनु प्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ २५ ॥**

भाषा-अभिष्यंदसे उत्पन्न होकर नेत्रोंके काले भागमें चोष कहिये सींग तुमडीकी पीडायुक्त, शंख चन्द्र कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला ऐसा जो व्रणरहित शुक्र होय उसको सुखसाध्य कहते हैं ॥

अव्रणशुक्र अवस्थाविशेषकरके साध्य होता है उसको कहते हैं।

**गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं वापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ २६ ॥**

भाषा-जो शुक्र गंभीर हो अर्थात् दो त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटा हो उसको कच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥

अव्रण अवस्थाभेदकरके असाध्य होता है उसको कहते हैं।

**विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥**
**द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च शिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥२७॥**

भाषा–जो शुक्रके बीचका मांस गिर जाय, इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला हो जाय अथवा इसके विपरीत कहिये पिशितावृत अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय, चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओंसे व्याप्त हो, बारीक हो गया हो, दृष्टि-नाश करनेवाला ( यह ' दृष्टेः समीपे न भवेत् ' इसका उलटा है ) दो पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र हो ऐसेको वैद्य त्याग दे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण।

**उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ॥**
**तदप्यसाध्यं प्रवदंति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २८ ॥**

भाषा–जिसके नेत्रोंसे गरम अश्रुपात ( आंसू ) गिरकर पिडिका उत्पन्न होवे दो पटलमें शुक्र जानेसे ये लक्षण होते हैं। तथा जिसमें मूंगके बराबर शुक्र होवे ऐसा नेत्रका शुक्र असाध्य है और जो तीतरके पंखके समान कहिये काले रंगका होवे उसकोभी असाध्य कोई कोई कहते हैं ॥

अक्षिपाकात्ययके लक्षण।

**श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥**
**तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ २९ ॥**

भाषा–नेत्रके कृष्णभागमें दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र फैल जावे यह सन्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्य है ऐसा कहा है ॥

अजकाजातके लक्षण।

**अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ॥**
**विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत्३०॥**

भाषा–काले भागमें बकरीके शुष्क विष्ठाके समान दूखनेवाला लाल हो और गाढा कुछ कालेसे आंसू वहें उसको अजकाजात ऐसा जानना चाहिये ॥

---

१ अजकाजातका भेद विदेह दूसरा कहता है। तथा–" कृष्णैरक्षणोर्भवेच्छुक्रं छगलीविट्समप्रभम्। सांद्रं पिच्छिलरक्तास्रं त्रिस्थगा त्वजकेति सा ॥ " इति।

## दृष्टिके रोग।

पहले पटलमें दोष जानेसे उसके लक्षण।

**प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टि व्यवस्थितः ॥**
**अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ ३१ ॥**

भाषा–प्रथम पटलमें दोष स्थित होनेसे वह पुरुष अव्यक्तरूप ( घटपटादि पदार्थ ) देखे। दृष्टिका प्रमाण सुश्रुतमें कहा है ॥

यथा।

**मसूरदलमात्रं तु पंचभूतप्रसादजम् ॥**

भाषा–आधे मसूरदलके समान पचभूत ( पृथ्वी, जल, तेज. वायु, आकाश ) से प्रगट है। शंका–इस श्लोकमें तो मसूरदलके समान लिखा है फिर आधे मसूरके समान ऐसा अर्थ आपने कैसे किया? उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह अर्थ हमने निमि आचार्यके मतसे लिखा है। यथा " पंचभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्द्धदलोन्मिता। " इति। अब कहते हैं कि मंडल चार हैं सो सुश्रुतमें लिखा है ॥

यथा।

**तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् ॥**
**मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम् ॥ ३२ ॥**

भाषा–प्रथम पटल रुधिर और जलाश्रित है, दूसरा पटल पिशित ( मांस ) के आश्रित है, तीसरा पटल मेदके आश्रित है, चौथा पटल अस्थि ( हड्डी ) के आश्रित है। सुश्रुतमें नेत्ररोगके भेद बहुत लिखे हैं ॥

द्वितीयपटलस्थित दोषके लक्षण।

**दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥ मक्षिकामशकान्केशान् जालकानि च पश्यति ॥ ३३ ॥ मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च ॥ परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ ३४ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ॥ समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥ ३५ ॥**

भाषा–दूसरे पटलमें दोषके जानेसे दृष्टि विह्वल हो जाय अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी, मच्छर, बाल, जाली, मंडल, पताका, किरण, कुण्डल आदि; अनेक प्रकारके जलके समूह, वर्षा, मेघ

( बादल ) अंधकार ये नहीं दीखें, ये दृष्टि विह्वल होनेसे होते हैं और विषयभ्रान्तिसे दूरकी वस्तु समीप दीखे और समीपकी दूर दीखे और अनेक यत्न करनेसेभी सुईका छिद्र न दीखे ॥

तृतीयपटलगत दोषके लक्षण ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ ३६ ॥ महांत्यपि च रूपाणि च्छादितानीव चांबरैः ॥ कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानि च पश्यति ॥ ३७ ॥ यथ दोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसी ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३८ ॥ पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति ॥ समंततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ ३९ ॥ दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति ॥ द्विधा स्थिते द्विधा पश्यद्बहुधा वाऽनवस्थिते ॥ दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ ४० ॥

भाषा—तीसरे पटलमें दोष जानेसे ऊपरकी वस्तु दीखे नीचेकी वस्तु नहीं दीखे जो वस्तु बडी और भव्य होवे वह वस्त्रमें ढकीसी दीखे, कान नाक और नेत्र इन करके रहित पुरुषोंको देखे, टेढे बांके दीखे और जिस वातादि दोषका रुधिर मांस मेदादिकोंके सहाय होनेसे उनमें जो दोष बलवान् होय उसका जैसा रूप ( रंग ) होवे उसी प्रकारका दीखे अर्थात् जिस जिस दोषका जैसा वर्ण होय वैसा दीखे, दोष नीचे स्थित होय तो समीपस्थ वस्तु नहीं दीखे और ऊपर दोष स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे और दोष पार्श्व ( पसवाडे ) में स्थित होनेसे पसवाडेकी वस्तु नहीं दीखे और दोष दृष्टिके मध्यमें सर्वत्र स्थित होवे तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखे । दृष्टिके मध्यमें दोष जानेसे बडी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखे और दोष अव्यवस्थित अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकडेसे दिखलाई देवें, दृष्टिगत दोष तिरछे स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकडे दिखलाई देवें यह स्वरूपोंका दीखना तीसरे पटलसे प्रारंभ होता है । सो विदेहने लिखाभी है ॥

चतुर्थपटलगत तिमिरलक्षण ।

तिमिराख्यः स वै रोगश्चतुर्थपटलं गतः ॥ ४१ ॥ रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाशमतः परम् ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे

१ "यथास्व रज्यते दृष्टिर्दोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थं पटलं प्राप्य मण्डलं त्यज्यते तु तैः ॥" इति ।

**महागदे ॥ ४२ ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावंतरिक्षे च विद्युतः ॥ निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥ ४३ ॥**

भाषा—वह तिमिररोग चौथे पटल ( परदे ) मे पँहुचनेसे दृष्टिको चारों ओरसे रोक दे इसको कोई आचार्य लिंगनाश कहते हैं और कोई तिमिर कहते हैं। यह अंधकारमय रोग अति बढ जाय तब उस मनुष्यको आकाशमें चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, बिजुली और निर्मल तेजभी यथार्थ नहीं दीखें, तेजके पुंजसे दीखें लौकिकमें इस रोगको नजला कहते हैं। लिंगनाशकी निरुक्ति—"लिंग्यते ज्ञायते इत्यनेनेति, लिंगमिन्द्रियशक्तिस्तस्य नाशो यस्मिन्निति लिंगनाशः" अर्थात् जिसकरके जाने सो कहिये लिंग ( इन्द्रिय ) उसका नाश जिसमें होय उसको लिंगनाश कहते हैं और इसी रोगको लौकिकमें मोतियाबिंदुभी कहते हैं ॥

तृतीयपटलाश्रित काचदोषकी दूसरी संज्ञा।

**स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥**

भाषा—तीसरे पटलगत कांच ( मोतियाबिन्दु ) की उपेक्षा करनेसे वही फिर चौथे पटलमें पहुँचता है तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं। यह रोग असाध्य है ऐसा निमिआचार्य लिखते हैं। परन्तु गदाधर आचार्य कहते हैं कि विशेष काचको नीलिकाकाच कहते हैं ॥

दोषविशेषकरके रूपका दीखना कैसा होता है।

**तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव हि पश्यति ॥ आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ ४४ ॥ पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गणान् ॥ नृत्यन्तश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥ ४५ ॥ कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥ सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥ ४६ ॥ पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥ सितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ४७ ॥ सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥ बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समंततः ॥ हीनांगान्यधिकांगानि ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ४८ ॥**

भाषा—वादीसे रोगीको मलिन, कुछ लाल, तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे पित्तसे सूर्य, खद्योत ( पटबीजना ), इन्द्रधनुष, बिजुली इनको और नाचनेवाले

१ "काच इत्येष विजयो याप्यस्त्रिपटलस्थितैः। चतुर्थपटलं प्राप्तो लिंगनाशः स उच्यते ॥" इति।

मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे। कफसे चिकनी और सफेद तथा पानीमें डुबोई हुई निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप दीखे। रुधिरसे लाल और अनेक प्रकारका अंधकार तथा किंचित् सफेद, काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे। सन्निपातसे अनेक प्रकारके विपरीत अर्थात् एककी अनेक दो अथवा अनेक प्रकारके रूप दीखें। हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप रोगी देखे और ज्योतिस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें॥

पित्तसे दूसरा परिम्लायसंज्ञक तिमिर होता है।

**पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा॥**
**पीता दिशस्तथोद्यन्तमादित्यमपि स पश्यति॥**
**विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च॥ ३९॥**

भाषा—रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे परिम्लायरोग होता है इसके योगसे रोगीको दिशा, आकाश और सूर्य ये पीले दीखें और सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दीखें। परिम्लाय पित्तको नील कहते हैं सो सात्यकिने लिखा है। इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते हैं सोभी लिखा है

रागभेदसे लिंगनाशको षड्विधत्व कहते हैं।

**वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिंगनाशमतः परम्॥ ५०॥**
**रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्॥**
**कफात्सितः शोणितजः सरक्तो समस्तदोषप्रभवो विचित्रः॥५१॥**

भाषा—इसके अनन्तर रागभेदसे छः प्रकारका लिंगनाश होता है सो इस प्रकार है। वातजन्य रंग लाल होता है। पित्तसे म्लायी, पीला, नीला अथवा नीलाही रंग होता है। कफसे सफेद और रुधिरसे लाल तथा सब दोषोंसे अनेक प्रकारका रंग होता है॥

वातिकरागके विशेष लक्षण।

**अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम्॥**
**परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम्॥**
**दोषक्षयात्कदाचित्स्यात्स्वयं तत्र प्रदर्शनम्॥ ५२॥**

भाषा—परिम्लायि रोगमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता

---

१ "एवमेव तु विज्ञेया नीलाः पित्तसमुद्भवाः।" इति। २ "विदग्धापि परिम्लायि पित्तरक्तेन संगतम्। तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम्॥" इति।

है वह म्लान, लाल, पीला अथवा नीला होता है। उसमें दोष घटनेसे कदाचित् देखनेकी शक्ति होय इस जगह दोषशब्दकरके कोई कर्मका ग्रहण करते हैं॥

दृष्टिमण्डलगत रागके लक्षण।

**अरुणं मण्डलं वाताच्चंचलं परुषं तथा॥ पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च॥५३॥ श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपाण्डुरम्॥ चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः॥५४॥ मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति॥ प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम्॥५५॥ दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिंगनाशे त्रिदोषजे॥ यथ स्वं दोषलिंगानि सर्वेष्येव भवंति हि॥५६॥**

भाषा—वादीसे दृष्टिमण्डल लाल, चंचल और खरदरा होता है। पित्तसे दृष्टिमण्डल किंचित् नीला तथा कांचके समान पीला होवे। कफसे भारी, चिकना, शंख, कुंदफूल और चन्द्र इनके समान सफेद होय और उसके नेत्रमें हलनेवाला, कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूंदके समान, टेढी तिरछी, सफेद बूंद फैलीसी दिखलाई दे। रुधिरसे दृष्टिमण्डल मूंगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे और त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मण्डल होय तथा सर्वदोषोंके लिंग मण्डलमें वातादि दोषोंके न्यारे २ लक्षण होय॥

आगे कहे गये और पीछे कहे ऐसे दृष्टिरोगोंकी संख्या।

**षट् लिंगनाशाः षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः ५७**

भाषा—पूर्व लिंगनाश रोग छः और आगे विदग्धदृष्ट्यादि कहे गये छः ऐसे सब मिलकर बारह दृष्टिरोग होते हैं॥

पित्तविदग्धके लक्षण।

**पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः॥ पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः॥५८॥**

भाषा—पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगके दीख उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं॥

दिवांधके लक्षण।

**प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः॥ रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ५९**

भाषा-तीसरे पटलमें दोष ( पित्त ) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे ॥

कफविदग्ध दृष्टिके लक्षण ।

**तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मंयते तु ॥**

भाषा-इसी प्रकार कफविदग्ध पुरुषको सफेद रूप दीखे ॥

रक्तांध ( रतौंध ) के लक्षण ।

**त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तांध्यमापादयति प्रसह्य ॥**
**दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्यंतु रूपाणि कफाल्पभावात् ६० ॥**

भाषा-जो दोष ( कफ ) तीनों पटलमें रह वह रक्तांध ( रतौंध ) उत्पन्न करे । वह दिवस ( दिन ) में सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे दिनमें दीखे ॥

धूमदर्शीके लक्षण ।

**शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥**
**धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ६१ ॥**

भाषा-शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होवे । उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूआके रंगके दीखें । इस रोगको धूमदर्शी वा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं । इसमें दिनका धूंआके रंगके पदार्थ दीखें । इसका कारण यह है कि रात्रिमें पित्तका तेज घटनेसे निर्मल दीखे ॥

ह्रस्वदृष्टिके लक्षण ।

**यो ह्रस्वजात्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत् ६२**

भाषा-जो ह्रस्वजात्य पुरुष होता है उसको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखें । इसका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्यगत दोष होता है । यह रोगभी पित्तजन्य है॥

नकुलांध्यके लक्षण ।

**विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥**
**चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलांध्यसंज्ञः ६३**

भाषा-जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिके समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं ॥

गम्भीरदृष्टिके लक्षण ।

**दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यंतरतश्च याति ॥**
**रुजावगाढं च तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ ६४ ॥**

भाषा-जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे तथा उनमें पीडा होवे उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं ॥

आगंतुज लिंगनाशके लक्षण।

**बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥**
**निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिदर्शनः सः ॥६५॥**

भाषा-अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है। एक निमित्तजन्य दूसरा अनिमित्तजन्य। तिनमें शिरोभितापकरके ( विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे ) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं। इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं ॥

अनिमित्तके लक्षण।

**सुरर्षिगंधर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य ॥**
**हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥**
**तत्राक्षिविस्पृष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ६६ ॥**

भाषा-देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर ( टकटकी लगाकर ) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय उसको अनिमित्तलिंगनाश कहते हैं। इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैदुर्य्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय। अब कहते हैं कि देवादिक भौतिक इंद्रियोंको नहीं बिगाडे परन्तु उनकी शक्तिका नाश करते हैं। सो चरकमें[1] लिखा है ॥

अर्मरोग पांच प्रकारका है।

**प्रस्तार्यमतनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ॥ सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धते चिरात् ॥ ६७ ॥ पद्माभं मृदुरक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥ पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम् ॥ स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पंचमम् ॥ ६८ ॥**

भाषा-नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल ऐसा जो मांस बढे उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं। शुक्लभागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढे उसको शुक्लार्म कहते हैं। कमलके समान लाल तथा मृदु जो मांस बढे उसको रक्तार्म कहते हैं। जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान

---

१ " देवादयोऽष्टौ हि महाप्रभावा न दूषयंतः पुरुषस्य देहम्। विशंत्यदृश्यास्तरसा यथैव छाया तयोर्दर्पणसूर्यकांतौ। " इति।

कुछ काला लाल दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं। जो कठिन और फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं। विदेहने कहाभी है॥

शुक्तिरोगके लक्षण।

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिंदवो ये
शुक्त्याभाः सितिनियताः स शुक्तिसंज्ञः॥

भाषा-नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण, मांसतुल्य, सीपीके समान जो बिंदु होय उसको शुक्ति कहते हैं॥

अर्जुनके लक्षण।

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तदर्जुनं वदंति॥६९॥

भाषा-शुक्लभागमें शशेके रुधिरके समान जो बिंदु ( बूंद ) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं॥

पिष्टकके लक्षण।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम्॥
पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम्॥७०॥

भाषा-कफवायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट ( पिसा ) सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं। वह मलसे मिले अर्श ( बवासीर ) के समान होता है॥

जालके लक्षण।

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु॥

भाषा-नेत्रके सफेद भागमें शिरा ( नस ) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे उसको जाल कहते हैं॥

शिराज पिटिकाके लक्षण।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्ता
ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः॥७१॥

भाषा-नेत्रके शुक्लभागमें शिरा ( नसो ) से व्याप्त ऐसी सफेद फुंसी होय उसको शिराजपिडिका कहते हैं। यह कृष्णभागके समीप होती है॥

बलासके लक्षण।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिंदुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः॥७२॥

---

१ "प्रस्तारिणोमणः स्राव निरुणद्धि यदानिलः। विना स्रावे विशुष्य यत् स्नाय्वर्मेतीति तद्विदुः॥" इति।

भाषा-नेत्रके शुक्लभागमें कांसेके समान कठिन पानीकी अथवा पानीके बूंदके समान कुछ ऊंची जो गाठ होय उसको बलास कहते हैं ॥

## नेत्रकी संधिके रोग।

### पूयालसके लक्षण।

**पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥**

भाषा-नेत्रकी संधिमें सूजन होवे और पककर फूट जाय, उसमेंमे दुर्गंधि और राध वहे तथा तोद ( सुई छेदनेकीसी पीडा ) होय उसको पूयालस कहते हैं ॥

### उपनाहके लक्षण।

**ग्रंथिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कण्डुप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ७३ ॥**

भाषा-नेत्रकी संधिमें बडी गांठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उसको उपनाह ऐसा कहते हैं ॥

### स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण।

**गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् ॥**
**तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके यस्या लिंगं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥७४॥**

भाषा-वातादि दोष अश्रुमार्गसे संधियोंमें प्राप्त होकर स्वकीय लक्षणयुक्त स्राव उत्पन्न करे उस स्रावको कोई नेत्रनाडी कहते हैं। यह रोग चार प्रकारका है, उसके लक्षण कहते हैं। शंका क्योंजी ! वातका स्राव क्यों नहीं कहा ? उत्तर-वातमें स्राव नहीं होता है इसीसे विदेहने चारही प्रकारक स्राव कहे हैं ॥

**पाकः संधौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु ॥**
**श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्धि श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारो मतस्तु ७५**
**रक्तास्रावः शोणितोत्थो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥**
**हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥ ७६ ॥**

भाषा-पूयास्राव-नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमेंसे राध वहे। यह रोग सन्निपातात्मक है। श्लेष्मास्राव जिसमेंसे सफेद गाढी और चिकनी राध वहे। रक्तास्राव-जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर वहे उसको रक्तास्राव कहते हैं पित्तास्राव-जिसकी संधिमें हलदीके समान पीला गरम जल वहे उसको पित्तास्राव कहते हैं ॥

---

१ " मारुतो पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः । जलबिन्दुरिवोच्छूनो मृदुः स कफसंभवः । बलासग्रथितं नाम तं शा र्फ वृत्तमादिशेत् ॥ " इति । २ " सन्निपातात्कफाद्रक्तात्पित्तात्स्रावोऽक्षिसंधिषु । " इति ।

पर्वणी व अलजीके लक्षण।

ताम्रातन्वीदाहपाकोपपन्ना ज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा ॥
जाता सन्धौ शुक्लकृष्णेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिंगैः ७७

भाषा—नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुंसी होवे और वह फुंसी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं। और उसी ठिकाने पूर्वरूपसंयुक्त बडी फुंसी उठे उसको अलजी कहते हैं। पर्वणी और अलजीमें इतनाही अंतर है कि अलजी बडी फुंसी होती है और पर्वणी छोटी फुंसी होती है यह विदेहका मत है ॥

कृमिग्रंथिके लक्षण।

कृमिग्रंथिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः कृमयः संधिजाताः ॥
नानारूपा वर्त्मशुक्लांतसंधौ चरंत्यतर्नयनं दूषयंतः ॥ ७८ ॥

भाषा—जिसके नेत्रसे शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि, खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रके पलक और सफेदी भागकी संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे उसको कृमिग्रंथि कहते हैं यह सन्निपातात्मक कहते हैं सो विदेहकाभी मत है ॥

वर्त्ममर्मस्थानके रोग।

उत्संगपिडिकाके लक्षण।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मतश्च या ॥
सोत्संगोत्संगपिडिका सरुजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥

भाषा—नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुंसी होय और उसका मुख भीतर होय। वह लाल बडी तथा खुजलीसंयुक्त होय उसको उत्संगपिडिका कहते हैं। यह सन्निपातसे होती है। गदाधर और विदेहके मतसे पलकोंके कोएमें बाहरभी यह रोग होता है इस श्लोकमें चकार लिखा है उसका प्रयोजन यह है कि इस जगहभी भुंगीके अंडेकासा रसस्राव जानना ॥

कुंभिकाके लक्षण।

वर्त्मांते पिडिका ध्माता भिद्यंते च स्रवंति च ॥
कुंभीकबीजसदृशाः कुंभीकाः सन्निपातजाः ॥ ८० ॥

---

१ "पर्वणीपिडिका तत्र जायते वक्रोपमा। शुक्लकृष्णांतसंधौ च जनयेद्धस्तिनाकृतिम्॥ पिडिकामलजीं तां तु विद्धि तांदाश्रुसंकुलाम् ॥" इति। २ "ततः पूयमसृक्कृष्णाः पतंति कृमयस्तथा। लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः। कृमिग्रंथिं तु तं विद्याद्देहिनां नेत्रदूषणम् ॥" इति। ३ "वर्त्मोत्संगाद्‌यथा जनाः सन्निपातात्प्रजायते। अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते॥ पिडिकाभिश्च चिताऽन्याभिः समंततः। उत्संगपिडिका नाम कठिना मन्दवेदना ॥" इति।

भाषा—पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान होय वह पककर फूट जाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते हैं । कोई आचार्य कहते हैं कि कच्छदेशमें दाडिम ( अनार ) के बीजके आकार कुंभिका होती है ॥

पोथकीके लक्षण ।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ॥
रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

भाषा—जिसके कोएमें लाल सरसों समान रुधिरस्राव होय; खुजलीसंयुक्त भारी तथा पीडासंयुक्त फुंसी होय उसको पोथकी कहते हैं ॥

वर्त्मशर्कराके लक्षण ।

पिडिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता ॥
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ८२ ॥

भाषा—जिसके कोएमें जो पिडिका कठिन और वडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुंसियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं । इससे कोए विगड जाते हैं ॥

अर्शोवर्त्मके लक्षण ।

उर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मंदवेदनाः ॥
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ८३ ॥

[1] भाषा—ककडीके बीजके बराबर, मंद पीडा, पृथक् पृथक्, कठिन ऐसी फुंसी कोएमें उठे उसको अर्शोवर्त्म कहते हैं । निमि विदेहके मतसे यह सन्निपातात्मक है ॥

शुष्कार्शके लक्षण ।

दीर्घांकुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ॥
व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥ ८४ ॥

भाषा—नेत्रके कोएमें लंबे, खरदरे, कठिन, दुःखदायक ऐसे जो मांसांकुर होंय उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं । यहभी सन्निपातज है ॥

अंजनाके लक्षण ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसंभवा ॥
मृद्वी मंदरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ८५ ॥

भाषा—दाह, तोद ( चोटनी ) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मंद पीडा करनेवाली ऐसी फुंसी नेत्रके कोएमें होय उसको अंजना कहते हैं । यहभी सन्निपातज है ॥

---

१ " विरजा कठिना वर्त्मपक्षान्तर्वर्त्मतोऽपि वा । पिडिका सन्निपातेन तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ " इति ।

वहलवर्त्मके लक्षण ।

**वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ॥**
**सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्वहलवर्त्म तत् ॥ ८६ ॥**

भाषा–जिसके नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुंसियोंसे व्याप्त होय उसको वहलवर्त्म रोग कहते हैं । यहभी सन्निपातज है ॥

वर्त्मबंधके लक्षण ।

**कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ॥**
**न संप्रच्छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबंधकः ॥ ८७ ॥**

भाषा–जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे इस रोगको वर्त्मबंधक कहते हैं । इस सूजनमें खुजली चले तथा तोद ( चोंटनी ) होती है यह रोग त्रिदोषज है ॥

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण ।

**मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ॥**
**अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८८ ॥**

भाषा–नेत्रके नीचे ऊपरके दोनों कोये नरम, अल्प पीडा, तांबेके वर्ण होकर अकस्मात् लाल हो जाय तो इस रोगको क्लिष्टवर्त्मरोग कहते हैं । यह रोग कफरक्तज है यही मत विदेहका है ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण ।

**क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ॥**
**तदाक्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८९ ॥**

भाषा–क्लिष्टवर्त्म फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे तब वह दही, दूध, माखनके समान गीला हो जाय, अत एव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं । यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक है ॥

श्यावबर्त्मके लक्षण ।

**वर्त्म यद्बाह्यतोऽतश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ॥**
**तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ९० ॥**

भाषा–जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन होय तथा पीडा

---

१ " श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसमतः समम् । बंधुजीवनिभं वर्त्म क्लिष्टमांस तदुच्यते ॥ " इति ।

होय उसको वर्त्मरोगके जाननेवाले श्याववर्त्म कहते हैं । यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है । विदेहने लिखाभी है॥

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

**अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ॥**
**प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमंततः ॥ ९१ ॥**

भाषा–जो कोये अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं । यह कफज विकार है ॥

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

**यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यंते पुनः पुनः ॥**
**वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ९२ ॥**

भाषा–जिसके नेत्रके पलक धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपक जावें, कोए पककर राधसे नहीं चिकटें तो इस रोगको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं । इस रोगको विदेह पिल्लायाया कहता है ॥

वातहतवर्त्मके लक्षण ।

**विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ॥**
**एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९३ ॥**

भाषा–जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होय, तथा जिसके पलक मिचें और खुले नहीं, ऐसे नेत्रनके कोये मिलें नहीं उसको वातहतवर्त्म शालाक्यसिद्धांतवाला कहता है ॥

अर्बुदके लक्षण ।

**वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ॥**
**आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंबितम् ॥ ९४ ॥**

भाषा–नेत्रके कोयेके भीतर गोल, मंदवेदनायुक्त, कुछ लाल, जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गांठ होय, उसको अर्बुद कहते हैं । यहभी सन्निपातज है ॥

निमेषके लक्षण ।

**निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः ॥**
**प्रचालयति वर्त्मानि निमिषं नाम तं विदुः ॥ ९५ ॥**

भाषा–वर्त्माश्रित ( कोयेमें स्थित ) जो वायु, सो निमेष ( कहिये पलकके

---

१ "दुष्टं श्लेष्मानिलाश्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा । अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः ॥ " इति ।

उघाडने मूंदनेवाली नस ) में प्रवेश होकर वारंवार पलकोंको चलायमान करे, उसको निमेष ( नेत्रका मिचकाना ) कहते हैं । विदेहने लिखा है । यह रोगभी सन्निपातज है ॥

शोणितार्शके लक्षण ।

**वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः ॥**

**तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्द्धते ॥ ९६ ॥**

भाषा-रुधिरके संबन्धसे नेत्रके कोयेके भीतर भागमें लाल तथा नरम अंकुर बढे उसको शोणितार्श कहते हैं । इसको जैसे काटे तैसे तैसे बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहे आचार्य असाध्य कहते हैं ॥

लगणके लक्षण ।

**अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रंथिर्वर्त्मभवोऽरुजः ॥**

**सकण्डू पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः ॥ ९७ ॥**

भाषा-नेत्रके कोयेमें बेरके समान बडी, कठिन, खुजलीसंयुक्त, चिकनी गांठ होय, उसको लगण कहते हैं । यह रोग कफजन्य है इसमें पीडा और पकना नहीं होय ॥

बिसवर्त्मके लक्षण ।

**त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ॥**

**प्रस्रवत्यंतरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥**

भाषा-तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें तथा उनमें छिद्र हो जांय उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं ॥

कुंचनके लक्षण ।

**वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयंति यदा मलाः ॥**

**तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ ९९ ॥**

भाषा-वातादि दोष जब कोयेके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं देख सके इस रोगको कुंचन कृच्छ्रोन्मीलन कहते हैं । यह रोग सुश्रुताचार्यने नही लिखा माधवाचार्यनेही लिखा है ॥

---

१ " निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविश्य व्यवतिष्ठते । अत्यर्थं चलते वर्त्म निमेषः स न सिध्यति ॥ " इति । २ " वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्यंकुरं ताम्र वर्त्मनि च्छिन्नरोहणम् । तच्छोणितार्शोऽसाध्यः स्याद्रक्तात्स्राव्यय रक्तजम् ॥" इति ।

पक्ष्मकोपके लक्षण ।

**प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षिण विशंति हि ॥**
**घृष्यंत्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयंति च ॥ १०० ॥**
**असिते सितभागे च मूलकोशात्पतंत्यपि ॥**
**पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ १०१ ॥**

भाषा—वादीसे चलायमान कोयेके वाल नेत्रमें प्रवेश करें और वह वारंवार नेत्रकों रंगडे जांय, इसीसे नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय वह केश ( बाल ) जडसे टूट जावें, अत एव इस व्याधिको पक्ष्मकोप अथवा उपपक्ष्म कहते हैं ॥ यह वडा दुःखदायक है ॥

पक्ष्मशातके लक्षण ।

**वर्त्म पक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ॥**
**कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ १०२ ॥**

भाषा—पलकोंकी जडमें रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके वाल जिनको वरूनी अथवा वाफनी कहते हैं उनका नाश करे तथा नेत्रोंमें खुजली चले, दाह होय उसको पक्ष्मशात कहते हैं। इस रोगकोभी सुश्रुतने संख्या वढनेके भयसे नहीं लिखा माधवाचार्यने अन्य ग्रन्थोंके मतसे लिखा है ।

नेत्ररोगोंकी संख्या ।

**नव संध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ॥ शुक्लभागे दशै-कश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥ १ ॥ सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टि-जा द्वादशैव तु ॥ बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥ भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यारूपचिकित्सितैः ॥ २ ॥**

भाषा—संधिमें होनेवाले नेत्ररोग ९ प्रकारके हैं, कोयेमें होनेवाले रोग २१ हैं, नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले रोग ११ हैं, काले भागके ४ हैं, सर्वसर अर्थात् सर्व नेत्रमें होनेवाले रोग १७ हैं, दृष्टिके रोग १२ हैं और नेत्रके वाहरके रोग २ हैं ये हमने संग्रहीत श्लोकमें लिखे हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां नेत्ररोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ शिरोरोगनिदानम्।

शिरोरोगाश्च जायंते वातपित्तकफैस्त्रिभिः॥ सन्निपातेन रक्तेन
क्षयेण कृमिभिस्तथा॥ सूर्यावर्त्तानंतवातार्द्धावभेदकशंखकैः॥१॥

भाषा-वात, पित्त, कफ इनसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १, क्षयसे १, कृमिसे १, सूर्यावर्त १, अनन्तवात १, अर्धावभेदक १ और शंखक १ सब मिलकर ११ प्रकारके शिरोरोग ( मस्तकशूल ) होते हैं॥

वातजके लक्षण।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम्॥
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन॥२॥

भाषा-जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रिमें विशेष दूखे, बाधनेसे अथवा सेकनेसे शांति हो उसको वातज शिरोरोग जानना चाहिये॥

पैत्तिकके लक्षण।

यस्योष्णमंगारचितं तथैव भवेच्छिरो दह्यति वाऽक्षि नासा॥
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात्॥३॥

भाषा-जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय शीतल पदार्थसे किंवा रात्रिमें शान्ति हो उस मस्तकशूलको पित्तकोपका जानना॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिस्तब्धमथो हिमं च॥
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात्॥४॥

भाषा-जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त ( लिहसासा ) होवे, भारी, बंधासा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना चाहिये। "शूनाक्षिकूटं" इस जगह कोई "शूलाक्षिकूटं" ऐसा पाठ कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मस्तकमें मंद शूल होता है॥

सन्निपातिकके लक्षण।

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवन्ति॥५॥

भाषा-त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं॥

रक्तजके लक्षण।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च॥

भाषा—रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकका स्पर्श सहा नहीं जाय यह विशेष होता है॥

क्षयजके लक्षण।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ॥ ६ ॥
क्षयप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

भाषा—मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल होता है। छींक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे तथा उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर निकलना ये उपद्रव करनेसे यह मस्तकशूल होता है इसको क्षयज मस्तकशूल कहते हैं॥

कृमिजके लक्षण।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चांतः ॥
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥८॥

भाषा—जिसके मस्तकमें टांकीके तोडनेकीसी पीडा होवे तथा कृमि भीतरसे मस्तक पोखाकर पोला कर देवे तथा मस्तक भीतरसे फडके तथा नाकमें रुधिर राध और कीडा पडे यह कृमिजरोग बडा भयंकर है॥

सूर्यावर्त्तके लक्षण।

सूर्योदयं या प्रति प्रतिमन्दमन्दमाक्षि भ्रुवं रुक्समुपैति गाढा ॥
विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ९ ॥
शीतेन शांतिं लभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाद्वा ॥
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यप्रवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १० ॥

भाषा—सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य बढे तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भ्रुकुटी ( भौंह ) इनमें दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ वढकर फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे तैसे पीडा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय इस सन्निपातिक विकारको सूर्यावर्त्त कहते हैं॥

अनंतवातके लक्षण।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम् ॥
कुर्वंति साक्षिभ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥११॥

गंडस्य पार्श्वे च करोति कंपं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ॥
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥

भाषा–तीनों दोष ( वात, पित्त, कफ ) दुष्ट होकर मन्यानाडीको पीडित कर नेत्र, भौंह, कनपटी इनमें घोर पीडा करें तथा गंडस्थल और पसवाडेमें पीडा कंप होय, ठोडी जकड जाय, नेत्ररोग होय त्रिदोषजन्य इस मस्तकरोगको अनंतवात कहते हैं। सुश्रुतने अनंतवातरोगको छोडकर मस्तकरोग १० ही कहे हैं ॥

अर्धावभेदक ( आधासीसी ) के लक्षण ।

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः ॥ वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥ केवलः सकफो वार्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली ॥ मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटेऽर्धेऽतिवेदनाम् ॥ १४ ॥ शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ॥ नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १५ ॥

भाषा–रूखे अन्नसे, अत्यन्त भोजन, अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), पूर्वदिशाकी पवन सेवन करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेमें परिश्रम और दंड कसरत करनेसे इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखे, कुल्हाडीसे घाव करनेकीसी अथवा अरणी ( आग निकालनेके काष्ठ ) के मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्धावभेदक ( आधासीसी ) कहते हैं। यह रोग जब बहुत बढ जाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन हो जाता है अथवा एक ओरकी आख मारी जाती है । जिस ओरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं । सुश्रुतने इस रोगको त्रिदोषज कहा है ॥

शंखकके लक्षण ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः ॥ तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १६ ॥ स शिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा ॥ त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः ॥ त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १७ ॥

भाषा–दुष्ट भये जो पित्त, रक्त और वायु सो ( इस जगह कफकोभी दुष्ट

१ " स्यादुत्तमांगं रुजतेऽर्द्धमात्रं सतोदभेदभ्रममोहशूलैः । पक्षाद्दशाहादथ वाप्यकस्मात्स्यादर्द्धभेदो त्रितयाद्व्यवस्येत ॥ " इति ।

हुआ जानना यह सुश्रुतने कहा है ) विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करे और इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों और यह विषके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोक दे, इस शंखरोगसे रोगीका तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय । इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषधी पहुँचनेसे रोगी बचे परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ प्रदररोगनिदानम् ।

**विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ॥**
**यानातिशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवाच च ॥**
**तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुः प्रकारं प्रदरं वदंति ॥ १ ॥**

भाषा–विरुद्ध ( क्षीर मत्स्यादि ), मद्य, अध्यशन ( भोजनके ऊपर भोजन ), अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अतिगमन ( चलना ), अतिशोक, उपवासादिक करके कर्शन अर्थात् व्रतके करनेसे सूख जाना, भारके वहनेसे अर्थात् भारी वस्तु उठाकर चलनेसे, काष्ठ कहिये लकडी आदिके लगनेसे, दिनमें सोनेसे इन कारणोंसे कफ, पित्त, वायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका प्रदररोग होता है ॥

प्रदररोगके सामान्यरूप ।

**असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥ २ ॥**

भाषा–सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथपैरोंमें पीडा होती है ॥

उपद्रवके लक्षण ।

**तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥**
**दाहः प्रलापः पांडुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः ॥ ३ ॥**

भाषा–जब यह प्रदर बहुत बढ जाता है तब दुर्बलता होय, थक जाय, मूर्च्छा आवे, मस्तपन, प्यास, दाह, प्रलाप ( बकना ), देह पीला हो जाय, तन्द्रा और वातजरोग ( आक्षेप अपतान कंपादिक ) होते हैं ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

**आमं सपिच्छं प्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥**

भाषा–कफसे आम रस ( कच्चा रस ) संयुक्त चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ॥

पैत्तिकके लक्षण।

**सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ४ ॥**

भाषा–किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, ऐसा प्रदर वहे उसमें पित्तके दाह चिमचिमादि पीडा होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय ॥

वातिकके लक्षण।

**रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥**

भाषा–वातसे रूक्ष, लाल, झागसे युक्त, मांसके और सफेद पानीके समान थोडा प्रदर वहे। उसमें वादी ( आक्षेपकादि ) की पीडा होती है ॥

त्रिदोषजके लक्षण।

**सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ॥**
**तच्चाप्यसाध्यं प्रवदंति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ५**

भाषा–जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मज्जा इनके रंगके समान तथा मुर्दा-कीसी दुर्गंधियुक्त होय उसको त्रिदोषज प्रदर जानना। यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

विशुद्धार्त्तवके लक्षण।

**मासान्निःपिच्छदाहार्ति पंचरात्रानुबंधि च ॥ नैवातिबहुलं नाल्प-मार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥ शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षा-रसोपमम् ॥ तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ७ ॥**

भाषा–जो आर्त्तव ( रजोदर्शनका रुधिर ) चिकना नहीं होवे तथा जिसमें दाह शूलादिक न हों तथा जिसका अनुबंध महीनेमें पाच दिवस पर्यन्त होय तथा बहुत न निकले और थोडाभी न होय ( मध्यमप्रमाणका होय ) उसको शुद्ध आर्तव जानना चाहिये और जो आर्तव शशेके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे और जिसका रंगा कपडा जलमें डालनेसे वर्ण नहीं पलटे, उसको शुद्ध आर्तव कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां प्रदररोगनिदानं समाप्तम्।

# अथ योनिव्यापत्तिनिदानम् ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ॥
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ॥
जायंते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥ १ ॥

भाषा—रोगसंग्रहमें योनिके वीस रोग हैं वह मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करके तथा दुष्ट आर्तव ( रुधिर ) से, बीजदोषके और दैवकी इच्छासे स्त्रियोंके होते हैं । उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं सुनो ॥

सा फेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रेण मुंचति ॥ २ ॥ वंध्यां नष्टा-र्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ॥ परिप्लुतायां भवति ग्रा-म्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ३ ॥ वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तो-दपीडिता ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु भवंत्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

भाषा—जिस योनिसे झाग मिला रुधिर बडे कष्टसे वहे उसको उदावृत्ता योनि कहते हैं और जिसका आर्तव नष्ट हो उसको वंध्या कहते हैं । जिसके निरन्तर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं । जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीडा होय उसको परिप्लुता कहते हैं । जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं । स्वस्वलक्षणसंयुक्त पित्तला श्लेष्मला योनिभी जाननी चाहिये और पहले जो चार योनि ( उदावृत्ता, वंध्या. विप्लुता, परिप्लुता ) कही है इनमें वातकी पीडा होती है और वातलामें पीडा विशेष होती है ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया ॥ सवातमुद्गमेद्बी-जं वामिनी रजसान्वितम् ॥ ५ ॥ प्रस्रंसिनी भ्रंशते तु क्षोभि-ता दुष्प्रजायिनी ॥ स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्ष-यात् ॥ ६ ॥ अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ ७ ॥

भाषा—जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर वहे उसको लोहितक्षया कहते हैं । जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्र वायु बराबर वहे उसको वामनी कहते हैं । जो योनि स्थानभ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं । जिसमें अंग वाहर निकल आवे और यह विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होय है । जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं । जो योनि अत्यन्त दाह पाक ( पकना ) और ज्वर इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय उसको पित्तला कहते हैं । इनमें पहली चार ( रक्तक्षया, वामना, प्रस्रं-

सिनी और पुत्रघ्नी ) में पित्तके लक्षण अधिक होते हैं और पित्तलामें पित्तके विशेष लक्षण होते हैं और पित्तलामें जो ज्वर दाह पाक कहे हैं सो उपलक्षणमात्र हैं अर्थात् इसमें नीला, पीला, सफेद आर्तव वहता है यह जानना सो तंत्रान्तरोंमें लिखा है ॥१

**अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ॥ कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ८ ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ॥ बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विंदति ॥ ९ ॥ श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥**

१ " व्यापल्लवणकट्वम्लक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत् । दाहपाकज्वरोष्णार्तिनीलपीता सिता भवेत् " इति ।

यवनशास्त्रानुसारेण स्त्रीरोगाः ।

रिहमगर्भाऽऽशयस्तस्य हारं सुयलुमिजाजतः ॥ वारिदस्तवथाविस्वा हेतवः प्रतिबधकाः ॥ १ ॥ तत्रापि द्विविधः सादे माद्दीति परिकीर्तितः ॥ तत्रयोग प्रतीकार तत्र वैद्यः समाचरेत् ॥ २ ॥ गर्भे रिहमकोष्ठस्था सौदी सगमवर्तिनी ॥ गिल्जत्सौदत्तदर्हैज हिर्कत् चापि भृश भवेत् ॥ ३ ॥ सभवैरिवकतदेर आमदन् हैज एव च ॥ दाहावधिश्च शैत्यत्व लिंगनिर्देश इत्यसौ ॥ ४ ॥ यकसत्सभवेमुष्मिन्वरांगे शोषण रज' ॥ सूक्ष्म प्रवर्तते शीत पर सौदाप्रकोपजम् ॥ ५ ॥ रत्तूवत प्रभवत्त्वस्मिन्मैलानरिहमुद्भवेत् ॥ हैंद्रारहेजनामेय गर्भस्थितिघातका ॥ ६ ॥ कदाचिद्दैवयोगेन सम्भवेद्गर्भलक्षणम् ॥ मासत्रयोत्तर पातो रत्तूवत्सगतो ध्रुवम् ॥ ७ ॥ मनीते नाशयेनैव विशेत्तिष्येन सयुता ॥ सुरतावसरे तत्र वेदना विघ्नकृद्भवेत् ॥ ८ ॥ समोगानन्तर नारी वेगादुत्तिष्ठते द्रुतम् ॥ रिहम्मुखान् मनी यातो बहिरेवभवेत्पुनः ॥ ९ ॥ अकरत् वध्यत्वमाख्यात मिपुनः स्याभिषग्वरैः ॥ परीक्षणीय वद्रीत्या प्रतिक य यथायथम् ॥ १० ॥ मनीहैजेक्षिपेदप्सु भिन्नभिन्न च स्तरेत् ॥ दूषित तद्विजानीयात् तहन् शीनन दोषल ॥ ११ ॥ रिहमुहुष्ममयो दोष' प्रदराख्यां दर्हा रुजम् ॥ औषधी कीचत्रदनी द्विविधा विद्धात्ययम् ॥ १२ ॥ कस्याश्चिदगनायास्तु प्रसवे सकट भवेत् ॥ अष्टमान्मासतस्तस्यै क्षीर पातु दिशद्भिषक् ॥ १३ ॥ परिपाकाऽनरूपं तद्र जसोद्रेककृन्न च ॥ तद्विकृत्या रिह दर्द भवेदुष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥ जरायुसुखवधेन मृतिभ्रूणस्य योदरे ॥ जनीनमोत तत्प्रोक्त शूल्य तुल्य विघातकृत् ॥ १५ ॥ अचल जडव त्तिष्ठेन्नार्थसा क्षयकारकम् ॥ इब्राजस्य कर्त्तव्यो वानताशर्मणे शनैः ॥ १६ ॥ हिमहस्तपदं तस्याः शीतबाधा भवेद्भृशम् ॥ मन्दाग्निर्बलहानिश्च'नुत्साहः श्वाससभवः ॥ १७ ॥ व्यथा गर्भाशयस्था तु मैथुना तिशयात्तथा ॥ भवेद्रजोविकाराच्च प्रसूतेः प्रागनन्तरम् ॥ १८ ॥ दुष्टोपारोदुखारोस्याऽमभ्रूणं पातयत्यधः ॥ समग्राविग्रहाभावमकालेपि च कल्पयेत् ॥१९॥ द्वहतवा सूतममुख्यं इस्तिस्का भ्रान्तिरेव च ॥ अवलौ द्वौ हवाऽऽभावो भवेद्गर्भसमाकृतिः ॥ २० ॥ प्रदरोऽन्यः समाख्यातोऽसमयेवांक् स्वमासतः ॥ हैज जारशिवद्रक्तपीतवर्णं विमिश्रितम् ॥ २१ ॥ अन्तर्मुखो व्रणो घोरः सतां निरिहमस्मृतः ॥ कर्कीकारः कठोरः स्याच्छोथतः स चिरंतनात् ॥ २२ ॥ अन्येऽप्यत्र विकारास्य तत्केयाखिन्नकोपजेत् ॥ तक्रियत् चापि तवई विधेया विविधाऽगदैः ॥ २३ ॥ " इति । एते श्लोकाः शुद्धा वा अशुद्धा वेति न शक्ता विवेक्तुं वयम् ।

भाषा–जो योनि अतिमैथुनसेभी संतोषको प्राप्त न होवे उसको अत्यानन्दा कहते हैं। जिसमें कफरुधिरकरके कर्णिका ( कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द ) हो उसको कर्णिनी कहते हैं। जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको चरणा कहते हैं अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहलेही द्रवीभूत होकर वीर्यको ग्रहण नहीं करे। जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे ( छुटे ) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं यह कफजनित है॥

स्राव और पातके लक्षण।

**आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः॥**
**ततः स्थिरशरीरः स्यात्पातः पंचमषष्ठयोः॥ ११॥**

भाषा–पांचवें मासपर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और चौथे महीनेसे लेकर पांचवें छठे महीनेपर स्राव और शरीर बननेपर निकले उसे पात कहते हैं॥

गर्भ अकालमें कैसे गिरे इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टांत।

**गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन॥**

भाषा–अभिघात ( चोट ), विषमाशन ( विषमभोजन ), पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पका हुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिर जाता है इसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है॥

प्रसूत होते समय मूढगर्भ कैसे होता है उसके लक्षण।

**मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं**
**शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम्॥ १२॥**

भाषा–मूढ ( कुंठितगति ) वायु गर्भको मूढ ( टेढा ) कर दे और योनि तथा पेट इनमें शूल उत्पन्न करे तथा मूत्रोत्संग धीरे धीरे पीडासहित मूत निकले॥

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति।

**भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम्॥ द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः॥ १३॥ एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः॥ पार्श्वप्रवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं हि परा चतुर्धा॥ १४॥ संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च**

योनिम् ॥ संगी च यो भवति कीलकवत्सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥ १५ ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेन तुल्यः ॥ १६ ॥

भाषा–विगुण वायुसे गर्भ विपरीत ( टेढा ) होकर अनेक प्रकारकरके योनिके द्वारमें आयकर अड जाता है उसकी आठ प्रकारकी संज्ञा है, सो इस प्रकार है । १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्द कर देता है । २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय । ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक देय । ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे । ५ कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे । ६ कोई गर्भ तिरछा होकर योनिके मार्गको रोक दे । ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोक दे । ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग ( पसवाडे भंग ) होनेसे योनिके द्वारको रोक दे । इस प्रकार मूढगर्भके आठ लक्षण हैं । दूसरी चार प्रकारकी गति और होती है उसको कहते हैं । १ संकील, २ प्रतिखुर, ३ परिघ, ४ बीज । इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तकसे योनिको कीलके समान रोक दे उसको संकीलक कहते हैं । जिस गर्भके हाथ पैर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर योनिके भीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं । जो गर्भ दोनों हाथ और मस्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक कहते हैं और परिघ ( आगड ) के समान योनिमें गर्भ अटक जाय उसको परिघ कहते हैं ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण ।

अपविद्धशिरा या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ १७ ॥

भाषा–जिस गर्भिणीका मस्तक नीचेको हो जाय, देह शीतल होय तथा लज्जा जाती रहे और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा ( नस ) उठ खडी होय तो वह गर्भिणी उस गर्भको और गर्भिणीको अन्योऽन्य नाश करते हैं ॥

मृतगर्भके लक्षण ।

गर्भास्यन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपांडुता ॥
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतांतर्मृते शिशौ ॥ १८ ॥

भाषा–गर्भ हले चले नहीं प्रसववेदना ( पीडा ) बंद हो जाय, देह हरी नीली होय, जिसकी श्वासमें दुर्गंध आवे, पेटके भीतर सूजन होय अर्थात् पेटमें आंतोंके फूलनेसे पेट सूज जाय ये गर्भमें बालक मर जाय उसके लक्षण हैं ॥

गर्भमरणहेतु ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १९ ॥

भाषा—माताके मानसिक तथा आगंतुक दुःखसे अथवा रोगोंसे गर्भकी पीडा होय वह बालक गर्भाशयमें मर जाता है ॥

गर्भिणीके लक्षण ।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्लमेव च ॥
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ २० ॥

भाषा—वायुके योगसे योनिका संकोच, गर्भका अटकना और मक्कल्ल शूल ( वातरक्तकी पीडा ) तथा आक्षेपक, खांसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वह गर्भिणी बचे नहीं अथवा योनिसंवरणं नाम रोग ग्रन्थान्तरोंमें लिखा है सो होय ॥

इति॰श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां योनिव्यापत्तिनिदानं समाप्तम् ।

---

# अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

अंगमर्दो ज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता ॥
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

भाषा—अंगोंका टूटना, ज्वर हो, कंप, प्यास, अंगोंका भारी होना, सूजन तथा शूल और अतिसार ये सूतिकारोगके लक्षण होते हैं ॥

प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ॥
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ २ ॥

भाषा—जिस स्त्रीके बालक प्रगट हो चुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे अथवा संक्लेश कहिये दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे अथवा संक्लेश

---

१ वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम् । अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गजः ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः ॥ निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितम् । निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते ॥ विपन्नशूनसर्वांगः सर्वाण्यवयवानि च । उच्छ्वासरुद्धहृदया नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते । अंतकप्रतिमं घोर नास्मेत्तं चिकित्सितम् ॥ ? इति ।

काइये अत्यंत कोपके करनेसे अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिक करनेसे प्रसूत-रोग होता है वह घोर दुःखदायक है ॥

लक्षण ।

**ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ॥ तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥ ३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ॥ ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥**

भाषा–ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगसे उत्पन्न होनेवाले तन्द्रा, अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना इत्यादि विकार, अशक्तता तथा अग्नि मंद होनेसे कृच्छ्रसाध्य होता है । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं । इन सबमें एक रोग प्रधान होता है बाकीके उपद्रवरूप कहलाते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां सूतिकारोगनिदान समाप्तम् ।

# अथ स्तनरोगनिदानम् ।

**सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियः ॥ प्रदूष्य मांसरुधिरे स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥ पंचानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥**

भाषा–वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे । स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगंतुकके भेदसे पांच प्रकारके हैं । इन पांचोंके लक्षण रक्तविद्रधिको त्यागकर बाह्यविद्रधिके समान होते हैं । सो विद्रधिनिदान जो पीछे कह आये हैं उससे जान लेना चाहिये ॥

स्तन्य ( दूध ) रोग ।

**गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ॥
क्षीरं धात्र्या कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ ३ ॥**

भाषा–गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नसे दोष ( वात, पित्त, कफ ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करे उस दुष्ट दूधसे बालकके नानाप्रकारके रोग होते हैं ॥

वातादिकसे दूषित दूधके लक्षण ।

**कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥**
**कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ ४ ॥**
**कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् ॥**
**द्विलिंगं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषजम् ॥ ५ ॥**

भाषा—जो दुग्ध कषैला अथवा पानीके ऊपर तैरनेवाला होय उसको वातदूषित जानना तथा जो कडुआ, खट्टा और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत होवें उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध सघन चिकनासा होवे और पानीमें डालनेसे नीचेको बैठ जाय उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये । दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिलें उसे द्वंद्वज जाने और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलें उसे त्रिदोषदूषित जाने ॥

शुद्ध दूधके लक्षण ।

**अदुष्टं चाम्बुनि क्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् ॥**
**मधुरं चाविवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥**

भाषा—जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा जो दूध कुछ पीला हो और मीठा होकर बेरंगका न हो उसको शुद्ध जानना । अब कहते हैं कि स्त्रियोंके दूध दीखे नहीं परंतु होता है क्योंकि बालक पिया करते हैं इस बातको शुक्रवीर्यका दृष्टान्त देकर कहते हैं ॥

**विशत्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ॥**
**सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ ७ ॥**

भाषा—जैसे सर्व पुरुषोंके देहमें व्याप्तभी है परन्तु देहके काटनेसेभी शुक्र दीखता नहीं है उसी प्रकार सर्व स्त्रियोंके देहाश्रित जो दुग्ध है सोभी नहीं दीखता है परन्तु निःसन्देह है सही ॥

**तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्च प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥ सुप्रसन्नं मनस्त्वेव हर्षणे हेतुरुच्यते ॥ आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ ९ ॥ तदेवाऽपत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते ॥ स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ १० ॥**

१ स्तन्यमुच्यत इति शेषः ।

भाषा–वही शुक्र इष्ट ( प्रिय ) स्त्रीके देखनेसे, उसका स्मरण ( याद ) करनेसे, उसकी वाणी सुननेसे और स्पर्श ( आलिंगन ) से भया जो आनन्द उस आनन्दसे प्राप्त होता है। इस जगह मनका प्रसन्न होना यही आनन्दका कारण है। शुक्रकी उत्पत्ति आहारसे होती है सोई हेतु स्तन्य ( दूध ) का जानना अर्थात् दूधभी जब स्त्री अपने बालकका स्पर्श करे, देखे, उसका स्मरण करे तथा बालकको गोदमें लेनेसे दूध शुक्रके सदृश बढता है। इस जगहभी दूधके उतरनेमें स्नेह ( प्यार ) ही कारण है यह श्लोक संगृहीत है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां स्तनरोगनिदान समाप्तम्।

# अथ बालरोगनिदानम्।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः ॥
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

भाषा–दूध पीनेवाला और अन्न खानेवाला और दूध अन्न दोनों खानेवाला ऐसे तीन प्रकारका बालक होता है। यदि वही अन्न दुष्ट न होय तो बालक नीरोग रहे और वे दोनों दुष्ट होंय तो अनेक रोग प्रगट होते हैं ॥

वातदूषित दूधके रोग।

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ॥
क्षामस्वरः कृशांगः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥

भाषा–जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं। उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मल मूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे ॥

पित्तदूषित दूधके लक्षण।

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ॥
तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ३ ॥

भाषा–जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला हो जाय, कामलारोग होय तथा पित्तके औरभी रोग होंय, प्यासका लगना सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होंय ॥

कफदूषित दूधके लक्षण ।

**कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ॥**
**निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ ४ ॥**

भाषा–जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे तथा कफसे रोग होंय, निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले॥

बालकोंकी अंतर्गत पीडा जाननेके उपाय ।

**शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ॥ स यं स्पृशेद् भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः ॥ ५ ॥ तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥ कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः॥६॥ आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ॥ बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगो त्रासदिगीक्षणैः ॥ स्रोतांस्यंगानि संधींश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥७॥**

भाषा–बालकोंके रुदन ( रोने ) से उसके थोडी वा बहुत पीडा जाननी वह बालक जिस ठिकाने वारंवार हाथ लगावे उस ठिकाने और जिस जगह औरके हाथको न लगाने दे उस ठिकाने उसके पीडा जाननी चाहिये । नेत्रोंके मूंदनस मस्तकपीडा जाने, मलावरोध, वमन, स्तन ( छातीको ) चवाना तथा पेटका गूंजना, पेटका फूलना तथा पेटका उछलना इन लक्षणोंसे बालकके पेटमें पीडा जाननी । मलमूत्रके रुकने तथा डरनेसे और सर्वत्र देखनेसे इन लक्षणोंसे उसकी वस्ति ( मूत्रस्थान ) और गुदामें पीडा जाननी । वैद्य बालकके स्रोत ( नाक, मुख, कान आदि छिद्रों ) को हाथ पैरसे आदि ले अवयवों और संधियोंको वारंवार देखे तो रोगका यथार्थ ज्ञान होय ॥

द्वंद्वज और सन्निपातज दूषित दुग्धके रोग ।

**द्विलिंगं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषजे ॥**

भाषा–पूर्वोक्त जो वातादि दूषित दुग्धके लक्षण कहे हैं उनमें दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज रोग जानना और त्रिदोषके-लक्षण मिलनेसे सन्निपातका रोग जानना । यह श्लोक प्रक्षिप्त है माधवका नहीं है ॥

कुकूणकके लक्षण ।

**कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ॥ जायते तेन नेत्रं च कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥ ८ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासा-विघर्षणम् ॥ शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ९ ॥**

भाषा–कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है । इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र खुजावें और पानी वहे, नेत्रोंमें कीचड आनेसे वह ललाट, नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने देखा न जाय, नेत्र खुलें नहीं इसको लौकिकमें कोथ-स्राव कहते हैं । यह रोग बालकोंकेही होता है सो वाग्भट्टमें लिखा है ॥

पारिगर्भिकके लक्षण ।

**मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तनं प्रायः पिबन्नपि ॥**
**कासाग्निसादवमथुतंद्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १० ॥**
**युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् ॥**
**रोगं परिभवाख्यं च दद्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ११ ॥**

भाषा–बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे उसके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होंय और उसके पेटकी वृद्धि होय इस रोगको वैद्यगण पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं । इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देनी चाहिये ॥

तालुकंटकके लक्षण ।

**तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकंटकम् ॥**
**तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १२ ॥**
**तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् ॥**
**तृडक्षिकंठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १३ ॥**

भाषा–तालुके मांसमें कफ कुपित होकर तालुकंटक रोगको करे । इसके होनेसे तालुके ऊपरका भाग नीचा हो जाय तथा भीतरसे बालकका तालुआ विध जाय इसीसे बालक स्तन ( छाती ) को नहीं दाबे और पीवेभी तो वडे कष्टसे पीवे, पतला मल हो जाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इनमें पीडा होय, नार गिरी पडे और जो दूध पीवे उसे डाल दे ॥

महापद्मविसर्पके लक्षण ।

**विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ॥ १४ ॥**
**पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः ॥**
**शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ॥ १५ ॥**

भाषा–बालकोंके जो मस्तक और बस्ति ( मूत्रस्थान ) में विसर्प होय वह

---

१ “ कुकूणकः शिशोरेव दंतोत्पत्तिनिमित्तजः । ” इति ।

बालककी प्राणनाशक जाननी । जो विसर्प लाल कमलके पत्रके समान लाल होय है यह महापद्मरोग त्रिदोषज है । यह कनपटीमें उत्पन्न होकर हृदयपर्यंत जाय है अथवा हृदयमें होकर गुदापर्यंत जाता है ॥

और विकार जो बालकोंके होते हैं उनको कहते हैं ।

क्षुद्ररोगे च कथिते अजगल्ल्यहिपूतने ॥
ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ॥
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥ १६ ॥

भाषा–क्षुद्ररोगनिदानमें जो अजगल्ली और अहिपूतना कही हैं सो और ज्वरादिक सर्व रोग जो बडे मनुष्योंके होते हैं अर्थात् जिन रोगोंको पूर्व कह आये हैं वे सब रोग बालकोंकी देहमेंभी होते हैं । ऐसा कुशल वैद्योंको जानना चाहिये ॥

सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ॥ १७ ॥ नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत्कूजति जृम्भते ॥ १८ ॥ भ्रुवौ क्षिपति दंतोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ क्षामोऽतिनिशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥ १९ ॥ मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २० ॥

भाषा–कभी क्षणभरमें बालक विह्वल हो जाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जंभाई लेय, भ्रूव ( भौंह ) को तिरछी करे, दांतोंसे होठोंको खाय, वारंवार मुखसे झाग डाले, अत्यन्त क्षीण होय, रात्रमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय, स्वर बैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मांसकीसी वास आवे, जितना पहले खाता होय उतना नहीं खाय ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं । अब कहते हैं कि स्कंदादिक ग्रह पूजाके अर्थ बालकोंको मारते हैं सो चरकमें लिखा है ॥

स्कंदग्रहगृहीत बालकके लक्षण ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यंदनकंपनम् ॥ अर्द्धदृष्ट्या निरीक्षेत

---

१ " धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टोपचाराच्छौचभ्रष्टान्मंगलाचारहीनान् । क्लिष्टांस्त्रस्तांस्तर्जितांस्ताडितांश्च पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥ " इति ।

वक्रास्यो रक्तगंधिकः ॥ २१ ॥ दंतान् खादति विस्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ॥ स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥२२॥

भाषा—बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव ( कहिये पसीना ) बहे एक ओरका अंग फडके, थर थर कापे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा हो जाय रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे व बालक दांतोंको चबावे, अंग शिथिल हो जाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे ये स्कन्द्रग्रह लगे बालकके लक्षण हैं । इस जगह स्कन्दग्रहकरके शिवजीके प्रगट करे जो ग्रह हैं इनमेंसे श्रीशिवपुत्र स्वामिकार्त्तिकका ग्रहण न करना चाहिये ॥

स्कंदापस्मारके लक्षण ।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ॥
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २३ ॥

भाषा—बालक बेसुध होय, मुखसे झाग डाले, जब होस हो तब रोवे, उसकी देहमें रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणोंकरके स्कन्दापस्मारके लक्षण जानने ॥

शकुनिग्रहके लक्षण ।

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः संस्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ॥ स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २४ ॥

भाषा—शकुनीग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान वास आवे, घाव होकर उसमेंसे लस बहे, सर्व अंगोंमें फोडा उत्पन्न होय और पके तथा दाह होय ॥

रेवतीग्रहका लक्षण ।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगंधमसृक् स्रवेत् ॥
भिन्नवर्चा ज्वरो दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २५ ॥

भाषा—रेवतीग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडा होय, उनमेंसे रुधिर बहे, उसमें कीचकीसी वास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय ॥

पूतनाग्रहके लक्षण ।

अतिसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ॥

---

१ तदुक्तं हिरण्याक्षेण—" संस्रावो दाहपाकाद्यैश्चितस्फोटैर्भयान्वितः । सस्रावो विस्रगंधः स्याच्छकुन्या पीडितः शिशुः ॥ " इति ।

**नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नः स्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २६ ॥**

भाषा—पूतनाग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल हो जाय ये लक्षण होते हैं ॥

अंधपूतनाग्रहके लक्षण ।

**छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागंधोऽतिरोदनम् ॥**
**स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अंधपूतनया भवेत् ॥ २७ ॥**

भाषा—अंधपूतनाग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंधि, बहुत रोना, स्तन्य ( छाती ) को मुखसे दावे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं ॥

शीतपूतनाग्रहके लक्षण ।

**वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगंधिता ॥**
**छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २८ ॥**

भाषा—शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होय ॥

मुखमंडिकाग्रहके लक्षण ।

**प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः ॥**
**मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ २९ ॥**

भाषा—मुखमंडिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुंदर होय और देहकी कांति श्रेष्ठ होय, शिराओंमें बंधा देह हो जाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे, यह बालक बहुत भक्षण करे ॥

नैगमेयग्रहके लक्षण ।

**छर्दिस्यन्दनकंठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ॥**
**ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ ३० ॥**

भाषा—वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी बाधा जाननी ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां बालरोगनिदानं समाप्तम् ।

# अथ विषरोगनिदानम् ।

**स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥**
**मूलात्मकं तदाद्यं स्थात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ १ ॥**

भाषा–विष दो प्रकारका है स्थावर और जंगम तथा मूलात्मक स्थावर और सर्पा-दिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष कहाता है ॥

**दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥**

भाषा–आद्य अर्थात् स्थावर विष दश जगह रहता है और जंगम विष सोलह जगह रहता है ॥

**मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च ॥**
**निर्यासा धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥ २ ॥**

भाषा–जड, पात, फल, फूल, छाल, दूध, रस, गोंद, धातु और कंद ये दश स्थावर विष हैं । तहां मूलविष क्लीतक, अश्वमार, गुंज, सुगंध, गर्गर, ककरघाट, विद्युच्छिखा और विजया इस प्रकारसे आठ प्रकारका है । विषपत्रिका, लम्बावर, दारुक, करम्भ, महाकरंभ ये पांच पत्रविष हैं । कुमुद्वती, वेणुका, करम्भ, महाक-रम्भ, कर्कोटक, रेणुक, खद्योतक, चमरी, इभगन्धा, सर्पघाति, नन्दन, सारपाकिनी ये बारह फलविष हैं । पत्र, कदंब, वल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ ये पांच पुष्पविष हैं । अंत्रपाचक, कर्तरीय, सौरीय, ककरघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक ये सात त्वचा-रसके ( गोंद ) के विष हैं । कुमुदघ्नी, स्नुही, जालक्षीरी ये तीन दूधके विष हैं । फेणाश्मभस्म और हरिताल ये धातुविष हैं । कालकूट, वत्सनाभ, सर्षपक, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृंगीविष, प्रपौंडरीक, मूलक, हलाहल, महाविष, कर्कट ये तेरह कंदविष हैं । सब मिलकर स्थावर विष पचपन हैं ॥

विष स्थान ।

**जंगमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडश ॥**
**समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥ ३ ॥**

भाषा–जंगम विषके स्थान सोलह हैं, सो मैंने संक्षेपसे कहे हैं । अब विस्तारसे कहता हूं । दृष्टि, श्वास, दांत, नख, मूत्र, विष्ठा, शुक्र, लार, आर्तव, मुख, संदंश, विशर्द्धित ( पादना ), गुदा, हड्डी, पित्त, शूकशव ये सोलह स्थान हैं ॥

तहां दृष्टि, निश्वास, विष दिव्य है, सो दिव्य सर्पादिकका जानना; भीम विष,

दंष्ट्राविष है । बिलाव, कुत्ता, बन्दर, मगर, मेंडक, मच्छी, जलगोधिका, जंबूक ( शीप ), पंचालक, छिपकरी, मोहारकी मक्खी, पीली मक्खी ततैया इनसे आदि ले ये जानवर दंष्ट्रा और नख विषवाले हैं। चिपिट, पिच्चटक, कषाय, वासिक, सर्षपवासिक, तोटवर्च, कोटकौटिलयक इन जानवरोंके विष्ठा और मूत्रमें विष होता है । इनकी लोकप्रसिद्धि नामसे जानना । मूंसेके शुक्रमें विष होता है । मकरी आदि जो कीट हैं सो लूता कहाते हैं; इनके लार, मूत्र, विष्ठा, मुख, नख, शुक्र, आर्तव इनमें विष होता है । विच्छू, विश्वंभर, ततैया, राजिलमछली, चिटिंग, समुद्रका विच्छू इनकी पूंछमें जो कांटा होता है उसमें विष होता है। चित्रशिर, सरावकुर्दि, शतदारुक आदि मेंदक; शारिकामुख, मुखदंशक इनके मूत्रपुरीषमें विष जानना । मक्खी, कणव, जोक इनके मुख और काटनेमें विष है । विषसे मरे हुएकी हड्डी, सर्पकी हड्डी, विषियल मछली इनकी हड्डीमें विष है । शकुलीनामकी मछली, रक्तराजी और वरकी नामकी मछली इनके पित्तमें विष है। सूक्ष्मतुंड, चेंटी, वहर, कनखजूरा, शूक, भौंरा, तोता इनके तुण्ड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है । कीट और सर्प इनके मरे देहमें विष है । और जिनकी गणना यहां नहीं की उनको मुखसंदंशवालोंमें जानना ये जंगम विष हैं ॥

जंगमविषके सामान्य लक्षण ।

**निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहमपाकं रोमहर्षणम् ॥**
**शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ ४ ॥**

भाषा-निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, अन्नका न पचना, रोमांच, शोथ और अतिसार ये लक्षण जंगमविषके हैं ॥

स्थावरविषके सामान्य लक्षण ।

**स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् ॥**
**फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम् ॥ ५ ॥**

भाषा-स्थावरविषसे ज्वर, हिचकी, दांतोंका घिसना, गलेका घिरना, झागसे मिली रद, अरुचि, श्वास और अत्यंत मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ॥

राजा किंवा कोई दूसरा वडा सेठ साहूकार जिसको समीपके रहनेवाले किसी नोकर चाकरने विष मिलाकर अन्न दिया हो उस विष देनेवालेके ढूंढनेके निमित्त कुछ लक्षण कहता हूं ।

**इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ॥ जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिंगैश्च बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षु-**

मोहमेति च ॥ अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ७ ॥ हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यंगुलीं विलिखेन्महीम् ॥ वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योऽन्यमीक्षते ॥ ८ ॥ विवर्णवक्त्रा क्षामश्च नखैः किंचिच्छिनत्त्यपि ॥ आलभेतासनं दीनः करणे च शिरोरुहम् ॥ वर्त्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ९ ॥

भाषा–मनुष्यके अभिप्राय जाननेवाले वैद्यको बोलने चालने तथा मुखकी चेष्टा इनसे तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणोंसे विषके देनेवाले मनुष्यको बुद्धिमान् जान ले। सो इस प्रकार जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो वह उत्तर न दे और जब बोले तब मोहको प्राप्त हो अर्थात् घबडा जावे। तथा कदाचित् बोलेभी तो निरर्थक और बहुत अस्पष्ट बोले तथा अकस्मात् हँसे, हाथकी उंगली चटकावे, पृथ्वीमें रेखा काढे, भयसे कांपे और डरकर चारों ओर वारंवार सबकी तरफ देखे, मुखकी चेष्टा जाती रहे और काला हो जाय, नखोंसे कुछ तिनका आदि तोडे, गरीबके समान एकही स्थानपर बैठा रहे, माथेपर हाथ फेरे, वारंवार इधर उधर डोलकर बैठ जाय, उसका चित्त ठिकाने न रहे तथा उसका चित्त भागनेको चाहे ये लक्षण विष देनेवालेके जानने और येही लक्षण घोर अपराध करनेवालेके राजा जान लेवे ॥

मूलादिविषोंके लक्षण ।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ जृम्भणं वेपनं श्वासो मोहः पत्रविषेण तु ॥ १० ॥ मुखशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥ भवत्युपविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ॥ ११ ॥ त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥ आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ १२ ॥ फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता ॥ हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥ प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

भाषा–मूलविषसे रोगीके हाथ पैरोंमें पीडा और मोह होवे। पत्रविषसे जंभाई, कंप, श्वास और मोह होवे। फलविषसे मुखपर सूजन, दाह, अन्नमें अरुचि होवे। पुष्पविषसे वमन, अफरा और श्वास होवे। छाल, रस, गोंद इनसे मुखमें दुर्गंधि, अंगमें खरदरापन, मस्तकशूल और मुखके मार्ग कफ गिरे। दुग्धविषसे मुखमें झाग आवे, दस्त होय और जीभ जकड जावे। धातुविषसे हृदयमें पीडा होय,

मूर्च्छा आवे, तालुएमें दाह होय ये सब विष बहुधाकरके कालान्तरमें मारनेवाले होते हैं ॥

विषलिप्त शस्त्रहतके लक्षण।

**सद्यःक्षतं पच्यते तस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ॥**
**कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥१४॥**
**तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं मनुजं तं व्यवस्येत् ॥**
**लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥१५॥**

भाषा–जिस पुरुषकी जखम तत्काल पक जावे तथा उसमें रुधिर बहे और वारंवार पके तथा उस जखममेंसे काला सडा दुर्गंधियुक्त ऐसा मांस निकले तथा जिसमें प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, दाह ये होवें उसके विषमें वुझे वा लिप्त शस्त्रकी जखम लगी जानना चाहिये। शत्रुओंने कपटकरके जिसके व्रणमें विष डाल दिया हो उसके येही लक्षण हैं ॥

स्थावरविषको कहकर जंगममें सर्पविष यह अतितीक्ष्ण है इसीसे प्रथम सर्पोंकी जाति कहते हैं।

**वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ॥**
**यथाक्रमं समाख्याता व्यन्तरा द्वंद्वरूपिणः ॥ १६ ॥**

भाषा–भोगी, मंडली और राजिल ये सर्प अनुक्रमसे वात, पित्त, कफप्रकृति हैं और जो व्यंतर अर्थात् जो दो जातिके सर्प और सर्पिणीसे प्रगट हैं वे व्यंतर कहाते हैं। उनकी प्रकृति द्वंद्वज है अर्थात् जिस जिस प्रकारके सर्प सर्पिणीसे प्रगट उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी होती है। जिनके मस्तकपर चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक ( सतिया ), अंकुश इनका चिह्न हो और जिनका फण करछीके समान चौडा हो और जलदी चलनेवाले हो उनको भोगी अथवा राजिल सर्प कहते हैं और जो अनेक प्रकारके चकत्तोंसे चित्रविचित्र हों तथा मोटे और मंद चलनेवाले तथा अग्नि और सूर्यकासा प्रकाश जिनका उनको मंडली सर्प कहते हैं। और जो चिकने और अनेक प्रकारकी रेखा उनके ऊपर नीचे विद्यमान हों उनको राजिल सर्प कहते हैं। इन सर्पोंकी चार जाती हैं। तिनमें मोती, चांदी, सुवर्णकीसी प्रभा होवे और जो नम्र तथा जिनकी देहमें सुगंध आवे वे ब्राह्मणजातिके सर्प हैं। और जिनका स्वच्छवर्ण, क्रोधी और जिनके मस्तकपर सूर्यचन्द्रके समान तथा छत्र तथा कमलका चिह्न होवे वे क्षत्री जातिके सर्प हैं। काले और हीराके समान तथा लोहेके वर्ण हों और जिनकी धुआं और कबूतरके समान प्रभा हो

वे वैश्यजातिके सर्प हैं। जिनकी देह भैंसा चीतेके समान हो और जिनकी त्वचा कठोर हो तथा अनेक प्रकारका जिनका वर्ण हो वे शूद्रजातिके सर्प हैं। रात्रिके पिछले प्रहरमें राजिलजातिके सर्प विचरते हैं और रात्रिके पहले तीन पहरोंमें मंडली जातिके सर्प विचरते हैं और दिनमें दर्वीकर जातिके सर्प बहुधा विचरते हैं। इनमें दर्वीकर जातिके सर्प तरुण हैं और मंडली जातिके वृद्ध और राजिल जातिके मध्यम अवस्थाके हैं। इतनी जातिके सर्प निर्विष जानने। जो नौलेसे हत हैं और बालक तथा जलसे ताडित हैं और कृश वृद्ध तथा जिनकी कांचली छूट रही हो और डर रहे हों ऐसे सर्प विषरहित होते हैं॥

अब सर्पोंके भेद कहते हैं।

तहां प्रथम दर्वीकर सर्पोंके भेद कहते हैं। कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेत, कपोल, वलाहक, महासर्प, शंखपाल, लोहिताक्ष, गवेधुक, परिसर्प, खंडफण, ककुदपद्म, महापद्म, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुंडरीक, भ्रुकुटीमुख, विष्किर, पुष्पाभिकीर्ण गिरिसर्प, ऋजुसर्प, श्वेतोदर, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष ये दर्वीकर जातिके सर्प हैं। आदर्शमंडल, श्वेतमंडल, रक्तमंडल, चित्रमंडल, पृषत, रोध्रपुष्प, मिलिंदक, गोनस, वृद्धगोसन, पनस, महापनस, वेणुपत्रक, शिशुक, वभ्रु, कषाय, कलुष, पारावत, हस्ताभरण, चित्रक, एणीपद ये मंडलीजातिके सर्प हैं। पुंडरीक, राजिचित्र, अंगुलराजि, बिंदुराजि, कर्दमक, तृणशोषक, संसर्पक, श्वेतहनु, दर्भपुष्प, चक्रक, गोधूमक, किक्कसाद य राजिलजातिके सर्प हैं। गुलगोली, शूकपत्र, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतिरथ, क्षीरक, पुष्पक, अहिपतानक अंधाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय इतने सर्प हीनविष जानने। अब कहते हैं कि द्व्यंतर (वर्णसंकर) सर्पभी तीन प्रकारके हैं। माकुली, पोटगल, स्निग्धराजि। तहां कृष्णसर्पजातिकी सर्पिणी और गोनसजातिके सर्पसे जो सर्प प्रगट हो वह माकुली कहाता है। इसी प्रकार राजिल और गोनसीजातिकी सर्पिणी सर्पसे जो प्रगट सो पोटगलकसर्प कहाता है। इसी प्रकार कृष्णसर्प और राजमति जातिकी सर्पिणीसे प्रगट हुए सर्पको स्निग्धराजी कहते हैं। तहां अकुली सर्पमें पिताकासा विष (जहर) होय है और पोटगल स्निग्धराजी इन दोनोंमें माताकासा विष होता है। इन तीनोंके विपरीततासे दिव्येलक, लोध्रपुष्पक, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेल्लितक इन सात जातिके सर्प प्रगट होते हैं। इनमेंभी प्रथमके तीन सर्पोंमें राजिल सर्पोंकासा विष होता है और शेषोंमें मंडली सर्पोंकासा जानना ऐसे सब मिलकर अस्सी प्रकारके सर्प हैं। इनममी जिनके नेत्र, जीभ, मुख, शिर बडे हा वे पुरुष जानने और छोटे होंय वे स्त्री जाननी और जिनमें दोनों स्त्रीपुरुषके लक्षण मिलते होंय तथा मंद विषवाले क्रोधरहित होंय उनको नपुंसक जानना॥

भोगिप्रभृति सर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण ।

**दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् ॥**
**पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ १७ ॥**
**राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ॥**
**पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ १८ ॥**

भाषा—भोगी अथवा राजिल ( दर्वीकर ) सर्पके काटनेसे काटनेकी ठौर काली हो और सर्व वातके विकार करे इसके सुश्रुतमें बहुत अवगुण लिखे हैं । मंडली सर्पके काटनेकी ठौर पीली सूजनयुक्त और नरम और पित्तके विकार करे और राजिलका दंश चिकना, पीले रंगका वा गाढा तथा उसकी सूजन कठोर होय । उसमें गाढा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफविकार हों ये लक्षण राजिलसर्प काटनेके हैं ॥

विशिष्टदेशमें तथा विशिष्टनक्षत्रमें काटनेके असाध्य लक्षण ।

**अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ॥**
**याम्ये च दृष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दृष्टाः ॥ १९ ॥**

भाषा—पीपलके वृक्षके नीचे, देवताओंके मंदिरमें, मसानमें, बॅमई, संध्याकाल ( प्रातः और सायंकालकी संधि ), चौराहेमें, भरणीनक्षत्रमें, चकारसे आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, कृतिका इन नक्षत्रोंमें और शिरानाडीके मर्ममें सर्पके काटनेसे मनुष्य बचे नहीं ॥

गर्मी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण ।

**दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति ॥**

भाषा—दर्वीकर नागका विष तत्काल प्राणनाश करे और सर्व विष गर्मीके योगसे दुगुना जोर करते हैं ॥

**अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ॥**
**क्षीणक्षत मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ २० ॥**

भाषा—अजीर्ण पित्त और सूर्यकी घाम इनसे पीडित, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण हो गया हो, उरःक्षती, प्रमेहवाला, कोढी, रूखा, निर्बल और गर्भिणी इनको सर्पके काटनेसे तत्काल मृत्यु हो ॥

सर्पके काटेके असाध्य लक्षण ।

**शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति ॥**
**शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ २१ ॥**

भाषा-जिसको विषका अमल चढ गया हो, उसके शस्त्रके घाव करनसे रुधिर निकले नहीं अथवा चाबुक मारनेसे अंगसे उपडे नहीं अथवा शीतल पानी अंगपर डालनेसे रोमांच न हों ऐसे मनुष्यका जहर उतारनेका उद्योग न करे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण।

जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नानावसादश्च सकंठभंगः ॥
रक्तः सकृष्णः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः॥२२॥

भाषा-जिसका मुख टेढा और स्तब्ध हो जाय, केश ( बाल ) स्पर्श करनेसें टूट टूटकर गिर पडें, नाककी हड्डी टेढी हो जाय, नार नीचेको झुकी पडे, ऊंची न होय और काटनेकी जगह सूजन होय तथा वह दंश लाल अथवा काला होय तथा स्थिर होय उस रोगीको त्याग देय ॥

तथा असाध्य लक्षण।

वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥
दंष्ट्राभिघाताश्चतुरस्य यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ॥ २३ ॥
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाप्यथ वा विवर्णम् ॥
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ २४ ॥

भाषा-जिसके मुखसे गाढी लारकी बत्ती गिरे और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकले और जिसके चार दांत लगे होंय उसको त्याग देय। अत्यंत उन्मत्त हो गया हो अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवोंकरके पीडित हो, बोलनेमें असमर्थ हो, जिसके देहका वर्ण काला हो गया हो, नासाभंगादि अरिष्ट-युक्त, जिसका वेग ( लहर ) आवे नहीं ऐसा अथवा विष्ठा मूत्रादि वेगरहित ऐसे विषवाले पुरुषको त्याग देय अर्थात् उसका उपचार चिकित्सा न करे ॥

दूषितविषके लक्षण।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ २५ ॥

भाषा-जो विष पुराना हो गया हो अथवा विषकी नाशक औषधीसे हतवीर्य होनेसे अथवा सरदी, गरमी, अग्नि इनसे सूखी हुई अथवा जो स्वभावसे गुणरहित हैं ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होते हैं ॥

दूषीविषके लक्षण।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबंधि ॥
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधिवैरस्ययुतः पिपासी ॥ २६ ॥

मूर्च्छाभ्रमं गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ २७ ॥

भाषा—वे दूषीविष अल्पवीर्य होनेसे मारक नहीं होते किंतु कफसंबंध होनेसे उष्णादि गुण मंद होकर बहुत वर्षपर्यंत गर ( विष ) रूप होकर रहते हैं । उस विषसे पीडित हुए पुरुषके दस्त होते हैं, उसका वर्ण पलट जाय, उसके मुखसे बुरी दुर्गंधि निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहे, प्यास लगे, मूर्च्छा आवे, भ्रम होय वह बोलते समय अक्षर चबावे, वमन करे, विरुद्ध चेष्टा करे और उसको चैन नहीं पडे ॥

स्थानभेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥
भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहंगः ॥ २८ ॥

भाषा—पूर्वोक्त विष आमाशयमें स्थित होनेसे कफवातजन्य रोग होय और पक्वाशयमें आनेसे वातपित्तजन्य विकार होय तथा उस रोगीके मस्तकके और सब देहके बाल उडकर पंखरहित पक्षी ( परवेरू ) के समान हो जाय ॥

निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथ वांगमर्दः ॥
ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ २९ ॥
मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ॥
दूषीविषं श्वासतृषौ च कुर्याद् ज्वरप्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ३० ॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदाहं तथान्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ॥
गाद्गद्यमन्यं जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ३१ ॥

भाषा—दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग शिथिल, रोमांच, अंगोंका टूटना ये प्रथम होकर तदनंतर भोजनके उपरान्त हर्ष होना, अन्न पचे नहीं, अरुचि, देहमें चकत्ते तथा गांठ उठे, मांसक्षय, हाथ पैरोंमें सूजन, मूर्च्छा, वमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग ये विकार होय तथा अनेक प्रकारके रोग होंय सो इस प्रकार किसीसे उन्माद रोग होय और किसीसे दाह होय, कोई नपुंसकत्व करे और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे और विसर्प विस्फोटक आदि अनेक प्रकारके रोग होय ॥

दूषीविषकी निरुक्तिके लक्षण ।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ॥
यस्मात्संदूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३२ ॥

भाषा–देश, काल, अन्न और दिवा निद्रा इनसे वारंवार दूषित हुए विष धातुओंको दुष्ट करे, इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष दो प्रकारका है. एक कृत्रिम और दूसरा गरसंज्ञक । जो विष पदार्थोंसे बनाया जाय वह कृत्रिम और निर्विष द्रव्योंके संयोगसे होय उसको गर कहते हैं । सो वृद्धकाश्यपने और चरकमें लिखाभी है ॥

इन दोनों विषोंका लक्षण ।

**सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजो नानांगजान्मलान् ॥ शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छंत्यन्नमिश्रितान् ॥ ३३ ॥ तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते ॥ मर्मप्रघमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ ३४ ॥ जाठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः ॥ एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिंगानि निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥**

भाषा–घरका अधिकार स्वाधीन करनेको, दुष्ट जनोंके कहनेसे, पतिको वशीकरण करनेके निमित्त स्त्री अपने पतिको पसीना, आर्तव ( रजोदर्शनका रुधिर ) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंका मैल, अन्नमे मिलाकर खिलाती हैं अथवा शत्रुकृत गर विषका प्रयोग अर्थात् वैरी विष अथवा गरको अन्न तथा जलमें मिलाकर खवाय देय इससे मनुष्य पीला और कृश होय । उसकी अग्नि मंद होय, सब मर्मोंमें पीडा पेट फूल जाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षय, ज्वर इन रोगोंके तथा इसी प्रकारके रोगोंके लक्षण होते हैं ॥

दूषीविषके असाध्यादि लक्षण ।

**साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोषितम् ॥**
**दूषीविषमसाध्यं तु क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ३६ ॥**

भाषा–दूषीविष पेटमें जानेसे तत्काल उपाय करनेसे और रोगी पथ्यमें रहनेसे साध्य है और वर्षदिन व्यतीत हो जाय तो याप्य जानना और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवालेके असाध्य होय ॥

लूताविषकी उत्पत्तिके लक्षण ।

**यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिंदवः ॥**
**तस्माल्लूताः प्रभाष्यन्ते संख्यया तास्तु षोडश ॥ ३७ ॥**

भाषा–विश्वामित्र राजा वसिष्ठकी कामधेनु जबरदस्ती लेकर चला उस समय

---

१ वृद्धकाश्यपः–" संयोगजं तु द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते । गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं मतः ॥ " चरकः–" दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । " इति ।

वसिष्ठजीको क्रोध आया, उससे ललाटमें पसीनेका बिंदु निकला सो समीप जो कटे तृण गौके चरनेके अर्थ पडे थे उनपर वे बिंदु पडे, इसीसे लूता ( मकडी ) प्रगट हुई, इन मकडियोंकी सोलह जाति हैं। इन सोलहोंकेभी दो भेद हैं एक कृच्छ्रसाध्य दूसरी असाध्य ॥

उनके काटनेके सामान्य लक्षण ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथप्रवृत्तिः क्षतजस्य च ॥ ज्वरो दाहोऽतिसार-श्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ३८ ॥ पिडिका विविधाकारा मण्ड-लानि महान्ति च ॥ शोथा महान्तो मृदवो रक्तश्यावाश्चलास्त-था ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ ३९ ॥

भाषा-उन मकडियोंके काटनेसे वह स्थान सडे और उसमेंसे रुधिर वहे, ज्वर, दाह, अतिसार और त्रिदोषज तथा अनेक प्रकारके फोडा वडे वडे चकत्ते, नरम, लाल, काली नीली और चंचल ऐसी सूजन होय इत्यादि लक्षण होते हैं। इस प्रकार सर्व लूताओंके सामान्य लक्षण जानने ॥

दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण ।

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् ॥ ४० ॥
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदकोथज्वरान्वितम् ॥
दूषी विषाभिलूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ४१ ॥

भाषा-जिस दंशका मध्यभाग काला अथवा पीला अथवा हरा जालके सदृश ऊंचा होकर शीघ्र पके तथा उसमेंसे दुर्गंधियुक्त लस वहे, उसमें ज्वर होय उसको दूषीविष अथवा लूताका काटा हुआ जानना ॥

प्राणहर लूताके लक्षण ।

सर्पाणामेव विण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः ॥
दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो मताः ॥ ४२ ॥
शोथाः श्वेताऽसिता रक्ताः पीताः सपिटिका ज्वराः ॥
प्राणान्तिका भिजायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ४३ ॥

भाषा-सर्पोंके मलमूत्रसे अथवा मरे हुए सर्पके सड जानेसे जो दूषीविषके कीडा उत्पन्न होंय वे प्राण हरनेवाले होते हैं। उनका काटा हुआ स्थान सूज जावे तथा वह सफेद काला लाल पीला होय और फुंसी हो जाय और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय, हिचकी आवे, मस्तकमें शूल होय ॥

दूषीविषाखुलक्षण।

**आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ॥**
**लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ४४ ॥**

भाषा–विषैले आखु ( मूसे ) के काटनेसे पीला रुधिर निकले, देहमें गोल चकत्ते, उठें, ज्वर होय, अरुचि होय, रोमांच और दाह होय ये मूसेके काटनेके विषपीडित मनुष्यके लक्षण हैं ॥

प्राणहरमूषकविषलक्षण।

**मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुति ज्वरः ॥**
**शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकैः ॥ ४५ ॥**

भाषा–जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, मूसेके आकार सूजन, देहमें विवर्णता, क्लेद, मंद सुनाई दे, ज्वर, मस्तक भारी, लार और रुधिर इनकी रद होय ये लक्षण प्राणहर्ता मूसेके असाध्य हैं ॥

कृकलास ( नौले ) के काटेके लक्षण।

**कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च ॥**
**व्यामोहो वर्चसो भेदो दृष्टे स्यात्कृकलासकैः ॥ ४६ ॥**

भाषा–नौलेके काटनेसे देहका वर्ण काला अथवा नीला हरा तथा अनेक प्रकारका होय तथा उस रोगीके भ्रांति और अतिसार होय ॥

वृश्चिकविषलक्षण।

**दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु वै ॥**
**वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥ ४७ ॥**

भाषा–विच्छूके काटनेसे उस स्थानमें प्रथम आगसी जले, पीछे ऊपरको चढे, पीछे उस काटनेकी जगह फटनेकीसी पीडा होय ॥

अब कहते हैं कि विच्छू मन्दविष, मध्यविष, महाविषके भेदसे तीन प्रकारका है। तिनमें जो गौके गोबरसे प्रगट होय वह मंदविष है और काठ ईंट इनसे प्रकट होय वह मध्यविष है और जो सर्पकी सडी देहसे प्रगट होय वह अथवा अन्य विषवाली वस्तुओंसे प्रगट होय वह विच्छू महाविषवाला होता है। मंदविषवाले विच्छू बारह प्रकारके हैं, मध्यविषवाले तीन प्रकारके हैं, महाविषवाले पंद्रह प्रकारके हैं। ऐसे सब मिलकर तीस प्रकारके विच्छू हैं। कोई आचार्य २७ प्रकारके कहता है। कृष्ण, श्याव, कर्बुर ( विचित्रवर्ण ), पीत, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, श्वेत, लाल, रोमश, शाद्वलाभ, रक्त ये बारह मंदवीर्य हैं। इनके काटनेसे पीडा

कंप, देहका स्तंभ, काले रुधिरका निकलना इत्यादि रोग होते हैं । रक्तोदर, पित्तोदर, कपिलोदर ये तीन मध्यविषवाले विच्छू हैं । इनके काटनेसे जीभमें सूजन, भोजनका न होना, घोर मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं । श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीत, रक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक, रक्तबभ्रु, एकपर्वा, उपर्वा ये घोर विषवाले १५ विच्छू हैं । इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होय, फोडोंकी उत्पत्ति होय, भ्रांति, दाह, ज्वर, नाक, कान आदि छिद्रोंसे काला रुधिर निकले, इसीसे शीघ्र प्राणत्याग होवे ॥

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण ।

**दृष्टो साध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ॥**
**मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ४८ ॥**

भाषा-हृदय, नाक, जीभ इनमें विच्छूके काटनेसे मांस गलकर अत्यन्त वेदना होकर मनुष्य मरे ॥

कणभदष्टके लक्षण ।

**विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा ॥**
**लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते ॥ ४९ ॥**

भाषा-कणभ एक जातिका कीडा होता है उसके काटनेसे विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर, वमन ये लक्षण होते हैं और वह काटनेका स्थान गल जाय । अब कहते हैं कि त्रिकंटक, कुणी, हस्तीकक्ष, उपराजित ये कणभ कीडाके चार भेद हैं । इनके काटनेसे पूर्वोक्त रोग होंय और अंगोंका टूटना, देहमें भारीपन और काटनेकी ठौर काली हो जाय ये लक्षण विशेष होंय ॥

उच्चिटिंगर ( झींगर ) विषके लक्षण ।

**हृष्टरोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् ॥**
**दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यंगानि मन्यते ॥ ५० ॥**

भाषा-उच्चिटिंगनामक विच्छूके काटनेसे देहमें रोमांच होय, लिंग जकड जाय, घोर पीडा होय और सब देहपर शीतल जल मानो डाल दिया है । उच्चिटिंगको सुश्रुतवाला झींगर कहता है और कोई उष्ट्रधूम कहते हैं । परन्तु आतंकदर्पण टीकाकारने विच्छूका भेद माना है ॥

मंडूक ( मेंडक ) विषके लक्षण ।

**एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ॥**
**छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ५१ ॥**

भाषा-विषैल मेंडकके काटनेसे उसका एक दांत लगे उस ठिकाने पीली सूजन होय, दूखे, प्यास, वमन और निद्रा ये लक्षण होय । अब कहते हैं कि कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भ्रुकुटी, कोटिक इन भेदोंसे मेंडक आठ प्रकारका है । इनके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होय और खुजली, मुखमें पीली झाग आना, इन आठमेंभी भ्रुकुटी और कोटिक इन दोनों मेंडकोंके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होय और दाह, मूर्च्छा अत्यन्त होय ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

विषैल मत्स्य ( मछली ) के विषके लक्षण ।

**मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥**

भाषा-विषैल मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और शूल ये होय, विषैल मछलीके सताईस भेद हैं । उनके नाम नहीं लिखे इसलिये कि मिले नहीं ॥

सविष जलौका ( जोंक ) के लक्षण ।

**कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ५२ ॥**

भाषा-विषैल जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं । विषैल जोंक काली, विचित्रवर्णकी, अलगर्दा, इंद्रायुध, सामुद्रिका, गोवन्दना इन भेदोंसे छः प्रकारकी है ॥

इनमेंभी अंजनचूर्णवर्णा और पृथुशिराके भेदसे काली जोंक दो प्रकारकी है । वर्म्मि मछलीके समान लंबी, छिन्नोन्नत, कुक्षिके भेदसे विचित्रवर्णकी जोंक दो प्रकारकी है । रोमशा, महापार्श्वा, कृष्णमुखी इन भेदोंसें अलगर्दा जोंक तीन प्रकारकी है । इन्द्रधनुषके समान ऊपरसे विचित्र होय वह इन्द्रायुध जोंक है । कुछ सफेद और पीली तथा विचित्रपुष्पके समान चित्रित ये दो भेद सामुद्रिका जोंकके हैं और बैलके अंडकोशके समान नीचेसे दो भाग होवें उसको गोचन्दना कहते हैं ॥

गृहगोधिका ( छिपकली ) के विषके लक्षण ।

**विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥**

भाषा-छिपकलीके विषसे दाह होय, सूजन, नोचनेकीसी पीडा और पसीना आवे । कोई गृहगोधिकाको भाषामें विषखपरा कहतेहैं ॥

शतपदी ( कानखजूरा ) के विषके लक्षण ।

**दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ५३ ॥**

भाषा-कानखजूराके काटनेसे काटनेके स्थानमें पसीना आवे, शूल होय और दाह होय । अब जानना चाहिये कि परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपीलिका, पिच्चिका रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा ये शतपदीके आठ भेद हैं । इनमेंसे छः तो पूर्वोक्त लक्षण

करती हैं और श्वेता तथा अग्निप्रभा ये दो जातिकी शतपदीके काटनेसे दाह और मूर्च्छा अधिक होय यह विशेष लक्षण जानना ॥

मशक ( मच्छर वा डांस ) के विषके लक्षण ।

**कण्डूमान्मशकैरीषच्छ्वथः स्यान्मन्दवेदनः ॥**

भाषा-मच्छर अथवा डांसके काटनेसे जो किंचित् सूजन होय उसमें खुजली चले तथा थोडी पीडा होय, सामुद्र, पारिमंडल, हस्तिमस्तक, कृष्ण, पार्वतीय ये पांच भेद मच्छरोंके हैं ॥

असाध्य मशकक्षतके लक्षण ।

**असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ ५४ ॥**

भाषा-पर्वतके ऊपर रहनेवाले मच्छर अथवा डांसके काटनेसे क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है। असाध्य कीटके विषके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं सो जान लेना ॥

सविषमाक्षिका ( मक्खी ) के दंशके लक्षण ।

**सद्यःप्रस्राविणी स्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ॥**
**पिडिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थविकाऽसुहृत् ॥ ५५ ॥**

भाषा-विषैल मक्खीके काटनेके ठिकाने काली फुंसी प्रगट होय वह तत्क्षण वहने लगे, उस ठिकाने दाह होय और मूर्च्छा, ज्वर होय, इनमें स्थविका नाम मक्खी प्राणहर्त्ता जाननी। मक्खीके छः भेद हैं जैसे कान्तारिका, कृष्णा, पिंगालिका, मधूलिका, काषायी और स्थविका इनमें काषायी और स्थविका दो असाध्य हैं ॥

चतुष्पदादिकोंके विषके साधारण लक्षण ।

**चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तविषं च यत् ॥**
**शूयते पच्यते चापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ५६ ॥**

भाषा-व्याघ्र आदि चतुष्पाद और वनमनुष्यादि वानरादि द्विपाद इनके नख दांतोंका विष सूज आवे, पक जावे, वहे तथा इनके योगसे ज्वर आवे। अब कहते हैं कि श्रीमाधवाचार्यने विश्वंभरा, अहिंडूका, कंडूमका, शुकवृन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका और सर्षपिका इनके विषका निदान नहीं लिखा परंतु इनका निदान सुश्रुतमें कहा है सो ग्रंथकी समाप्तिमें लिखेंगे ॥

विष उतर गया हो उसके लक्षण ।

**प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं सममूत्रविट्कम् ॥**
**प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ५७ ॥**

भाषा—जिस पुरुषके वातादि दोष निर्मल होंय, रस रक्तादि धातु नीरोग अवस्थामें जैसे होते हैं वैसेही होंय, अन्न खानेकी इच्छा होय, मलमूत्र जैसे होते हैं वैसे होंय, शरीरका वर्ण, इन्द्रिय, मन और व्यापार ( देहकी चेष्टा ) ये जिसके शुद्ध होंय उसका विष उतर गया वैद्य जाने ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विषरोगनिदान समाप्तम् ।

माधवनिदानं समाप्तम् ।

# अथ ग्रंथपरिशिष्टम् ।

विदित हो कि माधवाचार्य्य भिषक्शिरोमणिजीने बहुतसे रोगोंके निदान स्वग्रंथमें नहीं लिखे परन्तु उन रोगोंके निदानोंसे बहुधा वैद्योंको काम पडता है इसी कारण उन निदानोंको अन्य ग्रंथोंसे संग्रह करके इस जगह लिखते हैं । प्रथम क्लीब ( नपुंसक ) का निदान चरकसे लिखते हैं ।

**रेतोदोषोद्भवं क्लैब्यं यस्माच्छुद्धचैव सिद्ध्यति ॥ अतो वक्ष्यामि ते सम्यगग्निवेश यथातथम् ॥ १ ॥ बीजध्वजोपघाताभ्यां जरया शुक्रसंक्षयात् ॥ क्लैब्यसम्भवस्तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ २ ॥**

भाषा—क्लैब्य ( नपुंसक ) होना केवल वीर्यके दोषसे होता है । वीर्य शुद्ध होनेसेही इसकी शुद्धि है इसी कारण हे अग्निवेश ! मैं तेरे आगे क्लीबका लक्षण कहता हूं । नपुंसक चार प्रकारका होता है उनको कहते हैं । १ बीजके उपघातसे, २ ध्वजोपघातसे, ३ बुढापेसे और ४ शुक्र ( वीर्य ) के क्षय होनेसे जो नपुंसकता प्राप्त होती है उसके सामान्य लक्षणको तू सुन ॥

क्लैब्यके सामान्य लक्षण ।

**संकल्पप्रवणो नित्यं प्रियावश्यमथापि वा ॥**
**न याति लिंगशैथिल्यात्कदाचिद्याति वा पुमान् ॥ ३ ॥**
**श्वासार्तस्विन्नगात्रांश्च मोघसंकल्पचेष्टितः ॥**
**म्लानशिश्नश्च निर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् ॥ ४ ॥**

भाषा—आपको प्रिय और वशीभूत स्त्रीकोभी प्राप्त होकर जो पुरुष नित्य विषय

न करे और कदाचित् करे तो जब कभी करे, वह पुरुष श्वासके व्याकुल हो, देहमें पसीना होय, निष्फल मनोरथ और चेष्टा ( विषयादि ) होय, लिंग जिसका ढीला और बीजरहित होय ये नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं ॥

बीजोपघात क्लीबके लक्षण।

**सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते ॥ शीतरूक्षाम्लसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात् ॥ ५ ॥ शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणां चात्यर्थसेवनात् ॥ अभिचारादविस्रम्भाद्रसादीनां च संक्षयात् ॥ ६ ॥ वातादीनामोजसश्च तथैवानशनाच्छ्रमात् ॥ नारीणामनभिज्ञत्वात्पंचकर्मापचारतः ॥७॥ बीजोपघातो भवति पाण्डुवर्णः सुदुर्बलः ॥ अल्पप्रजोऽपहर्षश्च प्रमदासु भवेन्नरः ॥ ८ ॥ हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः ॥ बीजोपघातं क्लैब्यं-**

भाषा–प्रथम जो कहे वे नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं उनको विस्तारसे कहता हूं। शीतल, रूक्ष, थोडा मिला हुआ, तथा विरुद्ध ( क्षीरमत्स्यादि ) कच्चा अन्न इत्यादि पदार्थोंके भोजन करनेसे, आदिशब्दसे खट्टा, चरपरा, कषैला पदार्थ खानेसे, शोक ( सोच ) चिंता, भय और त्रास तथा अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे, किसी शत्रुका अभिचार ( जादूटोना ) से तथा किसीका विश्वास न करनेसे, रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंके बढनेसे, इसी प्रकार उपवास ( व्रतादि ) और श्रम करनेसे स्त्रीसुखके न जाननेसे, पंचकर्म ( वमन विरेचनादि ) के अपचारसे बीजोपघात अर्थात् बीजमें किसी प्रकारका विकार होता है। इसके होनेसे बीजका वर्ण पीला होता है तथा देह दुर्बल हो जाय, उस पुरुषके संतान थोडी हो तथा स्त्रीगमनमें इच्छा न होना, हृदयवेग और पांडुरोग होय, तमक श्वास, कामला अनायास श्रम इनसे पीडित होय ये लक्षण बीजोपघात क्लीबके हैं ॥

ध्वजभंगक्लीबकी उत्पत्ति।

**ध्वजभंगकृतं शृणु ॥ ९ ॥ अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात् ॥ अत्यम्बुपानाद्विषमापिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १० ॥ दधिक्षीरानूपमांससेवनादतिकर्षणात् ॥ कन्यानां चैव गमनादयोनिगमनादपि ॥ ११ ॥ दीर्घरोम्णीं चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम् ॥ दुर्गंधां दुष्टयोनिं च तथैव च परिस्रुताम् ॥ १२ ॥ नरस्य प्रमदां मोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः ॥ चतुष्पदाभिगमना-**

च्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १३ ॥ अधावनाद्वा मेढ्रस्य शस्त्रदंत-नखक्षतात् ॥ काष्ठप्रहारनिश्शेषशूकानां चातिसेवनात् ॥ रेतसश्च प्रतीघाताद् ध्वजभंगः प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

भाषा—अत्यंत खट्टा, नोनका, खारा, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि), अपक्व अन्न भोजन करनेसे तथा बहुत जल पीनेसे, विषमान्न और भारी ऐसे पदार्थके खानेसें, दही, दूध, जलसमीप रहनेवाले पक्षीका मांस खानेसे, व्याधिकरके कृश होनेसे, कन्याके साथ गमन करनेसे, जिसके योनि नहीं ऐसी स्त्रीके साथ गमन करनेसे, अथवा अयोनि कहिये गुदाभंजन करनेसे तथा जिसकी योनिपर बडे बाल हों और जिस स्त्रीने बहुत दिनोंसे मैथुन करना छोड दिया हो तथा रजस्वला और जिसकी योनिमें दुर्गंधि आती हो तथा दुष्टयोनि और जिसकी सोमादि रोगोंसे योनि चुचाती हो ऐसी स्त्रियोंसे मैथुन करनेसे तथा उन्मत्त होकर गमन करनेसे और अति हर्षसे गमन करनेसे तथा चतुष्पाद (बकरी कुतिया आदि) से गमन करनेसे तथा लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे तथा लिंगके न धोनेसे तथा शस्त्र दांत नख इनकरके घाव होनेसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, लिंगके पीस जानेसे तथा लिंगके मोटे करनेके निमित्त शूकादि प्रयोग करनेसे अर्थात् इनका अत्यंत सेवन करनेसे तथा वीर्यके बिगडनेसे मनुष्यके ध्वजभंग (अर्थात् लिंग खडा होकर तुरंत मुरझा जाय) यह रोग होता है इसके लक्षण आगे कहते हैं ॥

ध्वजभंगके लक्षण ।

श्वयथुर्वेदना मेढ्रे रोगश्चैवोपलक्ष्यते ॥ १५ ॥ स्फोटाश्च ताम्रा जायन्ते लिंगपाको भवत्यपि ॥ मांसवृद्धिर्भवेच्चापि व्रणाः क्षिप्रं भवंत्यपि ॥१६॥ पुलाकोदकसंकाशः स्रावः श्यावारुणप्रभः॥ वलयीकुरुते चापि कठिनं च परिग्रहम् ॥ १७ ॥ ज्वरस्तृष्णा भ्रमो मूर्च्छा च्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ रक्तं कृष्णं स्रवेच्चापि नीलमाविललोहितम् ॥ १८ ॥ अग्निनेव च दग्धस्य तीव्रो दाहः सवेदनः ॥ बस्तौ वृषणयोर्वाऽपि सीवन्यां वंक्षणेषु च ॥ १९॥ कदाचित्पिच्छिलो वापि पाण्डुस्रावश्च जायते ॥ श्वयथुश्च भवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः ॥ २० ॥ चिरात्स पाकं व्रजति शीघ्रं वाथ प्रपद्यते ॥ जायन्ते कृमयश्चापि क्लिद्यते पूतिगंधि

च ॥ २१ ॥ प्रशीर्यंते मणिश्चास्य मेढ्रं मुष्कावथापि च ॥ ध्वजभंगकृतं क्लैब्यमित्येतत्समुदाहृतम् ॥ एवं पंचविधं केचिद् ध्वजभंगं वदंत्यपि ॥ २२ ॥

भाषा-ध्वजभंगवाले मनुष्यके लिंगपर सूजन हो और लिंगमें पीडा हो तथा लाल हो, उसके ऊपर घोर फोडा होते हैं तथा लिंग पक जावे और मांसकी वृद्धि होय तथा लिंगमें फोडा होय, उसमें चांवलके मांडके समान और काला लाल स्राव होय, कंकणके समान गोल लपेटा होय और उसकी जड कठिन होय तथा उस पुरुषके ज्वर, प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, वमन ये रोग हों तथा लिंगमेंसे काला, नीला, लोहित और दुष्ट रुधिर निकले, उसका लिंग अग्निसे दग्धके समान हो जाय, मूत्राशय अंडकोश ऊरुकी संधियोंमें घोर दाह और पीडा होय, कभी कभी गाढा और पीला स्राव होय और सूजन मंद और गीली होय। तथा थोडा स्राव होय और देरमें पके अथवा शीघ्रही पक जावे, उसके लिंगमें कीडा पड जांय, क्लेदयुक्त और दुर्गंध आवे, लिंगके ऊपरकी सुपारी गल जाय तथा लिंग और अंडकोश दोनों गलकर गिर जांय यह ध्वजभंगकृत नपुंसकके लक्षण कहे हैं। कोई सुश्रुतादिक आचार्य इस ध्वजभंग नपुंसकके ईर्ष्यक सौगंधिक कुंभिक आसेक्य और महाषंड इन भेदोंसे पांच प्रकार वतलाते हैं। उनकोभी प्रसंगवशसे इस जगह सुश्रुतसे लिखते हैं ॥

### आसेक्य नपुंसकके लक्षण।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ १ ॥

भाषा-मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह पुरुष आसेक्यनाम नपुंसक होता है। वह पुरुष अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खा जाय तव उसको चैतन्यता ( अर्थात् लिंग सतर ) हो तव स्त्रीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम मुखयोनि है ॥

### सौगंधिक नपुंसकके लक्षण।

यः पूतियोनौ जायेत स सौगंधिकसंज्ञितः ॥
स योनिशेफसोर्गंधमाघ्राय लभते बलम् ॥ २ ॥

भाषा-जो पुरुष दुष्टयोनिसे उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सौगंधिक कहते हैं। इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम नासायोनि है ॥

कुम्भिक नपुंसकके लक्षण ।

**स्वगुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ॥ कुम्भिकः स तु विज्ञेयः**

भाषा–जो पुरुष पहले अपनी गुदा भञ्जन करावे तब उसको चैतन्यता प्राप्त होय तब स्त्रीके विषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं। कोई आचार्य इसका और प्रकारसे अर्थ करते हैं अर्थात् जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं वे प्रथम स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदाभञ्जन करें, इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त होती है तब मैथुन करे, उसका नाम कुम्भिक कहते हैं और गुदायोनि यह इसका पर्यायवाचक नाम है। इसकी उत्पत्ति काश्यपने इस प्रकार लिखी है कि ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवाले पुरुषके संभोग करनेसे उन स्त्रियोंका कामदेव शान्त न हो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुंभिकनाम नपुंसक होता है ॥

ईर्ष्यक नपुंसकके लक्षण ।

**ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ॥ ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥ ४ ॥**

भाषा–जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं। इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है। कोई "दृग्योनिरयमीर्ष्यकः" इस जगह "षण्ढकं शृणु पञ्चमम्" ऐसा पाठ कहते हैं अर्थात् षण्ढके जो पञ्चम नपुंसक है उसके लक्षण सुन ॥

महाषण्डनपुंसकके लक्षण ।

**यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते ॥**
**ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञितः ॥ ५ ॥**

भाषा–जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् आप नीचेसे सीधा हो ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय, स्त्रीकी चेष्टा ( आप स्त्रीके समान नीचे होकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावे ) ॥

नारीषण्डनपुंसकके लक्षण ।

**ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तेतांगना यदि ॥**
**तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥**

भाषा–ऋतुसमय यदि स्त्री पुरुषके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् पुरुषको नीचे सुलाय

उसके ऊपर चढ पुरुषके समान मैथुन करे उस मैथुनसे जो कन्या प्रगट हो वह पुरुषकेसे आकारवान् होय और पुरुषकी चेष्टा करे ( अर्थात् स्वयं स्त्रीरूपभी होकर दूसरी स्त्रीके ऊपर पुरुषके समान उसकी योनिसे अपनी योनि घर्षण करे ) ये षण्ढ-नपुंसकके दोनों भेद हैं। इससे पांच प्रकारकेही ध्वजभंगनपुंसक जानने। परन्तु चरकके मतसे नपुंसक स्त्रीपुरुषके भेदसे दो प्रकारका है और जितने पुरुषके नपुंसक भेद हैं उतनेही स्त्रीके जानने ॥

उक्तश्लोकोंका संग्रह ।

**आसेक्यश्च सुगंधी च कुम्भिकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥**
**सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्ढसंज्ञितः ॥ ७ ॥**

भाषा—आसेक्य, सुगंधी, कुम्भिक और ईर्ष्यक ये चारों प्रकारके नपुंसक शुक्र-वीर्यसहित जानने और षण्ढसंज्ञक नपुंसकके वीर्य नहीं होता है। वह वीर्यरहित जानना। कोई शंका करे कि जब वीर्यसहित है तब आप उसको नपुंसक कैसे कहते हो इस वास्ते कहते हैं ॥

**अनया विप्रकृत्या तु तेषां शुक्रवहाः शिराः ॥**
**हर्षात्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततो भवेत् ॥ ८ ॥**

भाषा—इनकी विरुद्ध चेष्टाके करनेसे उनकी शुक्रके वहनेवाली जो नाडी हैं सो हर्ष ( आनंद ) से फूलती हैं, इससे उनको चैतन्यता ( लिंग सतर होना ) होती है, वीर्यके अभावसे नहीं होती, ये ध्वजभंगनपुंसकके पांच भेद हैं। अब जरासंभव नपुंसकके लक्षण कहते हैं ॥

जरासम्भव नपुंसकके लक्षण ।

**क्लैब्यं जरासम्भवं हि प्रवक्ष्याम्यथ तच्छृणु ॥ जघन्यमध्यप्रवरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥ २३ ॥ अथ च प्रवरे शुक्रं प्रायशः क्षीयते नृणाम् ॥ रसादीनां संक्षयाच्च तथैवावृष्यसेवनात् ॥ २४ ॥ बलवर्णेन्द्रियाणां च क्रमेणैव परिक्षयात् ॥ परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ जरासम्भवजं क्लैब्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् ॥ २५ ॥**

भाषा—अब मैं जरा ( बुढापे ) में नपुंसक होनेके लक्षण कहता हूं उनको सुन। अवस्था तीन हैं, जघन्य अर्थात् छोटी और मध्यम तथा प्रवर ( बडी )। इन तीनोंमें प्रवर अर्थात् वृद्ध अवस्थामें बहुधा करके शुक्र ( वीर्य ) क्षीण होता है।

उसका हेतु यह है। रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे तथा वृष्य ( वीर्यकर्त्ता ) औषधिके न खानेसे, बल वर्ण इन्द्रिय इनके क्रमसे क्षीण होनेसे, आयु ( अवस्था ) के घटनेसे, भूखा रहनेसे, श्रम ( मेहनत ) के करनेसे इन कारणोंसे जरासम्भव नपुंसक होता है॥

जरासम्भव नपुंसकके लक्षण।

जायते तेन सोऽत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ २६ ॥
विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्नुते ॥
एतज्जरासम्भवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ २७ ॥

भाषा—पूर्वोक्त जरासम्भव क्लीबके होनेसे मनुष्य धातुक्षीण, दुर्बल देहका, हीनवर्ण, विह्वल, दीन ऐसा हो जाय और वह शीघ्रही व्याधि ( रोग) को प्राप्त होय यह जरासम्भवके लक्षण कहे। अब चतुर्थ क्षयज क्लीबके लक्षण सुनो॥

क्षयज क्लीबके लक्षण।

अतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात् क्रोधाद्भयादपि ॥ ईर्ष्योत्कण्ठात्तथोद्वेगात् समाविंशतिको नरः ॥ २८ ॥ कृशो वा सेवते रूक्षमन्नपानमथौषधम् ॥ दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि ॥ २९ ॥ अथाल्पभोजनाच्चापि हृदये यो व्यवस्थितः ॥ रसः प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशु नरस्ततः ॥ ३० ॥

भाषा—अत्यंत चिन्ता, अतिशोक, अतिक्रोध, अतिभय, ईर्ष्या, उत्कंठा, उद्वेग और जो पुरुष वीस बरसका होय तथा जो पुरुष कृश होकर अन्नपानकी वस्तु तथा रूखी औषधियोका सेवन करे और दुर्बल प्रकृति होकर निराहरा रहे अथवा थोडा भोजन करे वहभी हृदयमेंही स्थित रहे इन कारणोंसे रस है प्रधान जिनमें ऐसी जो धातु सो क्षीण होय, इसी कारणसे वह मनुष्य क्षीण होता जाय॥

रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तस्य देहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्यो हि शुक्रं धाम परं मतम् ॥ ३१ ॥ चेतसो वातिहर्षेण व्यवायं सेवते तु यः ॥ शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति संक्षयम् ॥ ३२ ॥ घोरं व्याधिमवाप्नोति मरणं वा स मृच्छति ॥ शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता ॥ एतन्निदानलिंगाभ्यामुक्तं क्लैब्यं चतुर्विधम् ॥ ३३ ॥

भाषा–उस पुरुषके रक्तादि धातु क्षीण होंय, उन धातुओंकी शुक्र अवसान ( मर्यादा ) है क्योंकि सबका शुक्रही धाम ( ठिकाना ) है, चित्तके हर्षसे जो मैथुन करे तब उसका शुक्र क्षीण होय; तदनन्तर संक्षयको प्राप्त होय, जब मनुष्यका शुक्र क्षीण हो जाता है तब घोर व्याधि इस मनुष्यको प्राप्त होती है और मरण होता है । अत एव आरोग्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शुक्र ( वीर्य ) की जरूर रक्षा करे । यह निदान और चिह्नोंसे नपुंसक चार प्रकारका कहा है ॥

केचित् क्लैब्ये त्वसाध्ये द्वे ध्वजभंगक्षयोद्भवे ॥
वदन्ति शेफसश्छेदाद् वृषणोत्पाटनेन वा ॥ ३४ ॥

भाषा–कोई आचार्य लिंग और अंडकोशोंके गिर पडनेसे ध्वजभंग और क्षयज इन दोनों नपुंसकोंको असाध्य कहते हैं ॥

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्च कृतात्मनः ॥ ३५ ॥ गर्भस्थस्य यदा दोषाः प्राप्य रेतोवहाः शिराः ॥ शोषयन्त्याशु तन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥ ३६ ॥ तत्र संपूर्णसर्वांगः स भवत्यपुमान्पुमान् ॥ एते त्वसाध्या व्याख्याताः सन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ ३७ ॥

भाषा–गर्भमें नपुंसक कौन कारणसे होता है ऐसा कोई प्रश्न करे उसके निमित्त कहते हैं । मातापिताके बीजदोषसे, पूर्वजन्मके पापोंसे, गर्भमें रेत ( वीर्य ) के वहनेवाली नाडियोंमें दोष प्राप्त होकर उन नाडियोंको सुखाय देवे । जब रेतको वहनेवाली नाडी सूख जावे तब वीर्यका क्षय हो, इससे बालक जो प्रगट होय उसके सब अंग यथार्थ होंय परन्तु लिंग नहीं होवे । सन्निपातके बढनेसे ये असाध्य रोग कहे हैं ॥

## शुक्रार्तवदोषनिदान ।

शुक्रं पौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ यथा हि बीजं काळाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ॥ १ ॥ न विरोहति सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् ॥ अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानां च सेवनात् ॥२॥ अकाले चाप्ययोनौ वा मैथुनं न च गच्छतः ॥ रूक्षतिक्तकषायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् ॥ ३ ॥ मधुरास्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरया तथा ॥ चिन्ताशोकादिविस्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा ॥४॥ भयात्क्रोधादभीचाराद्व्याधिभिः क-

षितस्य च ॥ वेगाघातात्क्षयाच्चापि धातूनां सम्प्रदूषणात् ॥ ५ ॥ दोषाः पृथक् समस्ता वा प्राप्य रेतोवहाः शिराः ॥ शुक्रं संदूषयन्त्याशु तद्वक्ष्यामि विभागशः ॥ ६ ॥

भाषा-पूर्व नपुंसकके निदानमें यह कह आये हैं कि मनुष्यमें पुरुषार्थ केवल वीर्यकाही है इसी कारण अब मैं वीर्यका वर्णन करता हूं उसको सुन । जैसे काल ( समय ), जल, कृमि, कीट, अग्निसे दूषित बीज नहीं हरा होवे उसी प्रकार मनुष्यका दूषित वीर्य गर्भप्रद नहीं होता है । अत्यंत मैथुन करनेसे, दंड कसरत करनेसे, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करनेसे, कुसमय और दुष्टयोनि ( गर्मीरोग ) आदिसे, दूषितसे विषयगमन करनेसे, बैठे रहनेसे, रूक्ष, कडवा कषैला अतिनोनका, खट्टा,, गरम ऐसे पदार्थके सेवन करनेसे, मधुर, चिकने, भारी, अन्नके भोजन करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे, चिंता, शोक, अविश्वास, शस्त्र, खार और अग्निके प्रयोगसे, भय, क्रोध खई तथा धातुओंके दूषित होनेसे पृथक् पृथक् दोष अथवा सर्व दोष रेत ( वीर्य ) के वहनेवाली नाडियोंमें प्रवेश होकर शुक्रको दूषित करते हैं । उस दूषितशुक्रके लक्षण क्रमसे न्यारे २ कहता हूं ॥

दूषितशुक्रके भेद ।

फेनिलं तनु शुष्कं च विवर्णं पूति पिच्छिलम् ॥
अन्यधातूपसंसृष्टं अवसादि तथाष्टमम् ॥ ७ ॥

भाषा-दुष्ट शुक्र आठ प्रकारका है । फेनिल अर्थात् झागवाला, शुष्क, विवर्ण ( खोटे रंगका ), पूति ( सडा ), पिच्छिल, गाढा और धातुके साथ मिला भया तथा अवसादि ये आठ भेद हुए ॥

वातदूषित शुक्रके लक्षण ।

वातेन फेनिलं शुष्कं कृच्छ्रेण पिच्छिलं तनु ॥
भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते ॥ ८ ॥

भाषा-वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो । यह गर्भके अर्थका नहीं है ॥

पित्तदूषित शुक्रके लक्षण ।

सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगंधि च ॥
दाहालिंगं विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम् ॥ ९ ॥

भाषा-पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला अत्यंत गरम होता है । उसमें बुरी बास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होवे ॥

कफदूषित शुक्रके लक्षण।

**श्लेष्मणा बद्धमार्गं तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ॥**

भाषा—कफसे शुक्र शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यंत गाढा हो जाता है ॥

**स्त्रियमत्यर्थगमनादभिघातात्क्षयादपि ॥**
**शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥ १० ॥**

भाषा—अत्यन्त स्त्रीगमन करनेसे, चोट लगनेसे मनुष्यके रुधिरसंयुक्त वीर्य निकलता है ॥

**कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादि तथाष्टमम् ॥**
**इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः ॥ ११ ॥**

भाषा—अष्टम जो अवसादि शुक्र है सो बडी कठिनतासे गांठके समान निकलता है। ये शुक्रके आठ दोष कहे हैं ॥

शुद्धशुक्रके लक्षण।

**स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं च विदाहि च ॥**
**रेतो दोषान्विजानीयात् स्निग्धं स्फटिकसन्निभम् ॥ १२ ॥**

भाषा—सचिक्कण, गाढा, पिच्छिल ( मलाई समान ), मीठा, दाहरहित और जो स्निग्ध, स्फटिक मणिके समान होय ये शुद्धवीर्यके लक्षण हैं ॥

सुश्रुतसे शुक्रदोषानिदान।

**वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रंथि पूतिपूयक्षीणरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः ॥ १३ ॥ तत्र वातवर्णवेदनम् ॥ वातेन पीतवर्णवेदनं पित्तेन श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा शोणितवर्णपित्तवेदनं रक्तेन कुणपगंध्यनल्पं च रक्तेन पित्तेन च ग्रंथिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां पूति पूयनिभं पित्तवाताभ्यां क्षीणशुक्रं प्रागुक्तं पित्तंवाताभ्यां मूत्रपुरीषगंधि सर्ववर्णवेदनं सन्निपातेनेति तेषु कुणपग्रंथिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसः असाध्याः॥**

भाषा—वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसे दूषित हुआ; शवगंधि और बहुत दुर्गंधियुक्त तथा राधके समान ऐसा जिस पुरुषका रेत ( वीर्य ) होय उसके संतान नहीं होय। जिसका वीर्य वादीसे दुष्ट होय उसका वर्ण काला, लाल ऐसा होय तथा उसमें तोदादिक पीडा होय। पित्तसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण पीला, नीला

इत्यादि वर्णोंका होय तथा उसमें चोषादि पीडा होय। कफसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण श्वेत होय उसमें मन्द पीडा होय। रुधिरसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण लाल होवे उसमें चोषादि ( चूसनेकीसी ) पीडा होवे तथा रुधिरसे शुक्रमें मुर्दाकीसी वास आवे और विशेष ऐसा है कफसे दूषित हुआ शुक्र गांठदार होय, पित्तकफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवे, पित्तवादिसे शुक्र क्षीण होता है, सन्निपातसे दूषित भये शुक्रमें पूर्वोक्त सब वर्ण होय और पीडा होय तथा उसमें मूत्र और विष्ठाकीसी वास आवे। इनमें कुणप, ग्रंथी, पूय, क्षीणरेत ये चार कृच्छ्रसाध्य हैं। और मूत्र, पुरीष ( विष्ठा. ) रेतस असाध्य और बाकीके सब साध्य हैं॥

आर्तवदोषके लक्षण।

**आर्त्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथक् द्वंद्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति। तदपि दोषवर्णवेदनाभिर्ज्ञेयम्। तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यम्॥**

भाषा—आर्तव अर्थात् स्त्रियोंका रज वातादि पृथक् दोष, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इनकरके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होय। तिन दोषोंकरके वर्ण और वेदना जाननी चाहिये। तिनमें कुणप, पूतिपूय, क्षीण, मलमूत्रके समान जो होय वह असाध्य है बाकीके साध्य जानने॥

विष्टम्भगर्भके लक्षण।

गर्भिणीके कुसमय भोजन करनेसे अथवा रूक्षादि पदार्थ खानेसे वायुसे कोपित होकर गर्भ शुक्र शुष्क अर्थात् गर्भको सुखाय देवे इसीसे उस गर्भका हलना चलना, बढना बन्द होय और समय पाकर उसको वादीकी पीडा होकर स्राव होय॥

उपविष्टगर्भके लक्षण।

गर्भिणी स्त्रीके अत्यन्त दाहकर्त्ता पदार्थ खानेसे रुधिरका स्राव बहुत होय, इसीसे वह गर्भ पीछे बढता न दीखे, उसका हलना चलना मात्र होय ऐसे गर्भको उपविष्ट कहते हैं। यह विष्टंभ गर्भकाही भेद है॥

## मंथरज्वर ( मोतीज्वर ) के लक्षण

योगरत्नसे।

**ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा॥**
**अनिद्रा मुखशोषश्च तालु जिह्वा च शुष्यति॥ १॥**
**ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः॥**
**घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम्॥ २॥**

भाषा–अधिक घृत खानेसे अथवा पसीना रोकनेसे, मनुष्यको मंथरज्वर ( मोती-ज्वर ) आता है । इसके लक्षण कहते हैं । ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अतीसार, वमन, प्यास, निद्रानाश, मुख तालु और जीभ इनका सूखना, कंठमें सरसोंके समान सफेद मोतीके आकार फोडा होंय इस ज्वरको माधवने पित्तज्वरके अंतर्गत अर्थात् पित्तज्वरके अंतर्गत माना है इसीसे इसको पृथक् नहीं कहा परंतु व्यवहारमें इसको पृथक् मानते हैं तथा बहुतसे ग्रंथकारोंने इसका नाम जुदा कहकर चिकित्साभी पृथक् कही है ॥

## अलर्क ( कुत्ता ) विषनिदान

वाग्भट्टसे ।

**शुनः श्लेष्मोल्बणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः ॥ मुष्णन्तः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम् ॥ १ ॥ लालावानंधबधिरः सर्वतः सोऽभिधावति ॥ स्रस्तपुच्छहनुस्कंधः शिरोदुःखी नताननः ॥ २ ॥**

भाषा–कुत्तेके कफादिक दोष संज्ञाके वहानेवाले स्रोतों ( छिद्रों ) में प्रवेश करके संज्ञानाशके सदृश करे और उसकी धातुका क्षोभ करे । इस योगसे उस कुत्तेके मुखसे लार वहे तथा वह अन्धा बहरा होकर इधर उधर दौडने लगे, इसकी पूंछ सीधी हो जाय और ठोडी कन्धा ढीले हो जांय इसको बावला कुत्ता कहते हैं ॥

उसके काटनेके लक्षण ।

**दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसृक् ॥**
**हृच्छिरोरुग्ज्वरः स्तम्भस्तृष्णा मूर्च्छोद्भवोऽनु च ॥ ३ ॥**

भाषा–उस बावले कुत्तेके काटनेसे काटनेकी जगह शून्य हो जाय, उसमेंसे काला रुधिर वहे तथा उस मनुष्यका हृदय और मस्तक दूखे, ज्वर हो, देह जकड जाय, प्यास लगे तथा मूर्च्छा आवे ॥

**अनेनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्रप्रहारिणः ॥**
**सृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याघ्रवृकादयः ॥ ४ ॥**

भाषा–इस प्रकार डाढा प्रहार करनेवाले सर्प, स्यार, खिच्चर, घोडा, रीछ, चीता, बाघ, भेडिया, आदिशब्दसे सिंह, वानर आदि इनके लक्षणभी कुत्तेके समान जानने ॥

सविष निर्विषदंशके लक्षण ।

**कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः ॥ विदाहरागरुक्पाक-**

शोफग्रंथिविकुंचनम् ॥ ५ ॥ दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका मण्डलानि च ॥ सर्वत्र सविषे लिंगं विपरीतं तु निर्विषे ॥ ६ ॥

भाषा-खुजली, नोचनेकीसी पीडा, वर्णका बदलना, शून्यता, क्लेद, ज्वर, भ्रम, दाह, लाली, दर्द, पकना, सूजन, गांठ, चोटनी, काटनेकी जगह चीरा पडे, फोडा, कर्णिका, मंडल ये लक्षण सविष दांतके होते हैं। इससे विपरीत लक्षण निर्विषके जानने ॥

असाध्य लक्षण।

दष्टो येन तु तच्चेष्टां रुतं कुर्वन्विनश्यति ॥
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

भाषा-जिस प्राणीका काटा हुआ मनुष्य उसी प्राणीकी सर्व चेष्टा करे और रुदन करे तथा आदर्श ( शीसा ) पानी आदि पदार्थोंमें उसी प्राणीका प्रतिबिंब देखे वह रोगी मर जाय ॥

जलसंत्रासनामाके लक्षण।

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ॥
जलसंत्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-पुरुष पानीके शब्द, स्पर्श और अवलोकन ( देखने ) से डरपे उसको जलसंत्रासनामा कहते हैं। उसकोभी वैद्य त्याग देवे। कोई शंका करे कि जल बिना कैसे मनुष्य डरता है इसवास्ते कहते हैं ॥

अदष्टस्यापि जन्तोर्हि जलत्रासो भवेद्यदि ॥
तस्यारिष्टं हि विषजं ब्रुवते विषचिन्तकाः ॥
जलं विना जलत्रासो जायते श्लेष्मसंचयात् ॥ ९ ॥

भाषा-जिस मनुष्यको जलके विना देखेभी भय लगे, उसको विषज्ञ वैद्य विषज रोग कहते हैं। यह जल विना जलसे त्रास कफके संचयसे होता है सो लिखते हैं।

बुद्धिस्थानं यदा श्लेष्मा केवलं प्रतिपद्यते ॥
तदा बुद्धौ निरुद्धायां श्लेष्मणाधिष्ठितो नरः ॥ १० ॥
जाग्रत्सुप्तोऽथ वात्मानं मज्जन्तमिव मन्यते ॥
सलिलात्त्रासदा तंद्रा जलत्रासं तु तं विदुः ॥ ११ ॥

भाषा-जिस समय केवल कफ बुद्धिके स्थानमें जाकर प्राप्त होता है तब इस पुरुषकी

बुद्धि कफकरके आच्छादित होनेसे जागते सोते अपने आपेको जलमें डूबा हुआ जाने । इसी कारण वह मनुष्य जलसे डरता है इसीसे इसको जलत्रास जानना ॥

अब विषनिदानमें कह आये हैं कि विश्वंभरा, अहिंडुका, कंडूमका, शूकवृन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका और सर्षपिका इनका निदान ग्रंथके अंतमें लिखेंगे सो यहां सुश्रुतसे लिखते हैं ।

गोधेरकदंशके लक्षण ।

**प्रतिसूर्यः पिंगभासो बहुवर्णो महाशिराः ॥ तथा निरूपमश्चापि पंच गोधेरकाः स्मृताः ॥ १२ ॥ तैर्भवन्तीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् ॥ रुजश्च विविधाकारा ग्रंथयश्च सुदारुणाः ॥ १३ ॥**

भाषा-प्रतिसूर्य, पिंगभास, बहुवर्ण, महाशिरा, निरूपम ये पांच प्रकारके गोधेरक ( गोह ) होते हैं । इनके काटनेसे वेग और ज्ञान सर्पके समान जानना और अनेक प्रकारके रोग तथा दारुण गांठ प्रगट होय । गोधेरककी उत्पत्ति ग्रंथान्तरोंमें लिखी है[१] ॥

सर्षपिकादंशके लक्षण ।

**गलगोली श्वेतकृष्णा रक्तराजी तु मण्डला ॥ १४ ॥ सर्वश्वेता सर्षपिकेत्येवं षट् ताभिर्दष्टे सर्षपिकावर्ज्यं दाहशोफक्लेदा भवन्ति सर्षपिकया हृदयपीडातिसारश्च ॥ १५ ॥**

भाषा-गलगोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमंडला, सर्वश्वेता, सर्षपिका इस प्रकार सर्षपिकाके छः भेद हैं । इनमें सर्षपिकाको छोडकर बाकी गलगोली आदि काटनेसे दाह, सूजन और क्लेद होय और सर्षपिकाके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होवे और हृदयमें पीडा तथा अतिसार होय ॥

विश्वंभराके लक्षण ।

**विश्वम्भराभिर्दष्टे दंशः सर्षपिकाकाराभिः पिडिकाभिश्चीयते शीतज्वरार्तश्च पुरुषो भवति ॥ १६ ॥**

भाषा-विश्वंभराके काटनेकी ठौर सरसोंके समान फुंसियोंसे व्याप्त हो और शीतज्वरकरके रोगी व्याकुल होय ॥

अहिंडुकाके लक्षण ।

**अहिंडुकाभिर्दष्टे तोददाहकण्डुश्वयथवो मोहश्च ॥**

---

१ कृष्णसर्पेण गोधायां भवेज्जन्तुश्चतुष्पदः । सर्पो गोधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति ॥ ” इति ।

—अहिंडुकाके काटनेसे नोचनेकीसी पीडा होय, दाह, खुजली, सूजन और मोह होय ॥

कंडूमकादष्टके लक्षण ।

**कण्डूमकाभिर्दष्टे पीतांगच्छर्द्यतीसारज्वरादेभिर्हन्यते ॥ १७ ॥**

भाषा—कंडूमकादि कीडाओंके काटनेसे देह पीली हो जाय, वमन, अतिसार और ज्वरादि रोगोंसे मनुष्य पीडित होय ॥

शूकवृन्तादिदष्टलक्षण ।

**शूकवृन्तादिभिर्दष्टे कण्डूकोटाः प्रवर्द्धन्ते शूकश्चात्र लक्ष्यते ॥**

भाषा—शूकवृन्तादि कीडोंके काटनेसे खुजली, चकत्ता और शूकरोग होय ॥

पिपीलिकादंशलक्षण ।

**पिपीलिका स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिका ॥ १८ ॥**
**गुलिका कापिलिका चित्रवर्णेति षट् ताभिर्दष्टे दंशे**
**श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दाहशोफौ भवतः ॥ १९ ॥**

भाषा—स्थूलशीर्षा, संवाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कपिलिका, चित्रवर्णा ये छः प्रकारकी पिपीलिका ( चेंटी ) हैं । इनके काटनेकी जगह सूजन अग्निस्पर्श समान दाह और चकत्ते होवें ॥

स्नायुके निदान ।

**शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ॥ भिनत्ति तक्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं सितद्युतिं बहिः ॥ शनैः शनैः क्षताद्याति च्छेदा-त्कोपमुपैति च ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानांतरे भवेत् ॥ स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्ता तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन जंघयोस्त्रुट्यते क-चित् ॥ संकोचं खंजतां चैव छिन्नो जन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥**

भाषा—हाथपैरोंमें दोष कुपित होकर विसर्पके सदृश सूजन होय वह सूजन फूटकर घाव पड जावे और उसमें आगसी बले तथा मांस शुष्क होकर सूतके समान गोल सफेद जीव डोरेके सदृश बाहर निकल आवे धीरे धीरे घावसे बाहर निकलते समय टूट जावे तो बहुत दुःख देता है, यदि वह समग्र बाहर निकल आवे तो सूजन जाती रहे और उसमेंसे कुछ टुकडा बाकी रह जावे तो वह फिर दूसरे

स्थानपर निकले उस रोगको स्नायुक ( नहरुआ ) कहते हैं। इसपर चिकित्सा विसर्परोगकीसी कही है। कदाचित् हाथ वा पैरोंमें नहरुआ होकर टूट जावे तो हाथपैरसे टोंटा अथवा लूला हो जाय॥

### ध्वजभंगके संगृहीतश्लोक।

यौवनेऽनंगवेगेन शिशुना केलिमाचरेत्। गुह्यदोषेण तल्लिंगे शैथिल्यमुपजायते॥ स्वगुदोत्पाटनं बाल्ये परैः कारयति स्वयम्। कुरुते तेन दोषेण ध्वजभंगोऽभिजायते॥ अथवा यो भवेन्मर्त्यः करमैथुनलम्पटः[1]। तस्य नूनं प्रजायेत ध्वजभंगं सुदुर्जयम्॥

### रोगानुक्रमणिका।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी अर्शोऽजीर्णो विषूचिका॥ अलसश्च विलम्बी च कृमिरुक् पाण्डुकामलौ॥ १॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्॥ कासो हिक्का सहश्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकम्॥ २॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छाद्या रोगाः पानात्ययादयः॥ दाहोन्मादावपस्मारः कथितोऽथाऽऽनिलामयः॥ ३॥ वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्॥ पित्तजं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक्॥ ४॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाऽश्मरी॥ प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः॥ ५॥ मेदस्तथोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः॥ गण्डमालाऽपचीग्रंथिरर्बुदं श्लीपदं तथा॥ ६॥ विद्रधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिके॥ भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः॥ ७॥ शीतपित्तमुदर्दश्च कोठश्चैवाऽम्लपित्तकम्॥ विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्यो मसूरिकाः॥ ८॥ क्षुद्राऽस्यकर्णनासाऽक्षिशिरः स्त्रीबालकग्रहाः॥ विषं चेत्ययमुद्देशो रुग्विनिश्चयसंग्रहे॥ ९॥

भाषा—अर्श ( बवासीर ), छर्दि ( रद ), मूर्च्छाद्या ( मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा निद्रा, संन्यास ), पानात्यय ( मदात्यय ), अपस्मार ( मृगी ), अनिलामय ( वात-

[1] करमैथुनं हस्तरस इति प्रसिद्धः।

व्याधि ), आनाह ( अफरा ), गुल्म ( गोलेका रोग ), अश्मरी ( पथरी ), वृद्धि ( अंडवृद्धि ), ग्रंथि ( गांठ ), त्वगामय ( कोढरोग ), आस्य ( मुखरोग ) ग्रह ( पूतनादि बालग्रह ) ये हमने कठिन शब्दोंके अर्थ लिख दिये हैं ॥

रोगानुक्रमणिका लिखनेका यह प्रयोजन है कि इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं इससे, विशेष रोग प्रक्षिप्त जानने। इस रोगानुक्रमणिकाके रोगोंके ऊपर हमने १-२-३ ऐसे अंक धर दिये हैं बुद्धिवान् समझ लेंगे ॥

टीकाकर्त्ताकी वंशावली।

श्रीमन्माथुरमण्डले द्विजकुले श्रीमाथुराणां कुले
घासीराम इति प्रथामधिगतो जातः सतां मोदकृत् ॥
श्रीचन्द्रः किल रामचन्द्रविबुधो जातो हरिश्चन्द्रकः
पुत्रास्त्रीणि त्रयीव धर्मनिपुणाः सर्वे नृपैः पूजिताः ॥ १ ॥

भाषा–श्रीमान् माथुरमण्डल द्विजकुल श्रीमाथुर ( चौबे ) के कुलमें श्रीघासी-राम इस नामसे प्रसिद्ध सज्जन मनुष्योंके आनंदकर्त्ता प्रगट भये उसके श्रीचंद्र और परम बुद्धिवान् रामचंद्र और हरिश्चंद्र ये तीन पुत्र वेदत्रयी ( ऋक्, साम, यजु ) के समान और सर्व राजमान्य प्रगट भये ॥

तेषां हरिश्चंद्रसमानकीर्तिर्जातो हरिश्चंद्रगुणाभिरामः ॥
बभूव तस्मात्किल कृष्णलालो संगीतशास्त्रार्थविचारदक्षः ॥ २॥

भाषा–तिन घासीरामके तीन पुत्रोंमें हरिश्चंद्रके समान कीर्त्ति जिनकी ऐसे हरिश्चंद्र भये तिनके संगीतशास्त्र ( गानविद्या ) के अर्थविचारमें कुशल कन्हैया-लाल प्रगट होते भये ॥

तस्य पुत्र अहं जज्ञे दत्तरामो विमूढधीः ॥
भाषायां माधवस्यार्थो यथामति निरूपितः ॥ ३ ॥

भाषा–तिन कन्हैयालालका पुत्र मैं तुच्छ बुद्धिवाला दत्तराम प्रगट हुआ मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार माधवनिदानका अर्थ भाषामें निरूपण किया ॥

इति ग्रंथपरिशिष्टं समाप्तम्। ८ ।१२१।

समाप्तोऽयं ग्रंथः।

---

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना, कल्याण–मुंबई.